CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान सरकार

प्रतिष्ठान पत्रिका

१९८५

प्रधान सम्पादक

डॉ. पद्मधर पाठक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज०)
Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

8·1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान-सरकार

प्रतिष्ठान-पत्रिका

[वार्षिकी]

वर्ष १ अक्टूबर १९८५ अंक १

प्रधान सम्पादक

डॉ. पद्मधर पाठक
(निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
राजेन्द्र मार्ग, जोधपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूल्य रु०

सम्पादन–सहयोगी :

- श्री ओंकारलाल मेनारिया, सहायक निदेशक
- डॉ० दत्तात्रेय बालकृष्ण क्षीरसागर, वरिष्ठ शोध सहायक
- श्री ओम्प्रकाश शर्मा, वरिष्ठ शोध सहायक
- श्री ब्रजेशकुमारसिंह, गवेषक
- श्री गिरधरवल्लभ दाधीच, कनिष्ठ तकनीकी सहायक

मुद्रक :
कमल प्रिण्टर्स,
त्रिपोलिया बाजार,
जोधपुर.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रधान–सम्पादकीय

विभिन्न शोध-परक लेखों पर केन्द्रित एक शोध-पत्रिका का नियमित मुद्रण ऐसे प्रतिष्ठान का एक अनिवार्य अंग है। इससे पूर्व भी सन् १९६८ व १९६९ में "स्वाहा" शीर्षक से एक त्रैमासिकी के तोन अंक निकले थे। "स्वाहा" का गठन मूलतः एक उद्देश्य को पूर्ति के लिए किया गया था। भूतपूर्व निदेशक डॉ० फतहसिंह ने सिंधु–घाटी की लिपि को पढ़ने में जो मौलिक प्रयास किया था एवं करते चल रहे थे उसका क्रमशः प्रकाशन "स्वाहा" की विशेषता थी। उनके सेवानिवृत्त होने पर यह क्रम एवं "स्वाहा" दोनों को अन्ततः समेटना पड़ा।

"प्रतिष्ठान-पत्रिका" के स्वरूप को बढ़ाते हुए अनेक स्तरीय लेखों को सम्मिलित कर इस पत्रिका का शुभारम्भ किया गया है। दो-तीन वर्षों में ही इसे त्रैमासिकी में बदल देने का हमारा संकल्प है। इन लेखों में नई सामग्री मिलती है। कुछ प्रसंग नई दृष्टि लिए हुए हैं। प्रथम वर्ष का यह प्रथम अंक गांधी जयन्ती के पावन अवसर पर पाठकों को सौंपते हमें प्रसन्नता होती है। इस अंक में जिन विद्वानों ने हमें सहयोग दिया है वह प्रतिष्ठान के प्रति उनके सच्चे स्नेह का द्योतक है। धन्यवाद की रस्मी औपचारिकता निभाकर हम इनसे छुट्टी नहीं ले सकते हैं।

पद्मधर पाठक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयानुक्रम

१. मङ्गलाचरण

डॉ० नागरमल सहल १-२

२. न्यायवैशेषिकदर्शने युतसिद्धयुतसिद्धिविवेकः

डॉ० गणेशीलाल सुथार ३-१५

३. तुलसी की रहस्य-दृष्टि

डॉ० हौसिलाप्रसादसिंह १६-३५

४. ता'म मुग़ालिया का एक दस्तावेज़

डॉ० पद्मधर पाठक ३६-३९

५. मध्यकालीन राग-वर्गीकरण और गिरिधर मिश्र

डॉ० डी० बी० क्षीरसागर ४०-४९

६. भक्ति, ज्ञान और वैराग्य

डॉ० मोहनलाल शर्मा ५०-५५

७. महाकवि धनदेश्वरकृत 'कामाभिनन्दनमहाकाव्य'

श्री ओम्प्रकाश शर्मा ५६-६५

८. श्री गुरुग्रन्थ साहिब

डॉ० रामचन्द्र मिश्र ६६-८७

९. पण्डित परमसुख विरचित 'विक्टोरियाचरितम्'

डॉ० व्रजमोहन जावलिया ८८-१०१

१०. प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में दण्डनीति का स्वरूप

प्रो. नागेन्द्रनाथ पाण्डेय १०२-१२०

११. कवि मल्ल हरिवल्लभ भट्ट कृत
'कान्तावक्षोज-शतोक्ति' का समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ० दामोदर शास्त्री १२१-१३७

१२. 'रसिकअनन्यमाल' क्या भगवन्त मुदित कृत रचना है ?

डॉ० नरेशचन्द्र बंसल १३८-१५५

१३. कागा (जोधपुर) छतरियों के अभिलेख

डॉ० हुकमसिंह भाटी १५६-१६४

१४. लक्षणायाः क्रमिको विकासः

डॉ० ठाकुरदत्त जोशी १६५-१७६

१५. स्व-जीवनी [ले० 'राय' मेहता पन्नालाल]

सम्पा० श्री ओंकारलाल मेनारिया १७७-२००

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री भुवनेश्वर्यै नमः

चञ्चन्मौक्तिकहेममण्डनयुता माताऽतिरक्ताम्बरा,
तन्वङ्गी नयनत्रयातिरुचिरा बालार्कवद्भासुरा।
या दिव्याङ्कुशपाशभूषितकरा देवी सदा भीतिहा,
चित्तस्था भुवनेश्वरी भवतु नः सेयं मुदे सर्वदा ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंगलाचरण

चमत्कारी ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार से
प्राची-प्रतीची का अतर्कित मिलन
बन रहा दिन दिन सहज संभाव्य ।

प्रतीची ने किया अंगीकृत
चतुर्वर्ग में से केवल मध्यद्वय
अर्थ और काम
जिनकी अति से हुई संत्रस्त
देख रही है प्राची की ओर
सतृष्ण नेत्रों से—

धर्म के मग से गंतव्य तक पहुँचने को
कहो उसे जगबंधन से मुक्ति, मोक्ष
होता है पर जिसका द्वार अनावृत
केवल मंगलाचरण से ।

अपरा विद्या नहीं दे सकी तोष पश्चिम को ;
प्राची की पराविद्यापानार्थ
हुआ वह उत्कट पिपासु,

किन्तु प्रतीची के अन्धानुकरण से
प्राची हुई दिग्भ्रमित
पर उसी के मंगल आचरण से
संभव है जन जन का कल्याण ।

काम न हुआ काम से तृप्त
अर्थ न हुआ अर्थाधिक्य से
हृष्ट पुष्ट तुष्ट ।

भोगी बन सका क्या कोई
बिना बने योगी सिद्ध ?
विश्वराज्य वश का नहीं
शतजिह्व राजनीतिज्ञों के—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संभव है वह केवल
नीतिपरक मनीषियों के
आचरण जिनका होता प्रतिबिंबित
उनके कर्म-अकर्म में अनुपल ।
उद्देश्य उनका बस

जगजग का अभ्युदय-निःश्रेयस ।
मन-मस्तिष्क गवाक्ष हमारे रहें सदा मुक्तद्वार
अग जग की अनाविल अनिलश्वसन से
हो सके सहज रूप में

हमारा जिससे संहनन पर हनन
अनामय अशेष !

करें विघ्नहर शुभारम्भ
प्राच्य इस पत्रिका का ।

कुंकुम यही-मनुहार मेरी करो स्वीकार
ओ मेरे गणाधिपति !

—डॉ० नागरमल सहल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्यायवैशेषिकदर्शने युतसिद्ध्ययुतसिद्धिविवेकः

धर्मधर्मिभेदवादिनः[1] प्रागुत्पत्तेरसत्कार्यमित्यास्थितवन्तो नैयायिका-वैशेषिकाश्च धर्मिणो धर्मान् सम्बन्धांश्च पृथक् परिकल्पयामासुः।[2] अवयवावयविनोर्गुणगुणिनोः क्रियाक्रियावतोर्जातिव्यक्त्योश्च देशभेदाभावेऽपि 'संविदेव हि भगवती वस्तूपगमे नः शरणम्"[3] इति मन्वानानां नैयायिकवैशेषिकाणां मते प्रतीतिभेदाद् भेदोऽस्ति । तथा च जयन्तभट्टो जगाद—

"प्रतीतिभेदाद् भेदोऽस्ति देशभेदस्तु नेष्यते ।
नेतात्र कल्प्यते वृत्तिः समवायः स उच्यते ।।"[4]

जयन्तभट्टस्य मतमेतत् समीक्षमाणा नैयायिकप्रवराः डॉ धर्मेन्द्रनाथ-शास्त्रिमहोदयाः सम्यगभाषन्त—"Obviously, Jayanta has struck here a basic point of the Nyaya-vaisheshika position"[5] संयोगसमवायसंज्ञकं हि नैयायिकवैशेषिकाणां प्रातिस्विकं सम्बन्धद्वयम् । संयोगसमवाययोः स्वरूपभेदं साधयितुं संयोगसम्बन्धव्यापिका युतसिद्धिः समवायसम्बन्धप्रयोजिका चायुतसिद्धिरपि न्यायवैशेषिकग्रन्थेषु प्रपञ्चिते । कार्यकारणानन्यत्ववादिनोऽद्वैतवेदान्तिनोऽन्ये च दार्शनिकाः संयोगसमवाय-निराकरणप्रयोजनेन तत्प्रयोजकयुतसिद्ध्ययुतसिद्धी महता प्रपञ्चेन निराचक्रुः । युतसिद्ध्ययुतसिद्धिस्वरूपतद्युक्तत्वायुक्तत्वविवेचनमत्यन्तमपेक्षितमस्तीति कृत्वा शोधनिबन्धेऽस्मिन् मूलग्रन्थान् उपाश्रित्य तद्विषया तर्कोपकरणा विचारणा तर्करसिकानां मुदे प्रस्तूयते ।

सर्वार्थोपदेशप्रवृत्तः कापोतीवृत्तिमान् महर्षिकणादो युतसिद्ध्ययुत सिद्धिलक्षणं न सूत्रयामास । "युतसिद्ध्यभावात् कार्यकारणयोः संयोगविभागौ न विद्यते"[6] इतीदमेकमेव सूत्रमुपलभ्यते, युतसिद्धानां संयोगविभागौ भवितुमर्हतः कार्यकारणयोश्च युतसिद्धेरभावात् संयोगविभागौ न भवत इत्येतदर्थप्रकाशनप्रवृत्तो महर्षियुतसिद्ध्यभावशब्दं प्रयुयुजे । "इहेद-मिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः"[7] इत्यस्मिन् समवायलक्षणसूत्रेऽयुत-सिद्धयोः समवायसंज्ञकः सम्बन्धो भवतीति निर्दिदेश । महर्षिगौतमनात्स्याय-नावपि युतसिद्ध्ययुतसिद्ध्योर्लक्षणं नोचतुः । संयोगसमवायावभ्युपगतवतां नैयायिकानां तत्प्रयोजकयुतसिद्ध्ययुतसिद्धी अनुमते एव । वैशेषिकसूत्रकृदाशय स्फोरणकुशलेन प्रशस्तमतिना प्रशस्तपादाचार्येण संयोगप्रकरणे प्रसङ्गवशेन "सा पुनर्द्वयोरन्यतरस्य वा पृथग्गतिमत्त्वं पृथगाश्रयाश्रयित्वं च"[8] इति युतसिद्धिलक्षणमाख्यायि । अयुतसिद्धिश्च तेनालक्षिताऽपि युतसिद्धिवैधर्म्येण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निषेधविधया वा निरूपितकल्पैवाऽस्ति। पदार्थधर्मसङ्ग्रहटीकाकाराश्च व्योमशिवश्रीधरोदयनादयो युतसिद्धिस्वरूपं विशदं वर्णयाम्बभूवुः। युत-शब्देऽत्र "यु मिश्रणामिश्रणयोः" इति धातुपाठानुसारेण प्रतियोगितदभाववा-चकस्य युधातोरमिश्रणार्थत्वं विवक्षितम्। निर्वचनसामर्थ्याद् युतसिद्धि-शब्दस्य पृथगवस्थितिरित्यर्थो लभ्यते। नैयायिकवैशेषिकैर्युधातोर्लोकप्रसिद्धो मिश्रणार्थो न परिगृहीतः। यत्र युतसिद्धिस्तत्रैव संयोगो दृष्टः। यत्र यत्र संयोगस्तत्र तत्र युतसिद्धिरुपलब्धेत्येवं युतसिद्धेः संयोगव्याप-कत्वं[8] व्याजहार व्योमशिवाचार्यः। द्विविधविभागजविभागनिरूपणावसरे कारणविभागजविभागनिरूपणानन्तरं कारणाकारणविभागजं द्वितीयं विभागं विवेचयन् हस्ताकाशविभागजन्यमवयव्याकाशविभागं निदर्शयामास प्रशस्तपादाचार्यः। ततश्च "नन्वेवमवयवावयविनोर्युतसिद्धिदोषप्रसङ्ग इति ?"[10] इमां शङ्कां निराकर्तुं "युतसिद्ध्यपरिज्ञानात्"[11] इत्येवं समाधानमुपक्रम्य पूर्वोक्तलक्षणमेव विभजमानो द्वयीं युतसिद्धिमलक्षयत्[12]-अ,ब,स। तद्यथा-युतेष्वाश्रयेषु समवायोऽनित्यानां युतसिद्धिः। द्वयोरन्यतरस्य वा पृथग्गतिमत्त्वं नित्यानां युतसिद्धिः। नित्यविषयाया युतसिद्धेरवय-वावयविनोरतिव्याप्तिसम्भावनायां सत्यामप्यनित्यानां युतसिद्धिस्तयोः कथमपि न घटते, अतः कारणान्न कोऽपि दोषः। सामान्यव्याप्तौ विशेष इति नियम-बलेन परस्परसंयोगविभागयोग्यता युतसिद्धिरितीदं सामान्यलक्षणमुपलभ्य अवयवावयविनोः परस्परसंयोगविभागयोग्यतासम्भावनामुन्मूलयन् पूर्वोक्तमसद्दूषणं व्योमशिवाचार्यः पर्यहार्षीत्।[13] द्वयोः परमाण्वोः परस्परसंयोगविभागयोग्यता विद्यते, अतस्तयोर्युतसिद्धिः। आकाशपरमाण्वोरन्यतरस्य पृथग्गतिमत्त्वाद् युतसिद्धिः। यदि पृथग्गतिमत्त्वेन परस्परं संयोगविभागजनन-योग्यत्वं विवक्षितं न स्यात्तर्हि द्व्यणुकारम्भकयोः परमाण्वोर्द्व्यणुके व्रजति गमनोपलब्धेर्द्व्यणुकेन सह युतसिद्धिःप्रसज्येत इति व्याजहार व्योमशिवाचार्यः[14] 'द्वयोरेकस्य वा परस्परसंयोगविभागहेतुभूतकर्मसमवाययोग्यता युतसिद्धि-"[15] इति व्याचचक्षे नित्यानां युतसिद्धिं श्रीधराचार्यः।

यदि "युतेष्वाश्रयेषु समवायः"[16] इति प्रशस्तपादोक्ताऽनित्यविषया युतसिद्धिः स्वाक्रियेत,तर्ह्यवयवावयविनोरपि युताश्रयसमवायलक्षणा युतसिद्धिः प्रसज्येत। तथा हि-अवयव्यवयवेषु वर्तते अवयवाश्च स्वावयवेष्विति युता-श्रयसमवायः। अत एवेमामाशङ्कां निवारयितुं "परस्परपरिहारेण द्रव्यादीनां तेषु पृथग्भूतेष्वाश्रयेषु समवायो युतसिद्धिरित्यर्थः"[17] इत्यूचे उदयनाचार्यः। यथा पटतदाश्रयव्यतिरेकेण आश्रयान्तरे समवायो घटस्य घटतदाश्रयव्यति-रेकेण च पटस्य नैवमवयविनोऽवयवव्यतिरेकेण आश्रयान्तरे न चावयवि-परिहारेण अवयवानां स्वावयवेषु समवायः, तस्मान्न युतसिद्धिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशस्तपादोक्तयोर्द्वयोर्युतसिद्ध्योर्मध्ये कतरा युतसिद्धिरणुनित्यानित्यद्रव्यसंयोगस्य विभुनित्यानित्यद्रव्ययोश्च संयोगस्य व्यापिका स्यादिति शङ्का पिशाची समुन्मिषति। प्रशस्तपादाचार्यः अणुनित्यानित्यद्रव्ययोर्विभुनित्याद्रव्ययोश्च संयोगस्य व्यापिकां युतसिद्धिं न चिन्तयामासेति चिन्त्यम्। न तत्र नित्यानामेव युतसिद्धिरेकान्ततो घटते, द्वयोरेकस्यानित्यत्वात्। न चानित्यानामेव युतसिद्धिरुपपद्यते द्वयोरेकस्य नित्यत्वात्। दुःसमाधेयां समस्यामिमां समीक्ष्यैव व्योमशिवाचार्यो नित्यानां युतसिद्धिलक्षणे प्रयुक्तस्य "अन्यतरस्य वा"[18] इत्यंशस्यानित्यपदार्थयुतसिद्धिलक्षणेऽप्यनुवृत्तिं कुर्वन्नेवमाह— "अत्रापि द्वयोर्युताश्रयसमवायित्वमन्यतरस्य वेत्यनुवर्तते। द्वयोर्यथा घटपटयोरन्यतरस्य यथाकाशघटयोरन्यतरस्य घटस्य युतेष्वाश्रयेषु समवायो नाकाशस्यानाश्रितत्वात्"[19]। श्रीधराचार्योऽपि न्यायकन्दल्यां "द्वयोरन्यतरस्य वा परिहारेण अन्यत्राश्रये समवायो युतसिद्धि"[20] इत्यस्मिन् 'अन्यतरस्य वा' सन्निवेशयति येनानित्यानां युतसिद्धिरणुनित्यानित्ययोर्विभुनित्यानित्ययोश्च द्रव्ययोः संयोगं व्याप्नुयात्। तथा चोदाहरति—"शकुन्याकाशयोश्चान्यतरस्य शकुनेः पृथगाश्रयाश्रयित्वम्, तथापि न तस्य पृथग्गमनस्य ग्रहणम्, तस्य नित्यविषयत्वेन व्याख्यानात्"[21]। तदेवं विभुनित्यानित्यद्रव्यसंयोगस्य अनित्यानां युतसिद्धिरेव प्रयोजिका, विभुद्रव्ये पृथग्गतिमत्त्वयुताश्रयसमवायाभावे सति अन्यतरस्यानित्यद्रव्यस्य युताश्रयसमवायित्वात्। अणुनित्यानित्यद्रव्यसंयोगस्य तु द्वयी युतसिद्धिः प्रयोजिका, द्वयोरन्यतरस्याणुनित्यस्य पृथग्गतिमत्त्वादितरस्य चानित्यद्रव्यस्य पृथगाश्रयसमवेतत्वात्। तथा चाभिषष्ट व्योमशिवाचार्यः— "घटपरमाण्वोस्तूभयसम्भवात् उभयावरोधोऽन्यतरावरोधे विशेषहेत्वभावात्। तथा हि—नित्ये परमाणौ पृथग्गतिमत्त्वमनित्ये तु घटे युताश्रयसमवायित्वमुभयोरुभयत्रान्वयव्यतिरेकाभ्यां समर्थनादत्र सम्भवेन ग्रहणं न्याय्यम्"[22]

न चानित्यानां पृथग्गमनमेव युतसिद्धिः किं न स्यादिति वाच्यम्, त्वगिन्द्रियशरीरयोरयुतसिद्धिप्रसङ्गात्। त्वगिन्द्रियशरीरयोरामरणं वियोगानुपपत्तेः पृथग्गतिमत्त्वाभावेऽपि परस्परेण संयोगः प्रसिद्धः, परस्परपरिहारेण तयोर्युताश्रयसमवायित्वात्। एवमुत्पन्नमात्रस्य घटादेर्गतिमत्त्वाभावेऽपि रूपाद्युत्पत्तिसमकालमाकाशादिना संयोगोपलब्धेस्तस्य युताश्रयसमवायित्वमेव युतसिद्धिरिति व्योमशिवाचार्यः[23]। न च नित्यानां युताश्रयसमवाय एव युतसिद्धिः सम्मता, अण्वाकाशयोर्युताश्रयसमवायित्वाभावेऽपि संयोगविभागोपलब्धेः पृथग्गतिमत्त्वमेव युतसिद्धिरिति वस्तुगतेः। अप्राप्तयोर्विद्यमानतेति युतसिद्धेरुभयसाधारणं व्यापकलक्षणमूचे उदयनाचार्यः[24]। यत्तु शङ्करमिश्रो विभुनित्यानित्यद्रव्यसंयोगाणुनित्यानित्यद्रव्यसंयोगव्यापकयुतसिद्धिसम-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्यां समादधन्निव प्रशस्तपादक्तां द्वयीं युतसिद्धिमुपेक्ष्य "सा हि द्वयोरन्यतरस्यो वा पृथग्गतिमात्त्वं युताश्रयाश्रयित्वं वा"[२५]। इत्येवमुभयसाधारणं व्यापकं युतसिद्धिलक्षणमाचष्टे, तत्समीचीनतरमाभाति।

न्यायवैशेषिकतन्त्रस्यैतद्वैलक्षण्यं यदत्र त्रिविधोऽनित्यसंयोग एवाभ्युपगतः,[२६] विभूनामजसंयोगश्च निरस्तः[२७]। विभूनां निष्क्रियत्वादन्तर-कर्मज उभयकर्मजो वा संयोगो न सम्भवति। न च तेषां नित्यत्वात् संयोगजः संयोगो भवति। संयोगोऽजो भवति न वेत्यस्मिन् विषये नैयायिकवैशेषिकमीमांसकाद्वैतवेदान्तिनां महता विप्रतिपत्तिर्विजृम्भते। विप्रतिपत्तेश्च सन्देह उदयमासादयति। प्रशस्तपादाचार्यो विभूनामजसयोगनिषेधार्थं '(सूत्रकारेण) पृथगनभिधानात्'[२८] 'युतसिद्धयभावात्'[२९] चेति हेतुद्वयमुपाददित। परवर्तिभिः प्रायः सर्वैरपि नैयायिकवैशेषिकैः संयोगस्य प्रशस्तपादकृतोऽजत्वप्रतिषेधोऽन्वसारि। तथा चोक्तं कार्ल् एच्. पॉटरमहोदयेन — "He is followed in this by most of our philosophere" 30

यद्यपि त्रिविधानित्यसंयोगवादिनः सूत्रकारस्याजसंयोगो न सम्मतस्तथापि सूत्रक्रममनपेक्ष्य वैशेषिकग्रन्थस्य रचयितुः सूत्रकारानुक्तनूतनसिद्धान्तोद्भावनया वैशेषिकशास्त्रसमृद्धिं सम्पादितवतः प्रशस्तपादाचार्यस्य '(सूत्रकारेण) पृथगनभिधानात्' इति हेतुः प्रेक्षावतां चित्तमनुरञ्जयितुं न क्षमते। विभुद्रव्याणामुभयथापि युतसिद्धेरभावान्नाजसंयोग इति वस्तुवृत्तम्। न हि विभुद्रव्ययोः पृथगाश्रयाश्रितत्वम्, निराश्रयत्वात्। न च द्वयोरन्यतरस्य वा पृथग्गतिमत्त्वम्, अमूर्तत्वेनोभयोरपि निष्क्रियत्वात्। तदेवं संयोगं प्रति प्रयोजिकाया युतसिद्धेरभावान्नजः संयोग आकाशकालदिगात्मनाम्। "यथा प्रतीतिरादिशति भगवती तथा वयमभ्युपगच्छामः"[३१] इति मन्वानः "विभूनामपि सम्बन्धः परस्परमसम्भवादेव नेष्यते, न परिभाषणात्"[३२] इति जयन्तभट्टो जगाद।

"सूत्रकृतैव खल्वेवमुपदिष्टत्वादिति चेत्, न खलु वै सूत्रकारनियोगभयात् पदार्थाः स्वधर्मं हातुमर्हन्ती" ति[३३] मन्यमानो न्यायवैशेषिकसिद्धान्त-समीक्षादक्षो नैयायिको भासर्वज्ञः[३४] "द्रव्ययोः पारम्पर्येणाप्यवयवावयविभावरहितत्वम्"[३५] इत्येवं नूतनं युतसिद्धिलक्षणमुद्भाव्य विभूनां संयोग-प्रतिषेधं निरस्यन्नभाषिष्ट—"प्रमाणसिद्धश्च विभूनां संयोगः। तथा हि—आकाशेन संयुक्त आत्मा शरीरसंयुक्तत्वात्, भूतलादिवत्"[३६]। तदनुयायी च कोङ्कणदेशाधिपतिरपरार्कदेवो विभूनामजसंयोगं तद्रीत्यैव समर्थयामास[३७]। कार्ल् एच् पॉटरमहोदयस्तु अपरार्कगुरोर्भासर्वज्ञस्यैतद्विशिष्टमतमनिर्दिश्य विभूनामजसंयोगोऽपरार्कदेवसम्मत इत्याह—Characteristically, however,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Apararkadeva disagrees allowing contact between two ubiquitous substance such as Akasa and Time."[३८] ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यटीकायां भामत्यां सर्वतन्त्रस्वतन्त्रो वाचस्पतिमिश्रोऽपि न्यायवैशेषिकसिद्धान्तदूषणप्रसङ्गे युतसिद्धिलक्षणं दूषयन् विभूनामजसंयोगसाधकमनुमानवाक्यमेतत् प्रयुङ्क्ते—"न चाजसंयोगो नास्ति तस्यानुमानसिद्धत्वात्। तथा हि—आकाशमात्मसंयोगि, मूर्तद्रव्यसंयोगित्वात्, घटवदित्यनुमानम्"[३९]। विभूनामजसंयोगसाधकमिदमनुमानमुदयनाचार्येण किरणावल्यां प्रबरतरतर्कैर्निराकारि[४०]। तद्यथा—विभूनां संयोगेऽभ्युपगते तेषां विभागोऽप्यापद्यते। यद्युच्येत—विभूनां नित्यप्राप्तिरूपः संयोग एवास्तु, मा भूद्विभागः; विभुनोर्विभागित्वानुपपत्तेः, तर्हि समवायलक्षणव्याप्तत्वाद् विभुसंयोगस्य गुणत्वानुपपत्तिः। तथापि गुणत्वे समवायोच्छेदापत्तिः। उच्छिद्यतामिति चेत्; तर्हि गुणादीनां निर्गुणत्वादसम्बद्धत्वं प्रसज्यते। न च संयोगव्यापिकाया युतसिद्धेर्निवृत्त्या अयुतसिद्धत्वेन विभूनां समवाय एव स्यादिति वचनीयम्, विभूनां द्रव्यत्वे सत्यकार्यत्वात्, परमाणुवत्। न ह्यकार्यं द्रव्यमकारणे समवैति, आधाराधेयभावनियमप्रसङ्गादिति। तस्मादुदयनाचार्यस्यायमेवोद्घोषः—'अनुकूलतर्काभावात् प्रतिकूलतर्कसद्भावाच्च विभुसंयोगसाधनमन्यथासिद्धम्"[४१]।

भासर्वज्ञोक्तयुतसिद्धिलक्षणमपि न समीचीनताकोटिमाटीकते। अजसंयोगनिराकरणप्रयोजनेन तल्लक्षणं श्रीवल्लभाचार्यो दूषयाम्बभूव[४२]। यदि द्रव्ययोः पारम्पर्येणाप्यवयवावयविभावरहितत्वं युतसिद्धिः स्वीक्रियेत, तर्हि अवयवावयविभावोऽयुतसिद्धिरित्यायाते गुणगुणिनोः क्रियाक्रियावतोर्जातिजातिमतोर्विशेषतद्वतोश्चायुतसिद्ध्यभावः प्रसज्यते। किञ्च, विभूनामजसंयोगसिद्धये नूतनयुतसिद्धिलक्षणस्य प्रतिपादयितुर्भासर्वज्ञाचार्यस्य स्वमतेऽप्याकाशात्मनोरेवाजसंयोगो घटते; न दिक्कालयोः, दिक्कालयोस्तन्मतानुसारेण पृथग्द्रव्यत्वाभावात् महेश्वरेणैव च गतार्थत्वात्[४३]। मानमनोहरकारो वादिवागीश्वरोऽप्यजसंयोगवादिनां भासर्वज्ञादीनां मतं पर्यहार्षीत्। तद्यथा—"आकाश आत्मना संयुज्यते, द्रव्यत्वादिति केचित्। तन्न, क्रियावत्त्वमूर्त्तत्वयोः परत्वापरत्वयोर्वोपाधित्वात्। आत्मा आकाशेन न संयुज्यते, अमूर्तत्वात् रूपवत्"[४४]। मिथिलाविद्यापीठप्रकाशितायां वैशेषिकसूत्रस्याविज्ञातकर्तृकटीकायामपि विभूनामजसंयोगसाधकं भाट्टमीमांसकादिसम्मतानुमानं दूषितम्[४५]। शङ्करमिश्रोऽपि "नित्यस्तु संयोगो न सम्भवति, अप्राप्तिपूर्विकायाः प्राप्तेः संयोगत्वात्, नित्यत्वे तद्विघातादि"[४६] त्यक्त्वा विभूनामजसंयोगमास्कन्दति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदान्तार्थसम्प्रदायविच्चित्सुखाचार्योऽपि संयोगनिराकरणार्थं संयोगलक्षणस्याजसंयोगेऽव्याप्तिमुद्भावयन् पूर्वोक्तमेवाजसंयोगसाधकमनुमानमवोचत्—"आकाशादिकमात्मना संयुज्यते, संयोगित्वाद् घटवदिति प्रमाणसिद्धत्वात्"[४७]। किञ्च, संयोगनिराकरणाय तदुद्भावितेषु दोषेषु संयोगलक्षणस्याजसंयोगेऽव्याप्तिरेव मुख्यो दोषः। भाट्टमीमांसका नित्यानित्यभेदेन द्विविधं संयोगं स्वीकृत्य नित्यविभूनां व्योमकालादीनां नित्यं परस्परसंयोगमभ्युपागमन्[४८]। तेषामनुमानप्रयोगश्चेत्थम्—"विभुनी द्रव्ये परस्परसंयोगिनी, अनारम्भ्यारम्भकद्रव्यत्वे सति निरन्तरत्वात्, घटवत्। आकाशः कालसंयोगी, कालव्यतिरिक्तत्वे सति निरन्तरत्वात्, घटवदित्यादि"[४९]।

युतसिद्धिनिरूपणेन तन्निरूपणाधीननिरूपणाऽयुतसिद्धिस्तद्वैधर्म्येण निरूपितप्राया, अतः प्रशस्तपादाचार्येणाऽयुतसिद्धिस्वरूपं पृथङ् न न्यरूपि[५०]। व्योमशिवाचार्योऽपि युतसिद्धिनिषेधेनायुतसिद्धिर्व्याख्यातेति निर्दिदेश[५१]। समवायलक्षणपदकृत्यनिरूपणानन्तरं श्रीधराचार्येण समवायसम्बन्धानुपपत्तिमन्वानामयुतसिद्धशब्दार्थविकल्पोऽप्युपन्यासि। तद्यथा—"किं युतौ न सिद्धौ ? आहोस्विदयुतौ सिद्धौ ? यदि युतौ न सिद्धौ कस्तयोः सम्बन्धः, धर्मिणोरभावात्। अथायुतसिद्धौ, तथापि कः सम्बन्धोऽपृथक्सिद्धत्वादेव। भिन्नयोर्हि सम्बन्धो यथा कुण्डबदरयोरिति"[५२]। समवायसाधनतत्परेण श्रीधरेण उभावप्येतौ पक्षौ परिहृत्य "तस्मान्न स्वरूपाभेदोऽप्ययुतसिद्धिः, किन्तु अयुतसिद्धानामिति परस्परपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रितानामित्यर्थः"[५३]। इत्येवं परस्परपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रितत्वमेवायुतसिद्धिरभ्यधायि। यद्यपि पूर्वं श्रीधरेण द्वयी अयुतसिद्धिः समर्थिता, तथाप्येकरूपेयमयुतसिद्धिरुभयसाधारणी तस्याभीष्टतरेति दिक्।

"अयुतसिद्धानामपृथगाश्रयसमवेतानाम्"[५४] इत्युक्ते समवायेनैव समवायो लक्षणीयः समवायाभावेन वेति शङ्काविकल्पभीत उदयनाचार्यः "अप्राप्तेर्विद्यमानता युतसिद्धिः"[५५]। तद्वैधर्म्येणाप्राप्तेरविद्यमानता (प्राप्तेर्वा विद्यमानता) अयुतसिद्धिरित्येवं सूचयामास। वस्तुतः उदयनाचार्यस्यापि परस्परपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रितत्वमितीयमेकरूपैवायुतसिद्धिरभिमतेति। अत एव "अयुताः प्राप्ताश्च सिद्धा इति अयुतसिद्धाः"[५६] इति किरणावल्यामुदयनोदितं व्याचक्षाणः पूर्वोक्तायुतसिद्धार्थविकल्पशङ्कितो वर्धमानोपाध्यायः "अन्योन्यपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रिताः"[५७] इति व्याख्याय एकरूपामेवायुतसिद्धिमवोचत्। अयुतसिद्धिश्चेयं समवायसम्बन्धस्य सर्वेषु सम्बन्धिषु घटते, अनित्यानां परस्परपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रितत्वात् नित्यानां चानाश्रितत्वादेव परस्परपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रितत्वात्। उदयनोदीरितरीतिमनुसरन् पद्मनाभमिश्रः "उभयोरसम्बद्धयोरविद्यमानता"[५८]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्येवमयुतसिद्धिलक्षणमकार्षीत्। घटोत्पत्तिक्षणे रूपानुत्पत्तिदशायां घटनाशक्षणे च घटस्य रूपासम्बद्धत्वात् "जात्या तु घटादिरुत्पत्तिक्षण एवं सम्बद्धो भवति"[५९] इत्युक्त्वासम्भाव्यमानामव्याप्तिं पर्यहार्षीत्।

समवायपदार्थं परिहरन् जैनतार्किकः प्रभाचन्द्रो युतसिद्धयुतसिद्धिलक्षणं निराकर्तुं प्रायतत।[६०] यत्तु तेन अपृथगाश्रयवृत्तित्वमयुतसिद्धित्वमित्युद्दिश्य तन्तूनां स्वावयवेष्वंशुषु वृत्तः पटस्य च तन्तुष्विति पृथगाश्रयवृत्तित्वं सम्भाव्य अयुतसिद्धिलक्षणं दूषितं, तन्न समीचीनम्, कन्दलीकारेण श्रीधरेण उभयोरपि सम्बन्धिनोः परस्परपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रयित्वरूपायुतसिद्धेः प्रतिपादनात्।[६१] सा चायुतसिद्धिरस्त्येव तन्तुपटादीनाम्। न च नित्यानां युतसिद्धेस्तन्निर्दिष्टं विभुद्रव्येष्ववृत्तित्वमपि दोषः, नैयायिकवैशेषिकाणामिष्टापत्तेः। युतसिद्धभावाद् विभुद्रव्याणां संयोगो नाभ्युपगम्यते। न चैकद्रव्याश्रयाणां गुणकर्मसामान्यानां परस्परं पृथगाश्रयवृत्तेरभावादयुतसिद्धिप्रसङ्गतोऽन्योन्यं समवायशङ्कापि प्रभा चन्द्रोत्प्रेक्षिता समीचीना, तेषां परस्परमाधार्याधारभावेनानवस्थितत्वात्।

यत्तु तर्कभाषाकारेण केशवमिश्रेण "ययोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ"[६२] इत्ययुतसिद्धलक्षणमुपन्यस्तम्, तदपि नानवद्यम्।[६३] अविनश्यत्पदवर्जं लक्षणमिदमाश्रयनाशेन विनश्यन्ति घटपटादीनि द्रव्याणि गुणकर्माणि च न व्याप्नोति। अत एव तेन लक्षणेऽस्मिन्नविनश्यत्पदं सन्न्यवेशि। अयमत्राभिसन्धिः—पटः कदाचन तन्तुनाशाद्विनश्यति, कदाचित् तन्तुसंयोगनाशात् कदाचिच्चोभयनाशान्नश्यति। यत्र तन्तुसंयोगनाशात् पटनाशस्तदा पटोऽविनश्यदवस्थायामिव विनश्यदवस्थायामपि तन्त्वाश्रित एवावतिष्ठते, तन्तूनां विद्यमानत्वात्। यदा तु तन्तुनाशेन तन्तुतत्संयोगनाशेन वा पटनाशस्तदा पटनाशकारणं तन्तुनाशः पूर्वं भवति, पटनाशरूपकार्यञ्च तदव्यवहितोत्तरक्षणे, न्यायवैशेषिकमते कारणकार्ययोरन्यत्वाभ्युपगमात् पौर्वापर्यनियमाच्च तन्तुविनाशक्षणे विनश्यदवस्थः पटः क्षणमात्रमनाश्रित एवावतिष्ठते। पटरूपमपि विनश्यत्ताकालेऽर्थात् पटनाशक्षणे क्षणमनाश्रितमेवावतिष्ठते। तथा चोक्तं, श्रीधराचार्येण—"तस्मात् पूर्वं द्रव्यस्य विनाशस्तदनुरूपस्य, आशुभावात् क्रमस्याग्रहणमिति युक्तमुत्पश्यामः"[६४]। अत्र चायं विशेषः—न्यायनये पटरूपादीनां स्वाश्रयनाशेनैव नाशः, घटाद्यामद्रव्यगतरूपादीनान्तु सत्येवाश्रये अग्निसंयोगेन नाशः, पिठरपाकाभ्युपगमात्। पीलुपाकवादिनां वैशेषिकाणां मते तु सर्वकार्यद्रव्यगतरूपादिगुणानामाश्रयनाशेनैव विनाशः। यत्तु पोटरमहोदयेन वैशेषिकाचार्यश्रीधरमतमुपन्यस्य तां पाकजप्रक्रियां विहायान्यत्र समवायिकारणद्रव्यनाशेन रूपनाश इत्युक्तम्,[६५] तत्रापि वह्निसंयुक्तघटाद्यामद्रव्यगतरूपादीनामाश्रयनाशादेव विनाश इति विवेक्तव्यम्, पार्थिवपरमाणुरूपादीनामेव वैशेषिकमते पाकेन नाशाभ्युपगमात्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदेवमविनश्यत्पदसमावेशेन आश्रयनाशाद् विनश्यन्ति घटपटादीनि गुण-कर्माणि चायुतसिद्धत्वेन सङ्गृहीतानि भवन्ति ।

सत्यप्येवं न तल्लक्षणं निरवद्यतामाप्नोति, अव्याप्तिदोषस्य तदवस्थत्वात् । न हि नित्यद्रव्यजातिविशेषाणां कदाचिदपि विनश्यदवस्था भवति, नित्यत्वात् । नित्यगुणविशेषा: सदैव स्वाश्रयाश्रिता एवावतिष्ठन्ते । अतोऽविनश्यदवस्थायामपराश्रिता एवावतिष्ठन्त इति मर्यादाकरणमनुपपन्नम् । किञ्च, नित्यद्रव्यसमवेतानित्यद्रव्यगुणकर्माणि विनश्यदवस्थायामपि स्वाश्रयाश्रितान्येवावतिष्ठन्ते ।

यत्तु जगदीशतर्कालङ्कारेण "अयुतसिद्धानामपृथग्भूतानां सर्वदा मिथ: समवेतानामिति यावत्"[६६] इत्युक्तम्, तदपि नानवद्यम्, समवायेनैव समवायो लक्षणीय: समवायाभावेन वेत्युदयनोदीरितशङ्काविकल्पसम्भवात् । आश्रयविनाशाद् विनश्यन्ति कार्यद्रव्यगुणकर्माणि विनश्यदवस्थायामनाश्रितत्वात् (असमवेतत्वात्) सर्वदा मिथ: समवेतानि कथं स्यु: ? विश्वनाथन्यायपञ्चाननोऽप्युतसिद्धलक्षणस्य दुर्व्यवस्थापनीयत्वं दुर्निरूपत्वं वा विचारयन्निव "अवयवावयविनोर्जातिव्यक्त्योर्गुणगुणिनो: क्रियाक्रियावतोर्नित्यद्रव्यविशेषयोश्च य: सम्बन्ध: स समवाय:, ..."[६७] इत्येवं समवायनिरूपणावसरे अयुतसिद्धानां गणनां चकार । यत्तु केशवमिश्रोक्तलक्षणमनुसरता नव्यन्यायनिष्णातेन अन्नंभट्टेन "ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्टते तावयुतसिद्धौ"[६८] इत्युक्त्वायुतसिद्धलक्षणे अविनश्यत्पदं समावेशि, तदपि चिन्त्यम् । अयुतसिद्धलक्षणेऽविनश्यत्पदाहितं महद्दोषं परिज्ञायैव रामरुद्रोऽवोचदेवम्—"ययोरेकमपराश्रितमवतिष्ठते तावयुतसिद्धौ" ।[६९]

विस्तरभियाऽधिकमनुक्त्वात्रोपसंह्रियते । यदि परस्परेण पृथगाश्रयानाश्रितत्वमितीयमेकरूपाऽयुतसिद्धि: स्वीक्रियेत; तर्हि युतसिद्धानां परमाणूनामप्यनाश्रयत्वादयुतसिद्धि: प्रसज्येत । सा च सर्वथाऽनिष्टा नैयायिकवैशेषिकाणाम् । द्विविधायाञ्चायुतसिद्धावभ्युपगम्यमानायां नित्यानित्यायुतसिद्धयो: समवाये कतराऽयुतसिद्धिर्व्यापिकेति शङ्का समुदयमासादयति । यत्तु उदयनाचार्येण "अप्राप्तयोर्विद्यमानता"[७०] "अप्राप्तेर्विद्यमानता"[७१] वेति युतसिद्धिलक्षणमुक्तम्; तदपि न रमणीयम्, विभूनां युतसिद्धत्वप्रसङ्गात् । यदि युतसिद्धिरियं विभुद्रव्येभ्यो यथाकथञ्चिन्निवर्तेत, तर्हि तेष्वयुतसिद्धि: प्रसज्येत । सा च न्यायवैशेषिकपक्षे न सङ्गच्छते । यद्यपि शङ्करमिश्रेण युतसिद्धे: "सा हि द्वयोरन्यतरस्य वा पृथग्गतिमात्रं युताश्रयाश्रयित्वं वा"[७२] इति समीचीनतरलक्षणमुक्तम्, तथाप्यन्यत्र"असम्बन्धयोर्विद्यमानत्वं युतसिद्धि: पृथगाश्रयाश्रितत्वं वा"[७३] इत्यवोचीति न हि स्वोक्तेऽप्यसौ अभिनिवेशवान् । सर्वार्थोपदेशप्रवृत्तेन सर्वज्ञेन महर्षिकणादेन युतसिद्धयुतसिद्धयोर्लक्षणं न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूत्रितम्। न च तल्लक्षणमधिकृत्य नैयायिकवैशेषिकाणां मतेऽन्येकरूपतावतिष्ठते, येन तदास्थीयेत।

परमाण्वाकाशयोः परमाणुकालयोः परमाणुदिशोश्च सम्बन्ध इष्यते, न विभुनोः द्रव्ययोः परस्परमिति सर्वमेतत् प्रक्रियामात्रम्। किञ्च, स्वशास्त्रपरिभाषाबलेन विभूनामजसंयोगनिराकरणपक्षो दुर्बलत्वादेव जयन्तभट्टस्य नाभिमतः। विभूनामजसंयोगं व्यासेधद्भिर्नैयायिकवैशेषिकैस्तेषां सम्बन्धविशेषो न चर्चित इति चिन्त्यम्। समवायनिबन्धनो हि नैयायिकवैशेषिकाणां कार्यकारणभेदवादः। समवायव्यवस्थापनाय च तैरयुतसिद्धिः स्वीक्रियते। परमार्थतस्तु विवर्तवादो भवतु असत्कार्यवादो वाऽन्यो वा, परन्तु यस्य शास्त्रस्य यदुद्देश्यं तत्पूर्त्तावेव तत्प्रामाण्यम्। नैयायिकवैशेषिकाणां स्वशास्त्रेऽपि युतसिद्धयुतसिद्धयोर्लक्षणविषये विप्रतिपत्त्यभावो न लभ्यते इत्यसमञ्जसम्। जयन्तभट्टोऽपि स्वशास्त्रोक्तयुतसिद्धयुतसिद्धिलक्षणस्य दौर्बल्यं विचार्यैव "सर्वं चैतदबाधितप्रतीतिबलात् कल्प्यते न स्वशास्त्रपरिभाषया"[७४] इत्येवं भगवतीमबाधितप्रतीतिं प्रपन्नः। किञ्च, अयुतसिद्धशब्दोऽपृथगुत्पत्तौ मुख्यः अमिश्रणार्थकयुधातुग्रहणात्। सा च न्यायवैशेषिकमते न द्रव्यगुणयोरस्ति। गुणादीनां द्रव्याधीनत्वं निराकर्तुं श्रीमच्छङ्कराचार्या ब्रह्मसूत्रभाष्येऽयुतसिद्धत्वमपृथग्देशत्वं वापृथक्कालत्वं वाऽपृथक्स्वभावत्वं वेति त्रिधा विकल्प्य पर्यहार्षीत्।[७५] यत्तु भामत्याद्यद्वैतवेदान्तग्रन्थेषु विभूनामजसंयोगप्रतिपादकमनुमानं निरूपितम्, तदपि विभुसंयोगाव्यापकत्वदोषोद्भावनया नैयायिकवैशेषिकसूत्रगतयुतसिद्धिलक्षणस्य दूषणायैव, न त्वद्वैतवेदान्तिमतेऽजसंयोगस्थापनाय, ब्रह्मभिन्ननिखिलप्रपञ्चस्यानित्यत्वाभ्युपगमात्

मूलग्रन्थान् व्यपाश्रित्य विवेचितं यथायथम्।
दार्शनिकाः परीक्षन्तां युक्तायुक्तविवेकिनः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थसन्दर्भ सूची—

1. Shastri D.N., Philosophy of Nyaya–Vaisheshik and its Conflict with The Buddhist Dignaga School (Critique of Indian Realism), Delhi, 1976, p. 17.
2. Karl H. Potter : Encyclopedia of Indian philosophies Vol II (Motilal Banarsidass, Delhi, P. 48–49

३. कलिकातासंस्कृतग्रन्थमालायां प्रकाशितस्य न्यायदर्शने तात्पर्यटीकाकारस्य वाचस्पतिमिश्रस्योक्तिरियम् ।

४. श्रीकाशीसंस्कृतग्रन्थमालायां प्रकाशिताया न्यायमञ्जर्या. २८५ तमे पृष्ठे ।

5. The Philosophy of Nyayavaisheshik and its Conflict with The Buddhist Dignage School (Critique of Indian Realism), Delhi, 1976 p. 382

६. वैशेषिकसूत्रे ७ २.१३

७. तत्रैव ७.२.२६

८. गङ्गानाथझा ग्रन्थमालायां वाराणसीतः प्रकाशितस्य न्यायकन्दलीसंवलितप्रशस्तपादभाष्यस्य ३६० तमे पृष्ठे ।

९. चौखम्बासंस्कृतग्रन्थमालायां प्रकाशितस्य सूक्तिसेतुव्योमवतीटीकात्रयोपेतप्रशस्तपादभाष्यस्य ४६४ तमे पृष्ठे ।

१०. न्यायकन्दलीसंवलितप्रशस्तपादभाष्यस्य ३७८ तमे पृष्ठे ।

११. तत्रैव ।

१२. अ) तस्यैव ३७८-३७९ तमयोः पृष्ठयो ।

ब) श्रीकृष्णमिश्रेणाऽपि द्वयी युतसिद्धिः समर्थिता । द्रष्टव्या राजस्थानप्राच्यविद्याप्रतिष्ठानप्रकाशितायाः पदार्थरत्नमञ्जुषायाम् समवायपदार्थनिरूपणे ।

स) Dr D. N. Shastri : The Philosophy of Nyaya Vaisheshik and its Conflict with The Buddhist Dignaga School (Critique of Indian Realism) Delhi, 1976, p. 392.

१३. सूक्तिसेतुव्योमवतीटीकोपेतप्रशस्तपादभाष्यस्य ५०६ तमे पृष्ठे ।

१४. तत्रैव ।

१५. न्यायकन्दलीसंवलितप्रशस्तपादभाष्यस्य ३७९ तमे पृष्ठे ।

१६. तत्रैव ।

१७. वटोदरस्थप्राच्यविद्यामन्दिरप्रकाशितस्य किरणावलीसहितप्रशस्तपादभाष्यस्य १५७ तमे पृष्ठे ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१८. सूक्तिसेतुव्योमवतीटीकोपेतप्रशस्तपादभाष्यस्य ४६५ तमे पृष्ठे ।

१९. तस्यैव ५०६ तमे पृष्ठे ।

२०. न्यायकन्दलीसंवलितप्रशस्तपादभाष्यस्य ३७९ तमे पृष्ठे ।

२१. तस्यैव ३७९-८० तमयोः पृष्ठयोः ।

२२. सूक्तिसेतुव्योमवतीटीकोपेतप्रशस्तपादभाष्यस्य ५०६ तमे पृष्ठे ।

२३. तत्रैव ।

२४. किरणावलीसहितप्रशस्तपादभाष्यस्य १५० तमे पृष्ठे ।

२५. वैशेषिकसूत्रोपस्कारे ७,२,९

२६. अन्यतरकर्मजः उभयकर्मजः संयोगजश्च संयोगः ।—वैशेषिक सूत्रे ७.२.९

२७. न्यायकन्दलीसहितप्रशस्तपादभाष्यस्य ३५८-६० तमेषु पृष्ठेषु ।

२८. तस्यैव ३५८ तमे पृष्ठे ।

२९ तस्यैव ३६० तमे पृष्ठे ।

30. Karl H. Potter : Encylopedia of Indian Philosophies, Vol. II, p. 122.

३१. श्रीकाशीसंस्कृतग्रन्थमालायां प्रकाशिताया न्यायमञ्जर्याः प्रथमभागस्य २८५ तमे पृष्ठे ।

३२. तत्रैव ।

३३. षड्दर्शनप्रकाशनग्रन्थमालायां वाराणसीतः प्रकाशितस्य न्यायभूषणस्य (स्वामीश्री-योगीन्द्रानन्दसम्पादितस्य) अष्टानवतितमे पृष्ठे ।

३४. द्रष्टव्योः मन्निबद्धः "भासर्वज्ञ के न्यायसार का समालोचनात्मक अध्ययन" इत्याख्यः शोधप्रबन्धः ।

३५. न्यायभूषणस्य १७० तमे पृष्ठे ।

३६ तत्रैव ।

३७. मद्राससर्वकारप्राच्यग्रन्थमालायां प्रकाशितस्य न्यायमुक्तावलीसहितन्यायसारस्य प्रथमभागस्य १७७ तमे पृष्ठे ।

38 Karl H. Potter : Encyclopedia of Indian Philosophies, Vol. II, P. 122

३९. भामत्याम् २.२.१७

४० किरणावलीसहितप्रशस्तपादभाष्यस्य १४९–५० तमयोः पृष्ठयोः ।

४१. तस्यैव १४९ तमे पृष्ठे ।

४२. मुम्बईस्थनिर्णयसागरप्रकाशिताया न्यायलीलावत्याः १२५ तमे पृष्ठे ।

४३. न्यायभूषणस्य ५९३ तमे पृष्ठे ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४४. षड्दर्शनप्रकाशनग्रन्थमालायां वाराणसीतः प्रकाशितस्य मानमनोहरस्य ६४ तमे पृष्ठे।

४५. मिथिलाविद्यापीठप्रकाशितस्य अनन्तलालठक्कुरसम्पादितस्य वैशेषिकदर्शनस्य ७१ तमे पृष्ठे।

४६. चौखम्बाप्रकाशितवैशेषिकसूत्रोपस्कारस्य ४१५ तमे पृष्ठे।

४७. षड्दर्शनप्रकाशनग्रन्थमालायां वाराणसीतः प्रकाशितायां चित्सुख्याम् ४८१ तमे पृष्ठे।

४८. षड्दर्शनप्रकाशनग्रन्थमालायां वाराणसीतः प्रकाशितस्य मानमेयोदयस्य २३३ तमे पृष्ठे।

४९. तस्यैव २०७ तमे पृष्ठे।

५०. The problem of the nature or definition of 'inseparableness' which lies at the root of the theory of Samavaya requires some elucidation......... ....The Nyaya-vaisheshik was thus confronted with the problem of finding a definition of inseparableness (ayutasiddhi). It was defined negatively, i.e., by defining separableness (yutasiddhi).—Dr. D. N. Shastri : The philosophy of Nyaya-Vaisheshik and its Conflict with The Buddhist Dignaga School, Delhi, 1976, P. 391.

५१. सूक्तिसेतुव्योमवतीटीकोपेतप्रशस्तपादभाष्यस्य १०८ तमे पृष्ठे।

५२. न्यायकन्दलीसंवलितप्रशस्तपादभाष्यस्य ३८-३९ तमयोः पृष्ठयोः।

५३. तस्यैव एकोनचत्वारिंशत्तमे पृष्ठे।

५४. किरणावलीसहितप्रशस्तपादभाष्यस्य १५७ तमे पृष्ठे।

५५. तत्रैव।

५६. तस्यैव अष्टादशपृष्ठे।

५७. बङ्गीयएशियाटिकसोसाइटीप्रकाशितकिरणावल्याः (प्रकाशविवृत्युपेतायाः) १३३ तमे पृष्ठे।

५८. सूक्तिसेतुव्योमवतीटीकोपेतप्रशस्तपादभाष्यस्य ५८ तमे पृष्ठे।

५९. तस्यैव ५९ तमे पृष्ठे।

६० मुम्बय्यां प्रकाशितस्य श्री महेन्द्रकुमारजैनसम्पादितप्रमेयकमलमार्त्तण्डस्य ६०९ तमे पृष्ठे।

६१. न्यायकन्दलीसंवलितप्रशस्तपादभाष्यस्य ३७ तमे पृष्ठे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६२ पुण्यपत्तने प्रकाशितायाः श्री गजेन्द्रगडकरकरमरकरसम्पादितायास्तर्कभाषायाः षष्ठे पृष्ठे ।

६३. तर्कभाषाया नैयायिकप्रवरश्रीबदरीनाथशुक्लरचितायाः हिन्दी व्याख्यायाः ४३-४५ तमेषु पृष्ठेषु द्रष्टव्यम् ।

६४. न्यायकन्दलीसंवलितप्रशस्तपादभाष्यस्य २५३ तमे पृष्ठे ।

65. ...., since the cause of the destruction of a color is the destruction of the substance in which it inheres (except in cooking), the quality persists for a moment after the substance is destroyed.–Encyclopedia of Indian philosophies, Vol. II, PP. 118-119.

६६. सूक्तिसेतुव्योमवतीटीकोपेतप्रशस्तपादभाष्यस्य ५८ तमे पृष्ठे ।

६७. चौखम्बाप्रकाशिताया न्यायमुक्तावलीसंवलितकारिकावल्या दिनकरीरामरुद्रीसनाथीकृतायाः ८६ तमे पृष्ठे ।

६८. मुम्बईसंस्कृतग्रन्थमालायां प्रकाशितस्य आठल्येबोडासमहोदयसम्पादितस्य तर्कसङ्ग्रहस्य ६२ तमे पृष्ठे ।

६९. न्यायमुक्तावलीरामरुद्रीदिनकरीसहित कारिकावल्याः ८८ तमे पृष्ठे ।

७०. किरणावलीसहितप्रशस्तपादभाष्यस्य १५० तमे पृष्ठे ।

७१. तस्यैव १५७ तमे पृष्ठे ।

७२. वैशेषिकसूत्रोपस्कारे ७.२.९

७३. वैशेषिकसूत्रोपस्कारे ७.२.१३

७४. श्रीकाशीसंस्कृतग्रन्थमालायां प्रकाशिताया न्यायमञ्जर्याः प्रथमभागस्य २८५ तमे पृष्ठे ।

७५. ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये २.२.१७

डॉ० गणेशीलाल सुथार
प्रवाचक
संस्कृत विभाग
हरिसिंह गौड़ विश्वविद्यालय
सागर (म. प्र.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

❖ तुलसी की रहस्य-दृष्टि ❖

चिन्तनशीलता और चेतनता मानव-मस्तिष्क का अपरिहार्य गुण है। अपनी विचारशक्ति के कारण मानव सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी माना गया है। उदरपूर्त्ति, आत्मरक्षा एवं प्रजनन प्राणिमात्र की मूल प्रवृत्तियाँ हैं परन्तु इन प्रवृत्तियों की पूर्त्तिमात्र मानव को सन्तुष्ट नहीं रख सकी, वह इन सबके अतिरिक्त भी कुछ जानना तथा समझना चाहता है। इस जिज्ञासा में ही उसके द्वारा अर्जित समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत निहित है। वह सदैव प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों के प्रति सचेष्ट और जिज्ञासु रहा है। इस परिवर्तन और पुनरागमन की पृष्ठभूमि में किस अज्ञात शक्ति का हाथ है—ये प्रश्न मनुष्य में निरन्तर रहस्य के प्रति जिज्ञासा सर्जन करते रहे हैं। अज्ञात रहस्य की इस जिज्ञासा को मानव ईश्वर प्रदत्त तर्क-बुद्धि के द्वारा भेदन करता है। तर्क का यह मार्ग दो विभागों में वर्गीकृत हुआ-प्रथम समष्टि से व्यष्टि की ओर, दूसरा व्यष्टि से समष्टि की ओर। परन्तु यथार्थ में ये दोनों मार्ग पृथक्-पृथक् नहीं है। दोनों का एक ही लक्ष्य है-सत्य तक ले जाना। इन मार्गों से पहुंचकर सत्य की प्राप्ति को ही मनीषियों ने दर्शन नाम दिया है। किन्तु मानव-मस्तिष्क को सत्य के बौद्धिक पक्ष से भी पूर्ण आत्मतुष्टि प्राप्त नहीं हुई। इसी कारण तर्क से ऊपर उठकर उसने रहस्यात्मक सत्ता के साथ अपना भावनागत सम्बन्ध स्थापित किया जिसके परिणामस्वरूप उसे सत्य की प्रत्यक्षानुभूति हुई। उसकी यह अनुभूति किसी काल अथवा देश विशेष की सीमा में सीमित नहीं है। प्रत्यक्षजन्य वह आनन्दानुभव प्रत्यक्षकर्त्ता की वाणी से स्वतः प्रस्फुटित होकर भी अवर्णनीय है। वह जल से आप्लावित उस वेगवती सरिता के समान था जिसका आवेग भाषा के दुकूलों में बद्ध होकर नहीं रह सका। वह अनुभवगम्य अधिक था, शब्दमय कम। अस्तु; अज्ञात, अनन्त, असीम और सत्य शक्ति की अनुभवगम्य प्रत्यक्षानुभूति ही "रहस्यवाद" के नाम से अभिहित हुयी।

दर्शन और रहस्यवाद में तात्त्विक अन्तर है। सत्य का ज्ञान दर्शन है तथा सत्य का प्रत्यक्ष रहस्यवाद। दर्शन तर्क-बुद्धिजन्य है। और रहस्यवाद अनुभवजन्य। दर्शन मस्तिष्क की वस्तु है तो रहस्यवाद हृदय की। दर्शन चिन्तन और विचार प्रधान है तो रहस्यवाद भावप्रधान और अध्यात्म-प्रधान। दर्शन में ज्ञान का होना अनिवार्य है पर रहस्यवाद में ऐसी कोई शर्त नहीं है। दर्शन और रहस्यवाद दोनों का लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार है किन्तु दर्शन उसे तर्क-बुद्धि के माध्यम से तथा रहस्यवाद उसे अतीन्द्रिय पराबौद्धिक माध्यम से प्राप्त करता है। रहस्यवाद के लिये अन्तर्ज्ञान के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार आवश्यक है इसी कारण धर्म रहस्यवाद के अधिक निकटस्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, दर्शन कम। धर्म परमात्मा-विषयक है, परन्तु वह अन्तर्ज्ञान को साक्षात्कार के लिये अनिवार्य नहीं मानता। धर्म के लिये परमात्मा विषयक तर्कपूर्ण दार्शनिक-विचार भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना अन्तर्ज्ञान द्वारा साक्षात्कार। धर्म का एक दूसरा उद्देश्य मोक्ष और स्वर्ग भी है। परन्तु रहस्यवाद में स्वयं परमात्मा ही आदि और अन्त दोनों हैं। उसमें मोक्ष और स्वर्ग आदि साध्य नहीं हो सकते। साध्य तो मात्र परमात्मा का साक्षात्कार तथा उसका शान्त–निश्चल आस्वादन है। धर्म के परिप्रेक्ष्य में यदि भक्ति पक्ष का मूल्यांकन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि धर्म का साध्य तथा विषय रहस्यवाद के अत्यन्त निकट है। परमात्मा का ही ज्ञान परमात्मा की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। शाब्दिक कोरा ज्ञान, ज्ञान नहीं, अज्ञान है। अतः सच्चा भक्त रहस्यवादी ही हो सकता है, किन्तु भक्ति विना रहस्यवाद के भी कुछ अंशों में सम्भव है। रहस्यवाद की फलमयता भक्ति में सम्भव है इसलिए प्रत्येक भक्त कवि में रहस्यवादी वृत्तियों का होना अनिवार्य है। इस सन्दर्भ में "सिया राममय सब जग जानी" की घोषणा करने वाले भक्त तुलसी को रहस्यवादी न मानना रहस्यवाद के व्यापक क्षेत्र को संकुचित कर देना है।

रहस्यवादी भक्त कवि तुलसी के हृदय में विषयी और विषय अभेद हो जाते हैं। विषयी का ज्ञान उसे इतने निकट से होता है कि विषय स्वतः तद्रूप हो जाता है। साधारण ज्ञान में इन्द्रियों का विषयी के साथ सम्पर्क मन या बुद्धि के माध्यम द्वारा होता है, जैसे शर्करा के माधुर्य का। किन्तु रहस्यात्मक ज्ञान में साधारण विषयों को ग्रहण करने वाली बुद्धि और विषयेन्द्रियाँ दोनों ही भाग नहीं लेती हैं। इन दोनों के परे वह अन्य प्रकार का ज्ञान होता है जो ज्ञेय और ज्ञाता को सम्पूर्ण रूप से ओत-प्रोत कर देता है। स्वयं ज्ञाता उस अवधि के लिये ज्ञानस्वरूप हो जाता है। तुलसी का यह कथन- "केशव कहि न जाय का कहिये। देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहियै[२], इसे सोलह आने प्रमाणित कर देती है। उन्होंने सत्य के स्वरूप का साक्षात्कार किया था, उसके असीम आनन्द का अनुभव किया था, किन्तु उस अनुभूत स्वरूप और आनन्द को यथावत् व्यञ्जित करने में वे भी सफल न हो सके। तभी तो उनके मुख से उपर्युक्त पद निःसृत हुआ। "रामचरितमानस" के अनेक स्थलों पर इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है[३]। यही नहीं, तुलसी की प्रतिभावान् समर्थ भाषा भी जिस पर उनका पूर्णाधिकार था, सत्य के उस स्वरूप का वर्णन करने में समर्थ न हो सकी[४]।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब तुलसी सत्य के उस स्वरूप को वर्णन करने में सक्षम नहीं थे तो उन्होंने उसका वर्णन क्यों किया? रहस्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर्शी उस परमतत्व के विषय में कहे बिना चुप क्यों नहीं रह सके ? वस्तुतः तुलसी हृदय में उस दिव्य साक्षात्कार का आनन्द-प्रवाह इतना तीव्रतम था कि वह वाणी के रूप में मानस से फूट निकला। वे अपनी परम सुखद अनुभूति को अपने तक ही सीमित न रख सके और स्वान्तःसुखाय लोक के सामने उन्हें अपने भावों को व्यक्त करना ही पड़ा[५]। बात यहीं तक नहीं, तुलसीदास सदृश मनीषियों ने अपने अनुभव के साथ ही अपने पूर्ववर्ती के अनुभव की भी व्यंजना की है। यद्यपि सभी उस रहस्य को यथावत् वर्णन करने में अपने को अक्षम पाते हैं परन्तु सभी ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उसका वर्णन करने का प्रयास किया है[६]। उन्होंने असीम तत्त्व के अनुभव को ससीम बुद्धि-व्यापार का विषय बनाया है और उसे नाम एवं रूप के माध्यमों द्वारा पाठकों को ग्रहण कराया है।

रहस्यानुभूति की ओर तुलसी को प्रेरित करने वाले अनेक तत्व, कारण और आधार हैं, इनमें से प्रमुख है औत्सुक्य (जीवन-मृत्यु के प्रति) दुःख की निवृत्ति अथवा अनुभूति, आनन्द की उपलब्धि अथवा अभिलाषा, वैराग्य के जन्मजात संस्कार एवं धार्मिक ग्रन्थों का मनन, सत्संग आदि। इन सभी तत्वों में दुःख-निवृत्ति तथा आनन्द-प्राप्ति को तुलसी ने सर्वाधिक महत्त्व दिया है। शेष सभी तत्त्व तथा कारण इन पर ही अवलम्बित हैं। वे साधारण लोक-कल्याण में निरत आचार-मान्य रहस्यवाद के पोषक थे। यही कारण है कि उन्होंने इस द्वन्द्वात्मक दुःखमय जीवन से पृथक् रहकर उस सर्वात्मक रहस्य से सम्बन्ध जोड़ना अभीष्ट समझा था। अपने चारों ओर के प्राकृतिक उपकरणों से आश्चर्यान्वित होकर, रोग, पीड़ा और मृत्यु की विषम स्थितियों से शोकाकुल होकर तथा नवीन प्राणी के जन्मादि से हर्षोन्मत्त होकर तुलसी ने यह अनुमान किया होगा कि इन समस्त दृष्ट-अदृष्ट पदार्थों के परिपार्श्व में कोई अज्ञात रहस्यात्मक शक्ति अवश्य है जो सम्पूर्ण जगत् का संचालन, नियंत्रण और संहार करती है। यही भावना तुलसी के ईश्वर की धारणा के मूल में स्थित है जिसे उन्होंने विविध रूप में व्यक्त करने का प्रयास किया है।

तुलसीदास ने परमात्मा का वर्णन अपने इष्टदेव दशरथ-पुत्र राम के रूप में किया है। इसीलिये वे बार-बार पाठकों को स्मरण कराते रहते हैं कि उनके राम मानव नहीं हैं[७]। वेदों ने जिस पुरुष के अंग-प्रत्यंग में लोकों की कल्पना की है, वही विश्वरूप रघुवंशमणि राम हैं, जिसके पग में पाताल, मस्तक में स्वर्ग तथा अन्य अंगों में दूसरे लोक आश्रित हैं, जिसकी भृकुटि-भंग ही भयंकर काल, नेत्र सूर्य तथा केश मेघ-समूह हैं, जिसकी घ्राणेन्द्रिय अश्विनीकुमार तथा जिसका निमेष ही निःसृत वाणी हैं, अधर लोभ, दशन यमराज, बाहु दिक्पाल तथा हास ही माया है। मुख अग्नि, जिह्वा वरुण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा उत्पत्ति, पालन एवं संहाररूपी प्रलय जिनके कार्य हैं। रामावलि ही असंख्य वनस्पतियां, अस्थियां ही पर्वत-समूह, नसें ही सरिताएं, उदर ही सागर एवं निम्न इन्द्रियां ही नर्क हैं। शिव जिनका अहंकार है, ब्रह्मा जिनकी बुद्धि है, चन्द्रमा मन है तथा महान् विष्णु जिनका चित्त है, वह चराचर रूप वाले भगवान स्वयं राम हैं। मनुज होते हुए भी मनुज रूपधारी राम ने माता कौशल्या के सम्मुख अपना यही विराट् स्वरूप प्रकट किया था जिसमें माया, जीव, जगत्, भक्ति आदि सबका सम्मिलित रूप से एकत्रीकरण था[८]।

तुलसीदास ने व्यक्ति की स्वयं की भावना के अनुसार ही प्रभु के स्वरूप का साक्षात्कार होना माना है। जिसकी जैसी भावना होती है उसी के अनुरूप उसे प्रभु का दर्शन होता है। सीता-स्वयम्बर के समय उपस्थित जनसमुदाय में सभी श्रेणियों और मनोभावों के पात्र उपस्थित हैं। उनमें से प्रत्येक अपनी भावना के अनुसार राम का स्वरूप देख रहा है, परन्तु इन सबसे बढ़कर जिस भाव में सीता को राम के स्वरूप का साक्षात्कार हुआ, वह अकथनीय है। स्वयं सीता भी उस आनन्दानुभूति के वर्णन करने में अशक्त रहीं। फिर भला उसको वाणी के द्वारा व्यक्त करने में अन्य कोई किस प्रकार सक्षम हो सकता है[९]। वस्तुतः उस अनिर्वचनीय प्रभु के स्वरूप-दर्शन का प्रत्यक्ष आनन्द भी अनिर्वचनीय है।

तुलसी के जनरंजन राम विराट् रूपधारी अथवा आत्मगत मनोभावनाओं के कल्पित ईश्वर ही नहीं हैं, वे उपनिषदों में वर्णित निर्गुण परमात्मा अथवा कबीर आदि के द्वारा सम्बोधित वेदान्त वेद्य परमतत्त्व भी है। अजन्मा विज्ञानघन, शक्तिधाम, अखण्ड, अनन्त, अमोघ-शक्ति-सम्पन्न भगवान व्याप्त एवं अव्याप्त सब कुछ हैं। वह निर्गुण, महान्, अजेय, निर्दोष, सर्वदर्शी, निर्मम, निरीह, निराकार, निर्विकार, प्रकृति से परे, सुख-राशि, अविनाशी तथा इन्द्रियों की पहुँच के परे, वाणी-तर्क-अनुमान सबके परे है, किन्तु उसका वास प्रत्येक हृदय में है[१०]। उस निजानन्द, निरुपाधि अनूप ब्रह्म के अंशमात्र से ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति होती है ऐसा महान् ब्रह्म जो त्रिदेवों का उत्पत्तिकर्त्ता स्वामी है, सदैव भक्त के वश में रहता है और भक्त के लिये ही लीला-हेतु शरीर धारण करता है[११]। उनमें और आत्मा में उसी प्रकार की अभिन्नता है, जिस प्रकार जल और तरंग में। आत्मा और परमात्मा जल और तरंग की भांति केवल नाम-भेद के कारण पृथक् प्रतीत होते हैं[१२]।

वेदों के सदृश तुलसी ने राम के सभी कृत्यों को अलौकिक माना है। उन्होंने उसे विना पग के चलने वाला, विना करों के विविध कर्मों का कर्त्ता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिना कानों के श्रोता, बिना मुख के सर्वरसग्राही, बिना वाणी के वक्ता, बिना शरीर के स्पर्श करने वाला, बिना नेत्रों के दर्शक, बिना घ्राणेन्द्रिय के सूंघने वाला माना है[१३]। विषयों, इन्द्रियों, देवताओं तथा चैतन्य जीवों का परम प्रकाशक वही है जिसकी सत्यता के द्वारा ही जड़ माया सत्य के समान प्रतीत होती है। समस्त जगत् "शुक्ति का रजत" और "जलगत सूर्य बिम्ब" के सदृश मिथ्या होते हुए भी ईश्वराश्रित है। निद्रावस्थित व्यक्ति जिस प्रकार दुःस्वप्न देख कर दुःखित होता है परन्तु बिना जागे उसका दुःख दूर नहीं होता उसी प्रकार इस मिथ्या संसार का दुःख भी बिना भ्रम मिटे दूर नहीं होता। जिसकी कृपा से मिथ्या का भ्रम मिट जाय, वही परमात्मा राम है[१४]।

अन्तर्यामी, बहिर्यामी प्रभु के स्वरूप तथा मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में भी तुलसी ने उस समय प्रचलित निर्गुण-सन्तों की तीखी चोटों के विरोध में विचार स्पष्ट किये हैं। न मात्र तुलसी का हृदय प्रभु का वास-स्थान है वरन् चराचर के नियन्ता अन्तर्यामी राम सबके हृदयों में स्थिति हैं[१५]। उनके अनुसार अन्तर्यामी भगवान् से भी बहिर्यामी भगवान् बड़े एवं महान् हैं जो कि नाम स्मरण करते ही अविलम्ब भक्त के सम्मुख उपस्थित होकर कष्ट का निस्तार करते हैं, जैसे प्रह्लाद के स्मरण करने पर भगवान् का पाषाण से प्रकट होना। प्रभु के इसी बहिर्यामी रूप से प्रभावित होकर सब लोग पाषाण-प्रतिमा का पूजन करने लगे हैं[१६]।

सर्वत्र समानरूप से व्याप्त परमात्मा, ऐसा कौन देश या काल है जहां विद्यमान नहीं है। सब प्रकार से संसार के राग से रहित परमात्मा प्रेम से उसी प्रकार प्रकट होता है जिस प्रकार काष्ठ से अग्नि। केवल मायाच्छादित होने के कारण निर्गुण ब्रह्म दृष्टिगत नहीं होता। वस्तुतः सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। रूपहीन अदृश्य रूप जो निर्गुण है वही भक्त के प्रेमवश सगुण रूप हो जाता है। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि निर्गुण सगुण कैसे हो सकता है, निर्गुण और सगुण का परस्पर सम्बन्ध वही है जो जल और हिम का है। जल और हिम एक ही है-एक द्रवरूप है और दूसरा उसका ठोस रूप। इसी प्रकार निर्गुण अव्यक्त है और सगुण व्यक्त अथवा दृष्ट[१७]। वस्ततुः सच्चिदानन्दघन अजन्मा राम माया, जीव, जगत्, स्वभाव, कर्म, काल आदि के शासक हैं। वे मन तथा गुणों से परे, दृष्टि, वाणी तथा ज्ञान के लिये अग्राह्य तथा सगुण-रूप में उदार नर-चरित्र कर्त्ता हैं। दीनों के लिये सबल होते हुए भी सरल हैं। भक्तों के लिये मानव-शरीर धारण करने वाले राम स्वयं संकट सहन करके सज्जनों को सुखी करते हैं[१८]।

तुलसीदास अवतारवाद के पोषक थे। अवतारवादी दृष्टिकोण ही उनके सगुण-ब्रह्म के वर्णन की आधारशिला है। उनके इष्टदेव श्रीराम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृथ्वी का भार उतारने के लिये कौशल्या के उदर में अवतीर्ण हुए थे। उनके अवतार लेने के कारणों में भक्तों का हित तथा पृथ्वी के भार को नष्ट करने के साथ ही देवताओं को कष्ट से मुक्त करना है। उनका रूपपरिवर्तन वस्तुतः नट की भांति लीलामात्र है। सगुण और निर्गुण दोनों ही नृपतियों के शिरोमणि, रावण जैसे प्रचण्ड निशाचरों को अपने बाहुबल से नष्ट करने वाले, शरणागत के रक्षक, परम दयालु, पृथ्वी, देव, द्विज, धेनु की रक्षा करने वाले प्रभु राम ने संसार का भार नष्ट करने के लिये नररूप में अवतार लेकर अगणित दारुण दुःखों से लोक को मुक्त किया[१९]। अवतार ग्रहण करने में कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है क्योंकि परमात्मा किसी कारण अथवा नियम से बद्ध नहीं है। उपरिवर्णित कारणों के अतिरिक्त वह अपनी निज इच्छा के कारण ही शरीर धारण करता है अवतार लेने के मूल में उसकी इच्छा-शक्ति ही प्रधान रहती है। उसकी इच्छा के अभाव में कोई भी कारण शायद उसे अवतार लेने के लिये बाध्य न कर सकता। जब वे मन, वाणी और बुद्धि से अतर्क्य हैं तो मानव उनके अवतार कारणों को कैसे भली-भांति समझ सकता है। फिर भी उनके अवतार के विषय में अपनी-अपनी अनुमानित बुद्धि से संतों, मुनियों वेदों, पुराणों ने जो कुछ भी कहा है उसी को हम तुलसी के शब्दों में ढाला हुआ देखते हैं। वस्तुतः उनके अवतार लेने के अनेक कारण हैं जो एक से एक परम विचित्र और रहस्यमय हैं[२०]।

राम का अवतारी रूप सर्वग्राह्य और सार्वजनीन है। उनका सगुण रूप भक्तों तथा जीवों के लिये स्पष्ट, दृष्ट तथा प्रत्यक्ष है। नीलकमल, नीलमणि तथा नीले मेघों की समन्वित नीलिमा के सदृश उनका शरीर, शरच्चन्द्र की भांति उनका मुख तथा कपोल, चिबुक और ग्रीवा उसी के अनुरूप सुन्दर है। अरुण अधर, सुन्दर नासिका, श्वेत दंत-पंक्ति से युक्त मुख का हास चन्द्रकिरणों के सौन्दर्य की भी निन्दित करने वाला है। मन्मथ के धनुष की छवि से उत्कृष्ट छवि वाली भृकुटि, ललाट पर लगा हुआ आभामय तिलक, मस्तक पर मुकुट धारण किये हुए, मकराकृति कुण्डल से युक्त अलकावली से भ्रमर-समूह का भ्रम होता है। श्रीवत्स और वनमाला को हृदय पर धारण किये हुए विविध आभूषणों से अलंकृत केहरि के सदृश वलिष्ठ व मांसल कंधों पर यज्ञोपवीत से युक्त, गजकर की भांति सुडौल हाथों में धनुष वाण तथा तरकस शोभित है। पीताम्बर की शोभा दामिनि-द्युति से श्रेष्ठकर है। उदर में त्रिवली शोभायमान है और नाभि की मनोहर छवि यमुना के जलभंवरों की शोभा को भी छीन लेने वाली है[२१]। ऐसा ही सगुण ब्रह्म भक्तों तथा देवताओं के दर्शन तथा नेत्रलाभ का विषय है जो अनुभवगम्य है, वर्णनीय नहीं। "सारद भई भोरी" से यह बात और अधिक प्रमाणित हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठती है[२२]। उनके सौन्दर्य की उपमा भी कामदेव से नहीं दी जा सकती क्योंकि कामदेव में शील, सुमति, साधुता, पवित्रता और सरलता का अभाव है। इसके विपरीत राम परम सुशील, पवित्र, सुमतियुक्त, सरल स्वभाव वाले तथा नीतिरत है[२३]। ये भगवान राम इतने सामर्थ्यवान है कि चेतन को जड़ तथा जड़ को चेतन, रजकरण के तुल्य नीच तथा अधम को पर्वत के सदृश उच्च तथा महान् बना देते हैं। वे भक्त-रक्षक, दयार्द्र तथा करुणापुञ्ज हैं। भौतिक संतापों का विनाश करने में दक्ष राम भक्तों की आराधना का विषय है। वे अहेतुकी कृपा करके मानव-तनु प्रदान करते हैं। भक्तों पर अनुग्रह करना उसका शाश्वत धर्म है। उसी की कृपा से जीव माया से छुटकारा पाता है[२४]। वही जीव के कृत्य-अकृत्य तथा ज्ञान-अज्ञान का कारण है। सारी कर्तृत्व शक्ति परमात्मा की हो हैं[२५]।

वस्तुतः राम ईशों के भी ईश, महाराजाओं के भी महाराज, देवताओं के भी देव तथा प्राणों के भी प्राण, काल के भी काल, महाभूतों के भी महाभूत कर्म के भी कर्म तथा निदान के भी निदान हैं। वेदों के लिये अगम, शीलसिंधु, करुणानिधान परमात्मा तुलसी-सदृश भक्तों के लिये सुगम है। उसकी अपार महिमा मन, वाणी से परे अनिर्वचनीय है। फिर भी मुनिजन अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उसका वर्णन करते हैं तथा अत्यन्त कृपालु भावग्राहक प्रभु उसे सप्रेम सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं[२६]।

तुलसी का माया-वर्णन भी रहस्यात्मक है। तुलसी-साहित्य में "माया" शब्द कहीं पर साधारण छल प्रपंच, कपट के अर्थ में, कहीं पर ऐंद्रजालिक भ्रम के अर्थ में और कहीं पर सृजन शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[२७]। भारतीय दर्शनानुसार परमात्मा की शक्ति व भ्रम को माया तथा जीवगत भ्रम को अज्ञान या अविद्या कहा गया है। तुलसी की दृष्टि में मैं, मेरा, तू, तेरा अहं तथा पर का भाव ही माया है और इसने सभी जीवों को वश में कर रक्खा है। जहाँ तक इन्द्रियों एवं मन की पहुँच है सब माया है[२८]। इस माया के दो स्वरूप हैं एक विद्या तथा दूसरी अविद्या। अविद्या माया अत्यन्त दुष्टा तथा दुःखरूपिणी है जिसके वशीभूत होकर जीव भवकूप में पड़ा है। माया का यह अविद्यात्मक रूप जीव को आसक्त करने वाला है। दूसरी विद्यात्मक माया है जो कि जगत्-रचना का कारण है। यद्यपि माया के अधीन त्रिगुण है तथा माया जगत् की निर्मात्री है, परन्तु उसमें स्वयं का कोई बल नहीं है। वह परमात्मा की प्रेरणा से उसी से शक्ति प्राप्त करके सृजन-कार्य सम्पादित करती है[२९]। वस्तुतः यहां विद्या माया ईश्वर की उपाधि के रूप में तथा अविद्या माया जीव के आच्छादक रूप में मानी गई है। ईश्वर की सत्ता से ही माया का अस्तित्व एवं कर्त्तव्य उन्हें मान्य है[३०]।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माया ईश्वर की वशवर्तिनी तथा गुणों की खान है। परमात्मा की प्रेरणा से माया जीव को अपने में रत रखती है। माया के वशीभूत होकर ही जीव में "अहम्" का बोध होता है। यदि एकरस अखण्ड ज्ञान हो जाय तो जीव तथा ईश्वर में कोई भेद नहीं है। एक और अनेक का भेद माया का ही कार्य है। जीव स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा का अंश है परन्तु माया के कारण "कीर" और "मरकट" की भांति स्वयं अपने बन्धन का कारण होता है[३१]।

भक्ति परमात्मा की प्रियतमा पत्नी एवं माया उनके दरबार की नर्तकी, दासी है। परमात्मा के भ्रू-विलास से माया सजधज के साथ नटी के सदृश नृत्य करने लगती है। वह ज्ञान-वैराग्य आदि (जिसकी कल्पना तुलसी ने पुरुष वर्ग की कोटि में की है) मुक्ति के साधनों को मोहित कर सकती है परन्तु भक्ति से वह सदैव भयभीत और संकुचित रहती है। वह कठपुतली रूपी समस्त चराचर जीवों को सूत्रधार की भांति मनचाहा नाच नचाया करती है[३२]। उसका अस्तित्व तभी तक रहता है जब तक ज्ञान का प्रकाश नहीं हो जाता। इसमे मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय है परमात्मा की कृपा से ही माया से मुक्ति सम्भव है[३३]। यही नहीं, पुरुष-सूक्त की शैली के समान तुलसी ने परमात्मा का वर्णन करते हुए माया को परमपुरुष का "हास" कहा है[३४]। कमल सघन होकर जलराशि को इस प्रकार आच्छादित कर लेते हैं कि दृष्टिगोचर नहीं होता, इसी प्रकार माया ब्रह्म को इस प्रकार आच्छादित किए हुए है कि वह जीव को दिखलाई नहीं पड़ता। यदि ब्रह्म और जीव के बीच माया का आवरण न होता तो जीव ब्रह्म के स्वरूप का सदैव ही प्रत्यक्ष किया करता। माया से जिस प्रकार ब्रह्म परिछिन्न है, उसी प्रकार जीव भी माया से आवरित है[३५]।

जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं। स्वयमेव को भूल जाने के कारण ही उसकी तथा ब्रह्म की पृथकता प्रतीत होती है। इन दोनों के पृथकत्व का मूल कारण और कुछ न होकर जीव को आत्मविस्मृति अर्थात् अज्ञानता है। जीव को अपने में आसक्त कर आत्मविस्मृति कराने वाली माया के एक नहीं, अनेक अंग हैं। ये इतने असीम और प्रबल हैं कि इनसे शिव और चतुरानन भी भयभीत रहते हैं, अन्य जीव की गणना हो क्या समस्त संसार इस अवर्णनीय सैन्यदल से व्याहा है। काम, क्रोध, मोह, मद, ममता, मत्सर, दम्भ, कपट, पाखण्ड आदि माया के प्रधान गुण हैं। माया के इन उपकरणों को तुलसी ने कहीं पर चोर व बटमार के रूप में और कहीं पर मानस-रोगों के रूप में चित्रित किया है। जीव क्या देव भी इस माया द्वारा सदैव छले जाते रहे हैं। वस्तुतः परमात्मा की मूर्तिमान माया ही नारी है जो संसार में स्त्री-रूप में प्रकट है। यह माया-रूपिणी नारी अत्यन्त दारुण एवं दुःखद है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्योंकि वह समस्त अवगुणों की मूल, शूलप्रद तथा सब दुःखों की पुञ्ज है[३६]।

भगवान की माया की प्रबलता के कारण ही सुर, नर, मुनि, ज्ञानी सभी इसके वशीभूत हैं। इसके निस्तार मात्र प्रभु के अनुग्रह से ही मिल सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विषयों ने तीनों लोकों को जय कर लिया है। इनसे छुटकारा दिलाने वाला केवल भगवान् ही है। देव, मानव, ऋषि ऐसा कोई नहीं है जिसे विषम माया ने मोहित न किया हो। यह विचार कर भगवान् का स्मरण करना चाहिए क्योंकि वे ही माया-पति हैं[३७]। यह माया बड़ी ही रहस्यमयी है, उससे कोई अछूना नहीं रह सका। मनुष्य को अपनी उत्पत्ति, जन्म तथा मृत्यु के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। जो कार्य वह सम्पादित करता है, उसका वास्तविक कर्त्ता वह नहीं है। जो अपने कर्मों का भरोसा करते हैं, अहंभाव रखते हैं, उन्हें निश्चित ही नरक-यातना भोगनी पड़ती है। वास्तव में सबकी कर्त्री तथा नियामिका भगवान् की रहस्यमयी महामाया ही है[३८]।

तुलसी के मतानुसार ब्रह्माण्ड की रचना माया करती है। माया को यह शक्ति परमात्मा से मिलती है। वह मायातीत जिसकी आज्ञा से माया क्षणांश में समस्त लोकों का निर्माण कर डालती है, उनकी अर्द्धाङ्गिनी है। वह मात्र सृजन ही नहीं, परमात्म-संकेत द्वारा जगत् का पालन और संहार भी करती है। हरि-माया के गुण-दोष बिना हरि-भजन के नहीं मिटते। यद्यपि मायाकृत अनेक गुण और दोष हैं परन्तु वे मात्र अविद्या के कारण ही दृष्टिगत होते हैं, उनमें वास्तविकता नहीं होती। वस्तुतः वे प्रतिभाषित होते हैं[३९]।

हरि के मायावश जीव-हृदय में उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता, जैसा कि सती के विषय में प्रत्यक्ष द्रष्टव्य है। परमात्मा की माया के वश होकर जड़ता को प्राप्त जीव निरन्तर भूला हुआ विचरण करता है। भगवान् अपनी माया के प्रेरक हैं जिसकी करनी अत्यन्त कठिन है। वह बुद्धि को लुभाने, ऋषि-सिद्धि को प्रेरित करने, विज्ञान-दीप को बुझाने का कार्य करती है। यह ऐसी विचित्र एवं दुस्तर है कि सरलता से उसका पार नहीं पाया जा सकता। अविनाशी जीव चेतन, अमल, सहज, सुखराशि, ईश्वर का ही अंश है और वही माया के वशीभूत होकर कीर, मरकट की भांति बंध गया है। जड़ और चेतन की मध्य की ग्रन्थि ईश्वर-कृपा पर आधारित है। इसके अतिरिक्त सभी उपाय व्यर्थ हैं[४०]।

इस प्रकार तुलसी ने माया के रहस्यमय स्वरूप का, जिसका उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया था, मनुष्य के दैनिक जीवन से सम्बन्धित भिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपमाओं तथा रूपकों के द्वारा स्पष्टीकरण किया है। माया का कोई एक रूप नहीं है, न कोई एक अर्थ। परमात्मा से पृथक्, परमात्मा को जीव से दूर रखने वाली सृष्टि की संचालिका शक्ति, असीम बलशाली जो कुछ भी दृष्ट है, सब माया ही है। माया के इस रहस्यमय स्वरूप को अवर्णनीय तथा अनिर्वचनीय समझकर संतोष कर लेना ही पर्याप्त है।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सामान्य जीवन से रहस्य अर्थात् अध्यात्म की ओर उन्मुख कराने वाले कौन से प्रवर्त्तक कारण है? जीवन की किन कटु परिस्थितियों से प्रेरित होकर सत्यान्वेषी साधक सांसारिक आकर्षणों एवं प्रलोभनों से विरत होकर भगवत् प्रेम में प्रवृत्त होता है। क्या संसार का मोह-जाल उसे अपने में लिप्त नहीं रख पाता अथवा उसकी प्रवृत्ति ही उससे दूर रहने की होती है? वस्तुत: तुलसी जैसा साधक अपने नित्य के जीवन में घटित जरा, रोग और मृत्यु की अनिवार्यता, बीभत्सता तथा दु:खमयता को देखकर तिलमिला उठता है और इन्हीं से प्रेरित होकर रहस्यात्मक पथ का पथिक बन जाता है।

तुलसी को दृष्टि में संसार की गति बड़ी ही विचित्र एवं वैविध्यपूर्ण है। उसकी गति यही है कि जो उगता है वह अस्त होता है, जो फूलता है वह कुम्हलाता भी है, जिसका निर्माण होता है एक दिन उसका नाश भी होता है तथा आज आने वाले का कल जाना भी निश्चित है। "धरा को प्रमाण यही तुलसी जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना"[४१] आदि पंक्तियों में इसी प्रकार के भावों का निदर्शन हुआ है। संसार में कोई भी संबंध यथार्थ सत्य नहीं है। शरीर के निर्जीव होते ही वे निर्मम स्वजन-परिजन आत्मीयता छोड़कर उसे भस्मसात् कर देते हैं। जिस प्रकार तिजारी आदि ज्वरों को दूर करने के लिए अन्धविश्वासी लोग तिराहे अथवा चौराहे पर टोना करते हैं और चलते समय भूलकर भी उसकी ओर दृष्टि नहीं डालते, इसी प्रकार शव की श्मशान के अन्तिम क्रिया करने के पश्चात् घर की ओर लौटते हुए आत्मीयजन पुन: श्मशान की ओर देखते तक नहीं हैं[४२]। सभी धन-धाम, दारा-सुत आदि को सहज रूप में अपनाते हैं परन्तु संसार से जाने वाले उस प्राणी को कोई नहीं अपनाता। यह सारी प्रीति मिथ्या और आडम्बर है। जिन नृपों ने विश्व को जय करके यम को भी वशवर्ती बना लिया वे भी काल के चक्र से नहीं बच सके, साधारण प्राणी की तो गणना ही क्या[४३]। काल की करालता को देखकर सचेत होने तथा भगवत्-भजन करने के लिये तुलसी का आग्रह है[४४]।

हिन्दू-समाज में प्रचलित पुनर्जन्म तथा जीव का विभिन्न योनियों में पैदा होकर कष्ट उठाना रामनाम स्मरण में प्रवृत्त कराने वाले कारणों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से एक है। भगवत् भजन के द्वारा पुनर्जन्म से मुक्ति प्राप्त हो सकती है और पुनर्जन्म आत्मा की नित्यता अथवा अमरता का द्योतक है। बड़े भाग्य से मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है। अहेतुकी कृपा करने वाला परमात्मा ही मनुष्य-शरीर का प्रदायक है। इस शरीर का फल विषय-भोग नहीं है। इसको पाकर भी जिसने भगवत्-भजन न किया वह मन्दमति आत्महन्ता की गति को प्राप्त होता है। मानव-शरीर के द्वारा स्वर्ग, नर्क, मोक्ष सभी प्राप्त किये जा सकते हैं, इसलिये उसे सबसे अधिक कल्याणकर भगवत्-भजन में ही लगना चाहिये। इस संसार रूपी कर्मक्षेत्र में मानव अपने शरीर के द्वारा मनचाहा खेल-खेलकर जय या पराजय प्राप्त कर सकता है[४५]। मनुष्य शरीर धारण करने का उद्देश्य है परमात्मा का मिलन, जो भगवत्-भजन द्वारा ही सम्भव है। अतः संसार और मानव-जीवन सम्बन्धी परस्पर विरोधी तथ्यों का निरूपण तुलसी ने रहस्यवादी अभिव्यक्ति द्वारा ही सम्पन्न कराया है।

तुलसी-साहित्य में सन्तवर्णन का मूलाधार रहस्य है। सन्तों का व्यापक प्रभाव रहस्यात्मक है जिसे प्रत्येक व्यक्ति नहीं जान सकता। उन्होंने सन्त की उपमा चन्दन से दी है। चन्दन-वृक्ष अपनी सुरभि से अपने निकटस्थ अन्य वृक्षों को भी सुवासित कर देता है, परन्तु अपने तने में लिपटे हुए सर्पों को वह अपने गुणों से प्रभावित नहीं कर पाता, वरन् उनके विष में ही वृद्धि होती है। इसी प्रकार सन्त-जन सज्जन व्यक्तियों को अपने प्रभाव से अपने सदृश बना लेते हैं, परन्तु उनके सम्पर्क में आने वाले दुर्जनों पर कोई सुप्रभाव नहीं पड़ता, वरन् उनकी दुष्टता ही बढ़ती है। इसमें सन्तों का कोई दोष नहीं है, दोष है ग्राहक पात्र का जो अपने भावों की समानरूपता ही सर्वत्र देखता है[४६]।

सन्त और उनके स्वभाव का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि यदि राम सागर है तो धैर्यवान सन्त मेघ। सागर के जल को सर्वत्र सम-भाव से वरसा कर भूमि को उर्वरा एवं शस्यमयी बनाने का श्रेय मेघ को है। राम यदि चन्दन वृक्ष है तो सन्त वायु। चन्दन की सुगंधि को चतुर्दिश फैलाने वाली तथा सबके लिये सुलभ बनाने वाली वायु ही है। कोई धनी या निर्धन हो, उच्च या निम्नकुल का हो, विद्वान् या मूर्ख-अपढ़ हो, सबके लिए रामभक्ति को सहज तथ सुलभ बनाने वाले सन्त ही है। सन्तों के बिना हरिभक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, तुलसी ने सन्तों को रामकथामृत निकालने वाले देवगण कहा है। देवों ने मंदराचल की मथानी द्वारा क्षीर-समुद्र का मंथन करके अमृत प्राप्त किया था, उसी प्रकार ब्रह्मरूपी सागर से ज्ञानरूपी मंदराचल की मथानी के द्वारा संतरूपी देवता रामकथारूपी अमृत प्राप्त करते हैं। ज्ञान के द्वारा ब्रह्म से प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की हुई रामकथा भक्ति के माधुर्य से ओतप्रोत रहती है[४७]।

सुख-दुःख की कसौटी उपस्थित करते हुऐ तुलसीदास संत-मिलन को सुख की चरम सीमा मानते हैं। संतों का सहज स्वभाव मन-वचन-कर्म से परोपकार में रत रहता है। संत परोपकार के लिए कष्ट सहते हैं तथा असंत दूसरों की हानि के लिये कष्ट सहते हैं। कष्ट दोनों ही सहते हैं परन्तु दोनों के उद्देश्य में आकाश-पाताल का अन्तर है। सन्तों का उदय विश्व को शाश्वत सुख प्रदान करने के लिये होता है, जैसे-वृक्ष, सरिता, पर्वत, पृथ्वी का उपयोग दूसरों के हितार्थ ही होता है। ऐसे ही सन्तों के दर्शन-प्रसाद से मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है, तथा उसके सम्पूर्ण संशय नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं[४८]।

तुलसीदास ने संत-महिमा-वर्णन करने में स्वयं को अयोग्य और असमर्थ ठहराकर उसकी उच्चता प्रदर्शित की है। साधु-महिमा का वर्णन करने में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की वाणी भी अपनी अयोग्यता विचार कर संकुचित हो जाती है। सन्तों का चित्त हित अथवा अहित सब में समान रहता है। उन्होंने संतों के इक्कीस वैयक्तिक (षटविकारजित, अनघ, अकाम, अचल, सुचि अमित बोध, इच्छारहित, मितहारी, विद्वान्, सावधान, मदहीन, धीर, निज-गुण-श्रवण-संकोच, परगुण-श्रवण-हर्ष, सम, शीतल, सरल, सुभाव, दम, विरति, विवेक, विज्ञान), बारह सामाजिक (सुखधाम, सत्य-निष्ठा, मानद, नीतिवान्, सब पर प्रीति विप्र-पद-प्रेम, क्षमा, दया, अमाया, विनय, परहित-रत) तथा पन्द्रह आध्यात्मिक (योगी, धर्मगति-प्रवीण, संसार-दुःखरहित, विगत-संदेह, प्रभु-पद-प्रीति, जप, तप, व्रत, नियम, गुरु-प्रेम, गोविन्द-प्रेम, श्रद्धा, मुदिता, विप्रपद-प्रेम, यथार्थ-बोध)[४९] लक्षणों की ओर सकेत किया है जो उनमें सदैव विद्यमान रहते हैं। इन्हीं लक्षणों की वर्त-मानता के कारण उन्हें देवों की श्रेणी में रखा गया है।

तुलसीदास ने संत की वाणी को हृदयस्पर्शिणी सांसारिक भ्रमों को दूर करने वाली तथा अनुभव-सुख-उत्पन्नकर्त्री कहा है। संत की वाणी उस आत्मानन्द का अनुभव कराने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं जिसकी अनुभूति हेतु देवता भी लालायित रहते हैं। उनकी वाणी से "अहं" तथा "पर" के मोहान्धकार नष्ट हो जाते हैं और जीव को आत्मानुभव द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार होने लगता है[५०]। समस्त गुणों के निधान संत-समाज की वन्दना करते हुए तुलसी ने साधु-चरित्र की उपमा कपास से दी है। संत रसहीन होते हुए भी कपास के फल की भांति अत्यन्त गुणमय तथा परम हितकारी होते हैं। संतों की इसी महत्ता के कारण तुलसी ने संत-समाज को गतिवान् (Dynamic) तीर्थराज प्रयाग कहा है। प्रयाग अचल है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु संत-समाज रूपी प्रयाग गतिमान् होने के कारण सर्वत्र, सदैव, सब को सुलभ है। इस तीर्थ में अवगाहन करने से तत्काल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सभी फलों की प्राप्ति होती है जिसके प्रभाव से काग जैसा कर्कश पिक के सदृश मधुरभाषी तथा बगुला सदृश कपटी और मांसभक्षी हंस के समान नीर-क्षीर-विवेकी, मुक्ताभोगी हो जाता है सत्संग की महिमा विचित्र, कौतूहल तथा रहस्य प्रधान है। इसी कारण इसको महिमा का वर्णन वाल्मीकि, नारद तथा अगस्त्य आदि मुनियों और देवताओं ने किया है। जलचर चलचर तथा गगनचर के जड-चेतन सभी जीवों को बुद्धि कीर्ति, सद्गति, विभूति परोपकार भावना सत्संग से ही प्राप्त है। सत्संग विवेक और विवेक से रामकृपा सुलभ होती है[५१] यह कल्याण और आनन्द का मूल है। इसकी सिद्धि है फल, अन्य सब साधन तो फूल की भांति हैं। यह लौह-सदृश दुष्टों को सुधारने का पारस है। किन्तु यह सत्संग भगवत् कृपा से सम्भव होता है। संत परमात्मा की प्राप्ति के साधन तथा सत्संग परमात्मा की कृपा पर अवलम्बित है[५२]।

पूर्ण रूप से पुण्य अर्जित हो जाने पर साधु-संगति तथा गुरु-सेवा का सौभाग्य प्राप्त होता है और सत्संग से ही भक्त की आत्मज्योति परमात्मा की परमज्योति में लीन हो जाती है। अनुपम सुखों की मूल भक्ति भी सन्तों की अनुकूलता से प्राप्त होती है, उसके अभाव में न तो भक्ति प्राप्त हो सकती हैं और न पुण्य-समूह के बिना सत्संग।

सत्संग संसार-चक्र से मोक्ष दिलाने का सरल साधन है और प्रेमा-भक्ति का आधार[५३]। सत्संग का माहात्म्य रहस्यजनक है जो इसे जानता है वहीं इसको आधार बनाकर परमात्मा को प्राप्त करता है। महेश्वर ने उमा के सम्मुख इसी सत्संग की महत्ता का प्रतिपादन किया है[५४]।

भारतीय चिन्तन एवं साधन के क्षेत्र में गुरु का स्थान अविवादग्रस्त एवं सर्वमान्य रहा है। धर्म और समाज की नियामिका शक्ति उसी के हाथ में रही हैं उसने अपनी शिष्य-परम्परा के द्वारा अपने दर्शन तथा साधन का स्थिरीकरण किया है। गुरु अपने रहस्यात्मक अथवा आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा शिष्य को सत्य का साक्षात्कार कराता है। यही कारण है कि धर्म और साधना के क्षेत्र में उसे परमात्मा से भी अधिक महत्ता मिली है। "मानस" के प्रारम्भ में ही "गुरु वन्दना" करते हुए तुलसी ने गुरु को मनुष्य के रुप में स्वयं करुणाकर भगवान् माना है। गुरु का उपदेश अज्ञान का अंधकार दूर करने के लिये अनेक सूर्यों के समान है। गुरु-चरण-रज सुरुचि, सुगन्धि तथा सरस के अनुराग से पूर्ण तथा सांसरिक व्याधियों को नष्ट करने वाली संजीवन औषधि के समान है। वह रज पुण्यवान् पुरुष शिव के शरीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर सुशोभित निर्मल विभूति के सदृश सौन्दर्य, कल्याण और आनन्द की जननी भक्त के मनरूपी दर्पण के मल को दूर करने वाली तथा ललाट पर धारण करने से गुणों के समूह को वश में करने वाली है। गुरु के चरण-नखों की प्रकाशमय ज्योति से हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है, ज्ञान-अंधकार का नाश होता है। गुरु-चरणों की भक्ति से हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं, संसार के समस्त क्लेश मिट जाते हैं। तथा भगवत्-महिमा के सभी रहस्य विदित हो जाते हैं। जिस प्रकार सिद्ध अंजन को नेत्रों में लगाकर पृथ्वी में गुह्य धनराशि को जान लेता हैं उसी प्रकार गुरु-पद-रज रूपी अंजन को लगाकर भगवान् के व्यक्त तथा अव्यक्त सर्वकालीन चरित्र को जान लेता है। यह रज उस मृदु अंजन के सदृश है जो नेत्रों के समस्त दोषों को दूर करके उन्हें संजोवनी शक्ति प्रदान करता है। इसी रज को धारण करके तुलसी मानस रचना में संलग्न हुए[५५]।

तुलसी ने संसार-सागर को पार करने के लिये गुरु की उपस्थिति अनिवार्य मानी है। साक्षात् ब्रह्मा और विष्णु के समान भी, बिना गुरु के संसार से मुक्त नहीं हो सकता। सर्प से डसे हुए प्राणी को गारुड़ि के सदृश गुरु ही जीवनदाता है। वैनतेय गरुड को संशयरूपी सर्प ने डस लिया था तथा कुतर्करूपी लहरें उन्हें आ रही थी परन्तु उनके गुरु काग-भुशुण्डि के वचनों से उनका सम्पूर्ण संशय-विष एवं कुतर्क दूर हो गया। गुरु कृपा से उनका सब मोहजाल नष्ट हो गया तथा उन्हें भगवान राम का अनुपम रहस्य विदित हो गया। अस्तु, बिना गुरु के ज्ञान-प्राप्ति की आशा करना दुराशा मात्र है। इतना ही नहीं, तुलसी का तो यहां तक कहना है जिसे गुरु के वचनों में विश्वास एवं प्रीति नहीं, उसे स्वप्न में भी सुख और सिद्धि सुलभ नहीं होती। उमा का अपने गुरु नारद के प्रति प्रेम इसी भाव का द्योतक है। विषम परिस्थितियों से युक्त, अनेक विघ्न-बाधाओं से पूरित तथा नाना प्रकार के क्लेशों से आक्रान्त इस संसार-सागर में सतगुरु ही ऐसा समर्थ कर्ण-धार है जो कि जीव को निस्तार कर सकता है। वे कहते हैं कि जो गुरु को भगवान से भी अधिक सम्मानित कर उसकी सेवा करते हैं, उनके हृदय में भगवद् निवास होता है[५६]।

साधना-पथ में जप अथवा नाम-स्मरण का विशेष महत्त्व है। इसको ध्यान में रखकर ही गोस्वामी तुलसीदास नाम की महत्ता, उसकी श्रेष्ठता आदि का निरूपण इतना विशद, सुसम्बद्ध तथा सुग्रथित किया है कि उसकी तुलना अन्यत्र नहीं मिलती। वे मूलतः रामस्वरूप के उपासक थे। उनके राम गुणादि से रहित होते हुए भी सर्वगुण-सम्पन्न होकर विरोधाभासों के आश्रय-स्थान थे। उन्हीं के शब्दों में "नाम रूप दुई ईस उपाधि"[५७] अर्थात् नाम और रूप ईश्वर के दो विशेषण हैं। नाम एवं रूप स्वयं परमात्मा नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, यह मात्र परमात्मा की उपाधियाँ हैं। नाम एवं रूप का वास्तविक सम्बन्ध तथा रहस्य अनादि काल से दार्शनिकों के चिन्तन का विषय रहा है तथा उनका वास्तविक स्वरूप अवर्णनीय है, वह मात्र प्रत्यक्ष अनुभवगम्य वस्तु है[५८]।

नाम और रूप में कौन महत्त्वपूर्ण है, इस पर तुलसी मौन हैं। वे उन दोनों बड़ों में से किसी को भी छोटा कहकर पाप के भागी नहीं बनना चाहते। मात्र नामोच्चारण या ज्ञान से स्वरूप-ज्ञान सम्भव ही नहीं, अवश्यम्भावी भी है परन्तु रूप का ज्ञान बिना नाम (शब्द) के माध्यम से असम्भव है। गिरा के साथ अर्थ की भाति नाम शब्द के साथ उसका रूप भी संलग्न है। इस प्रकार समान दृष्टिगोचर होते हुए भी नाम और नामी में स्वामी तथा अनुगामी का सम्बन्ध है। नाम–रूप की इसी अकथ गति को समझकर आनन्द प्राप्त होते है, परन्तु वह वर्णन से परे हैं। निर्गुण और सगुण शब्द भी अपने अर्थों समेत नाम से ही सम्भव है। इसीलिए सगुण राम तथा निर्गुण ब्रह्म दोनों के साक्षी रूप में तथा दोनों का ही ज्ञान एक दूसरे को अथवा साधक को कराने के लिये तुलसी ने नाम को दुभाषिया माना है[५९]। नाम ही सगुण में उसके गुणों तथा निर्गुण में उसकी गुणातीतता का द्योतन कराने वाला होता है। वह निर्गुण-सगुण दोनों ही धारणाओं से श्रेष्ठ है क्योंकि उसने दोनों को हठात् अपने वश में कर रखा है। नाम और नामी (प्रभु) का सम्बन्ध प्रभु और अनुगामी सेवक के सम्बन्ध सदृश है[६०]।

निर्गुण तथा सगुण से नाम किस प्रकार श्रेष्ठ है, इनमें से प्रत्येक का पृथक्-पृथक् उल्लेख करते हुए तुलसीदास ने कहा है कि यद्यपि सच्चिदानन्द, अविनाशी, व्यापक, अक्षत तथा अविकारी ब्रह्म प्रत्येक हृदय में विराजमान है, परन्तु संसार के सभी जीव दीन और दुःखी हो रहे हैं उस आनन्दमय में स्वयं अपना भाग नहीं पा रहें हैं। नाम के द्वारा वही ब्रह्म अपने स्वरूप में उन्हीं दुःखी जीवों के प्रति इस प्रकार प्रकट हो जाता है जिस प्रकार रत्नों से उनका मूल्य प्रकट हो जाता है। जीव सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है–स्वयं अपने स्वरूप एवं गुणों की प्राप्ति कर लेता है। इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से नाम की अपेक्षा नाम की श्रेष्ठता सिद्ध होती है[६१]। इसी प्रकार उन्होंने मानस के अनेक स्थलों पर राम (सगुण ब्रह्म) की अपेक्षा नाम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है[६२]। वस्तुतः नरतनुधारी सगुण राम के चरित्र तथा कर्म देश-काल द्वारा सीमित प्रतीत हो सकते हैं परंतु नाम स्मरण के द्वारा अनन्त और असीम चरित्रों और प्राप्तियों की सम्भावना साकार हो उठती है। इसलिए राम-नाम स्वयं सगुण देहधारी ब्रह्म राम से भी श्रेष्ठ कहा गया है[६३]।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सगुण अवतारी राम का नाम जगत् उद्धारक, भक्त-वत्सल, पाप-नाशक तथा कालनेमिरूपी कलिकाल राक्षस के लिये हनुमान् की भांति संहारक है। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल, तीन लोक तथा चार युग में नामजप द्वारा लोगों ने मुक्ति-लाभ किया है। वर्तमानकाल कलियुग में जब कि जीव पाप-सागर में मीन की भांति गोते लगा रहा है, केवल प्रभुनाम ही जगत्-जाल को नष्ट करने वाला एकमात्र साधन है। अन्य कालों में कर्म, भक्ति तथा ज्ञान द्वारा भी मुक्ति-लाभ हो सकता था, किन्तु कलियुग में इसका आधार मात्र प्रभुनाम है। इसलिए अनन्त (सतकोटि) प्रभु चरित्रों के ज्ञाता तथा द्रष्टा शिव ने इसलिये राम-नाम को ही श्रेष्ठ मानकर ग्रहण किया है[१४]। रामनाम की सर्वश्रेष्ठता प्रकट करने के लिये तुलसी ने अंकगणित के सिद्धान्त का सुन्दर रूपक उपस्थित किया है। अंकगणित का साधारण सिद्धान्त है कि किसी अंक पर शून्य रख देने से उसका मूल्य दस गुना हो जाता है, परन्तु कोई अंक न होने पर कितने भी शून्य रखने से उसका मूल्य शून्य के बराबर ही रहता है। श्रेय के सभी साधनों को उन्होंने शून्य का स्थान दिया है तथा राम नाम को अंक का स्थान। रामनाम के साथ यदि अन्य साधन रहते हैं तो साधक की साधना का मूल्य बहुत अधिक बढ़ जाता है परन्तु नामरुपी अंक के अभाव में योग, विराग, तप आदि शून्य से अधिक महत्व नहीं रख पाते। ध्यातव्य है कि अन्य सभी साधनों के अभाव में भी नाम अंकरूप होने से मूल्यवान रहता है[१५]। यहां तक कि स्वयं तुलसी अपने बड़प्पन एवं महत्ता का कारण नाम को मानते हैं। उनके लिए राम नाम ही माता-पिता, स्वामी हितू, प्रेम, नेम, हितैषी तथा सर्वस्व है। उसी की उन्हें आशा तथा भरोसा है। रामनाम की यह श्रेष्ठता तुलसी की दृष्टि में उसकी सर्वसुलभता है। समस्त इच्छित पदार्थों को देने वाले कल्पवृक्ष की भांति नामरूपी कामधेनु समस्त अभिलषितों की दात्री तो हैं ही, साथ ही अचल न होकर गतिशीला भी है। यही नहीं, रामनाम कामवेणु भी है अंधे की लाठी की भांति सदैव रखी जा सकती है। वह कल्पवृक्ष के समान फलदायिनी है। वे उसके महत्वांकन में स्वयं को असमर्थ पाते हैं क्योंकि राम का नाम जितना गुणकारी, हितकारी, मुक्तिदायी है उतना ही रहस्यकारी। उसकी श्रेष्ठता का मानदण्ड यह है कि जिसके मुख से धोखे में भी राम नाम निकलता है उसकी पैर की जूती के लिये तुलसी अपने शरीर की त्वचा तक देने को तैयार है। संसार की कोई ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं जिसे नामस्मरण के माध्यम से न प्राप्त किया जा सके[१६]।

मुक्ति स्वर्ग का पर्याय नहीं, प्रभु के साक्षात्कार का पर्याय है। साक्षात्कार की यह स्थिति बड़ी ही रहस्यमय तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण होती है। "रामचरितमानस" में माता कौसल्या को भगवान् राम के उस अद्भुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अखण्ड विश्वरूप का साक्षात्कार होता है, जिसके रोम-रोम में एक नहीं वरन् सहस्रों ब्रह्माण्ड गुम्फित हैं। उस विराट रूप में अगणित सूर्य-चन्द्र, शिव-चतुरानन, पर्वत, सरिता-सिन्धु, पृथ्वी और कानन के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। इन स्थूल (Concrete) वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण कितना उन्हें आश्चर्य चकित किए होगा। इसके अतिरिक्त जीव को मनचाहा नाच नचाने वाली माया तथा उससे मुक्ति दिलाने वाली भक्ति भी उसी स्वरूप के अन्दर दृष्टि-गोचर हुई। इतना ही नहीं, जिसके विषय में किसी ने कभी सुना ही नहीं उस रहस्यमय स्वरुप का साक्षात्कार करके कौशल्या का तन पुलकित हो उठा, आनन्दाधिक्य के कारण मुख से शब्द निःसृत न हो सके। मूक की भांति नयन मूंद कर भगवान् के चरणों में मस्तक झुका दिया[६७]। यह पुलक और हर्ष-विह्वलता के पल माता कौसल्या की ही नहीं है वह है तुलसीदास के द्वारा आस्वादित परमात्मप्रत्यक्षजन्य आनन्द, जिसका उन्होंने अप्रत्यक्ष-रूप से माता कौसल्या के मिस उल्लेख किया है। भगवान् के ऐसे अनुपम रूप का वर्णन करने में वेद, शेष, शुकदेव, शंकर और स्वयं वाणी की अधि-ष्ठात्री देवी शारदा भी समर्थ नहीं है फिर अकिंचन तुलसी की क्या विसात। यह स्वरूप मन वचन से परे इन्द्रियातीत परम रहस्यमय है[६८]। अस्तु, कहने की आवश्यकता नहीं कि तुलसी की रहस्य-दृष्टि व्यापक, प्रभावशाली, विचित्र और आनन्दानुभूति से परिपूर्ण थी।

डॉ० हौसिला प्रसादसिंह
प्रवाचक, हिन्दी विभाग,
हरिसिंह गौड़ विश्वविद्यालय,
सागर.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ :

१. रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड ८/२.
२. विनयपत्रिका, गीता प्रेस, गोरखपुर, पद २६४.
३. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ८० क
४ वही, उत्तरकाण्ड ८८/३-४.
५ वही, बालकाण्ड श्लोक ७.
६. वही, बालकाण्ड १३/१.
७. वही, बालकाण्ड ११८/१; सुन्दरकाण्ड ३८/१, किष्किन्धाकाण्ड २५/६.
लंकाकाण्ड १३/४.
८ वही, बालकाण्ड, दोहा २०१
९. वही, बालकाण्ड, २४१/४ से २४२/८ तक.
१० वही, उत्तरकाण्ड ७१/४-८ तथा ३४०/१-५.
११. वही बालकाण्ड ११६/६-८ और दोहा तथा ३४०/१-४.
१२. वही, उत्तरकाण्ड ११०/३-६
१३ वही, बालकाण्ड ११७/४-८.
१४. वही बालकाण्ड ११६/५-८ तथा दोहा संख्या ११७.
१५. वही, बालकाण्ड ११८/१.
१६. तुलसी-ग्रन्थावली १२६, पृ० १९३.
१७. रामचरितमानस, बालकाण्ड ११५/१-३.
१८. वही, बालकाण्ड १२/३-६ तथा २३/१.
१९ वही, उत्तरकाण्ड १२/१, लंकाकाण्ड १०९/४, सुन्दरकाण्ड ३८/१-३.
२०. वही, बालकाण्ड १२०/१-८ तथा दोहा, १२१, १२१/१-२.
२१. वही, बालकाण्ड १४६/८ तथा दोहा, २४७/१-८.
२२ तुलसी-ग्रन्थावली, पृ० ३४१.
२३ वही, पृ० १७.
२४. वही, पृ० १७५-१७६, २५० तथा रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड १२/२,४३/३,
दोहा ९० क, ख, ११९ ख.
२५. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा १२४ क.
२६. वही, उत्तरकाण्ड ९१ के बाद का छन्द तथा तुलसी-ग्रन्थावली, पृ० १९२.
२७. रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, १५/२, अरण्यकाण्ड दोहा १९ख/छन्द २/५-८.
बालकाण्ड १२५/१-२.
२८. वही, अरण्यकाण्ड १४/२-३.
२९. वही, अरण्यकाण्ड १४/४-६
३०. तुलसी-ग्रन्थावली, पृ० १००.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३१. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड ७७/१-८ तथा ११६/१-२.
३२. वही, उत्तरकाण्ड ११५/३-७, ७१/१-२; बालकाण्ड २०१/३-४.
३३. वही, उत्तरकाण्ड, दोहा ७१ ख.
३४. वही, लंकाकाण्ड पृ० १४/३.
३५. वही, अरण्यकाण्ड, दोहा ३९ क तथा अयोध्याकाण्ड १२२/१ २.
३६. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड ६९/५-८, दोहा ७० क, ख, ७०/१-८. दो० ११५क, अरण्यकाण्ड ४३/१-८.
३७. रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड २०/२-६, उत्तरकाण्ड १२ग/२ छन्द तथा तुलसी-ग्रन्थावली, पृ० १९०.
३८. तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १०५.
३९. रामचरितमानस, बालकाण्ड २०/२, १९१/२-३; २२४ २. सुन्दरकाण्ड २०/२, अयोध्याकाण्ड १२५/५.
४० वही, उत्तरकाण्ड ११६/२-५, तथा तुलसी-ग्रन्थावली, पृष्ठ २७
४१. तुलसी-ग्रन्थावली, पृ० ४१
४२. वही, पृ० ४६४.
४३. वही, पृ० ४६६.
४४. वही, २०-२१.
४५. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड ४२/७, ४३/१-८; दोहा ४४, १२०/९-११.
४६. वही, बालकाण्ड ३७/१-२
४७. वही, उत्तरकाण्ड ११९/१७-१८ तथा दोहा १२० क.
४८. वही, उत्तरकाण्ड १२०/१३-१६, २१ १२४/४-८.
४९. वही, बालकाण्ड ३क/९-१२ तथा अरण्यकाण्ड ४५/४-८, ४६/१-६
५०. तुलसी-ग्रन्थावली, पृ० १०, ११, १७४, १८७.
५१. रामचरितमानस, बालकाण्ड २/४-१३, ३/१-१२.
५२. वही, सुन्दरकाण्ड ६/४, ७/४; अरण्यकाण्ड १६/४; उत्तरकाण्ड ४४/५-६.
५३. वही, उत्तरकाण्ड दोहा १२५ ख.
५४. वही, बालकाण्ड १/१-८ तथा दोहा-१ और २/१-२ तथा सोरठा ५.
५५ वही, उत्तरकाण्ड दोहा-९३ ख, ८९ क, ७९/६-७, ४३/८ तथा अयोध्याकाण्ड १२९/८ और दोहा।
५६–५७. वही, बालकाण्ड २०/१-२.
५८. वही, बालकाण्ड २०/१-८, दोहा सं. १८.
५९ वही, बालकाण्ड २०-८, २२/१–२, २०/१.
६०. वही, बालकाण्ड २२/६–८.
६१. वही, बालकाण्ड २३/१–८, २४/१-८.
६२. वही, बालकाण्ड, दोहा सं. २३ तथा २५.
६३. वही, बालकाण्ड, २१/८, दोहा २५, २६/३-४,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६४. तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १२.

६५. वही, १२, २१, २०४, रामचरितमानस २५/८

६६. रामचरितमानस, बालकाण्ड दोहा २०१ तथा २०१/१-८

६७. तुलसी-ग्रन्थावली, पृ० ३४७.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ता'म मुग़लिया का एक दस्तावेज़

मुग़लों के शाही बावरचीख़ाने से वाबस्ता कुछ क़लमी नुस्खे देखने में आए हैं[१]। इनमें तरह-तरह के खाने बनाने की तरकीबें दी गई हैं। सब का सब तो इस छोटे से मज़्मून में आने से रहा। सिर्फ़ उन तैयारियों को उठाया गया है जिनके ज़रिए जहाँगीर और नूरजहाँ बेगम की गिज़ाई दिलचस्पी पर नई रौशनी पड़ती है। जहाँगीर की मनपसन्द खिचड़ी का बयान जिस नुस्खे से लिया गया है उसकी तस्वीरे-अक्सी आपके सामने है।

"जेर बिर्यानी नूरमहली" और "शुलः खिचड़ी जहाँगीरी" दो ऐसी तैयारियाँ हैं जिनके पकाने की तरकीब से पहले इनके नाम व दूसरे मुद्दों पर ठहर लेने पर इन्हें अपना तारीखी दायरा मिल जाता है। सीधे पका देने पर वह ज़ाइक़ा नहीं।

उल्फ़त बढ़ने पर सन् १६१६ में जहाँगीर ने नूरजहाँ का नाम नूरमहल से बदल कर नूरजहाँ रख दिया था[२]। फ़क़त पच्चीस रुपए के इस पूरे लिबास का नाम भी 'नूरमहली' था जिसका ईजाद करने वाली भी नूरजहाँ ही थी[३]। करिश्मा यह कि यह नूरमहली पोशाक दूल्हा-दुल्हन दोनों की तन आराइश कर लेती थी। गिज़ाई इल्म में भी इसने जो हाथ दिखाए और जिद्दतें कीं उनमें "जेर बिर्यानी नूरमहली" की दो किस्मों का हवाला मिलता है। नूरजहाँ खाने-खिलाने की शौक़ीन थी। १६२० में नूर-सराय में जब उसका बाग़ बनकर पूरा हुआ तब उसने जो 'दावते-समरकंद' दी थी उसमें जहाँगीर के लिए चुनिंदा तैयारियाँ पेश की थीं[४]।

"शुलः खिचड़ी जहाँगीरी[५]" एक सीधी-सादी तैयारी थी। गोश्त पड़े चावल जहाँगीर को बहुत पसन्द थे। युरोपीयन सैलानी एडवर्ड टैरी (१६१६-१६१९) ने भी इस बात का जिक्र किया है[६]। इस खाने में बकरी के छोटे बच्चे का इस्तेमाल किया जाता था। संस्कृत में लिखे मुग़लकालीन वैद्यक ग्रंथों में भी ऐसे मांस को श्रेष्ठ माना गया है :—

"अजासुतस्य बालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम्।
हृद्यं ज्वरहरश्रेष्ठं मुखदं बलदं भृशम्"॥

(भावप्रकाश १, पृ० ५५१)

इन नुस्खों में 'अजासुतस्य ....' के लिए हलवान लफ्ज़ मिलता है। 'जेरबिर्यानी नूरमहली' की अव्वल किस्म[७] हलवान के मांस से ही बनती थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri·

थोड़े में पकाने की तरकीब बयान की जाती है :— गोश्त की बड़ी बोटियाँ कर उन्हें चाकू की नोक से गोद लेते थे। फिर नमक के पानी और अदरक में उन्हें मसला जाता था। अड़तालीस मिनट के सब्र के बाद उन पर दही मला जाता। चौबीस मिनट तक इसी हालत में छोड़ देने के बाद पाँच पैसे वज़न बराबर घी में प्याज को भूनकर मांस को बघार दिया जाता। पानी और धनियाँ मिलाकर उसे गला लेते थे। पानी के खुश्क होने पर ऊपर से दालचीनी, खड़ी लौंग, इलायची और जीरा बिछा देते थे।

इधर चावलों के आधा सीज जाने पर मांस की तह पर डाल दिया जाता। थोड़े चावल जाफरान और घी मिलाकर ज़र्द कर दिए जाते और चावलों के एक गोशे में सब्ज़ चने बिखेर दिए जाते। ऊपर से गरम घी डाला जाता। इसके बाद रोटी की शक्ल[८] का गुथा आटा ऊपर रखकर ढक देते। फिर चारों तरफ गीले आटे से बन्द कर देते। छः मिनट तक आग पर रखने के बाद नीचे की आतिश हटाकर ढक्कन के चारों तरफ गरम कोयले रखकर उसके ऊपर एक पत्थर रख दिया जाता। अड़तालीस मिनट तक दम देकर काम में लिया जाता था[९]।

दूसरी किस्म की 'जेर बिर्यानी नूरमहली' में मांस की जगह रोहू मछली काम में ली जाती थी। मोटे तौर पर तरकीब यही थी लेकिन यहाँ देग़चे की तह पर लकड़ी की छोटी-छोटी खपच्चियाँ रक्खी जाती थीं जिन पर रोहू के टुकड़े रख दिए जाते। मछली के टुकड़ों को पहले तेल में, फिर सौंफ में और आखिर में जीरे के पानी में धोते थे। इसके बाद फिर बेसन में धोकर तिल आखिर दही में डालकर वापस धोते थे[१०]।

नूरजहाँ बेगम[११] व दूसरे ईरानी लोगों के जमघट की वजह से शाही बावरचीखाने पर ईरानी तमद्दुन की छाप पड़ गई थी। एक किस्म की दाल पकाने में भी उसके भाई आसफ खाँ को याद किया जाता है। बेशक इसीलिए शाहजहाँ के बावरचीखाने की चन्द तैयारियों के नाम फ़ारस की मशहूर जगहों की याद दिलाते हैं जैसे क़लिया शीराजी[१२] दुप्याज़ा शीराजी[१३] ज़ेर बिर्यानी खुरासानी[१४] नान यज़्दी[१५], खुश्का गीलानी[१६] वगैरह। तुर्क व अफ़ग़ान सिपाहियों के मुकाबले ईरानी लोग कहीं ज्यादा नफ़ासत-पसंद और टीमटाम के शौकीन थे। खाने की चीज़ों की तरह तरह से आराइश करने में भी ये लोग इनसे कहीं आगे थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) कुछ नुस्खों का ही हवाला दिया जाता है :—

ग्र०—१ 'पोथी रसोई पातसाही की'। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर; क्रमांक ६४२६; ई० १७७६, फारसी से जयपुरी ढूंढाड़ी बोली में तर्जुमा।

ग्र०—२ 'नकल रसोई पातसाही की बावरचीखाना की'। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान; क्र. ५६६, ई० १८२३, मुसन्नफ़ रामलाल मिश्र, फारसी से तर्जुमा।

ग्र०—४ अवध के शाही शिया घराने में मिली १८ वीं सदी का पुराना कल्मी नुस्खा जिसमें फारसी के अलावा अरबी लफ़्ज़ों का इस्तेमाल ज्यादा हुआ है। प्रति मेरे पास महफ़ूज है।

ग्र०—४ 'नुस्ख-ए-शाहजहांनी,' गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मद्रास, क्र. ५२६.

ग्र०—५ "अल्वान-नेमत" अरबी-फारसी शोध संस्थान, टोंक, क्र. ७८६.

(२) तुजुके–जहाँगीरी, Text, Pt. I, 157 p.

(३) A Social History of Islamic India—Muhammad Yasin, p. 41.

(४) Tuzuk-i-Jehangiri, Eng Tr. pt, 2, p. 162

(५) ग्र०—१, पृ. १२५; ग्र०—४, पृ. ८६; ग्र०—५ पृ. १७७; ग्र०—६, पृ. १२२

(६) Early Travels in India (1583–1619)—Foster p. 311

(७) ग्र०—१, पृ ६०—६१, ग्र०—५, पृ. ५०; ग्र०—५, पृ. ३६; ग्र०—६, पृ. २८

(८) फ़ारसी नुस्खों में रोटी के बजाय लिखा है :—

क़रास प्याल: आरद गुजाश्त (ग्र० ४, पृ. ५१)
(आटे की रोटी का प्याला सा ऊपर धर दें)

....

तकय: आरद निहंद (ग्र०—५, पृ. ३६)
(आटे के तकिया सा ऊपर रख दें)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

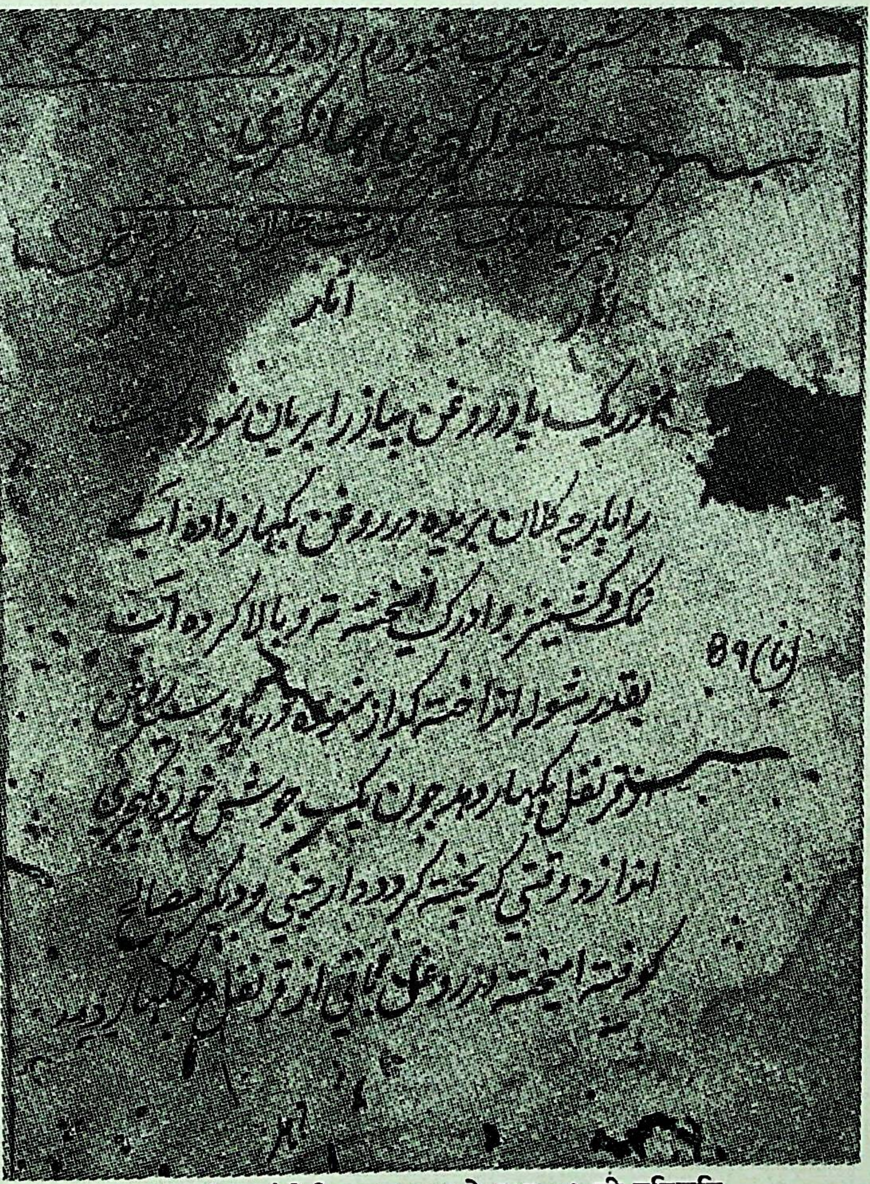

खिचड़ी जहाँगीरी—मूल ग्रन्थ के पृष्ठ ८९ की प्रतिकृति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(९) अज़्ज़ा :—
मांस १ सेर, चावल १ सेर, रौग़न (घी) ६ छटाँक, दालचीनी २ माशा, प्याज़ १ पाव, लौंग-इलायची २-२ माशा, अदरक १ पैसा भर, दही १ पाव, नमक १ पैसा भर, धनियाँ १ पैसा भर, जीरा १ पैसा भर, बूट हरा चना दो छटाँक। ग्र०—१, पृ. ९०-९२

(१०) रोहू १ सेर, चावल १ सेर, घी आधा सेर, दालचीनी-लौंग-इलाइची २-२ माशा, नमक ३ पैसा भर, कड़वा तेल-सौंफ-जीरा २-२ पैसा भर, बेसन २ छटाँक। ग्र०—१, पृ. ९४-९५

(११) नूरजहाँ के भाई आसफ खाँ की मनपसन्द दाल शाही बावरचीखाने में पकाई जाती थी। इसमें बादाम का मग़ज़ डाला जाता और बघार के दो दौर चलते थे। ग्र०—४, पृ. ४१

(१२) ग्र०—१, पृ. ७६-७७; ग्र०—४, पृ. ३४; ग्र०—५, पृ. १७; पृ.—७५

(१३) ग्र०—१, पृ. ७७-७८

(१४) ग्र०—१, पृ. ५२

(१५) ग्र०—१, पृ. ६-७; ग्र०—६, पृ. ५-६

(१६) ग्र०—१, पृ. ३८; ग्र०—५, पृ. १३३; ग्र०—६, पृ. ६२-६३

—डॉ॰ पद्मधर पाठक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यकालीन राग-वर्गीकरण और गिरिधर मिश्र

1. हिन्दुस्तानी संगीत के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राग-रागिणी वर्गीकरण की चर्चा कुछ दूरस्थ भले ही प्रतीत होती हो, रागों के क्रमिक विकास की परम्परा के अध्ययन की दृष्टि से मूल आश्रय राग व तद्भव रागिणियों के अध्ययन के अभाव में वह अधूरी ही रहती है। इस दृष्टि से प्रस्तुत लेख में मध्यकालीन राग-वर्गीकरण की तुलना में नवीन मत की स्थापना करने वाले गिरिधर मिश्र की उपलब्ध रागमाला[1] के राग-वर्गीकरण का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

2. रागिणी वर्गीकरण को प्रस्तुत करने वाले प्रमुख चार[2] मतों को शिवमत, भरतमत, कल्लिनाथमत तथा हनुमन्मत नाम से जाना जाता है। इनमें से भरत और हनुमान ने ६ प्रमुख रागों की ६-६ रागिणियाँ मानी हैं जबकि शेष दो मत प्रमुख ६ रागों की ५-५ रागिणियाँ मानने के पक्षधर हैं। इन मतों के अनुसार निम्नतः राग-रागिणियों का उल्लेख किया जा सकता है।

1. शिवमत—श्री, वसन्त, पंचम, मेघ, भैरव, नटनारायण।
2. भरतमत—भैरव, मालकंस, हिण्डोल, दीपक, श्री, मेघ।
3. कल्लिनाथ—श्री, पंचम, भैरव, मेघ, नटनारायण, वसंत।
4. हनुमान्—भैरव, मालकंस, हिण्डोल, दीपक, श्री, मेघ।

3. आधारभूत रागों की मान्यता के विषय में मतभेद स्पष्ट है। फिर भी मध्यकाल में अत्यन्त लोकप्रिय दामोदर पण्डित ने अपने ग्रन्थ में रागार्णव के वर्गीकरण को स्वीकार किया है। गिरिधर मिश्र यद्यपि प्रमुख ६ रागों के विषय में समान मत के पक्षधर हैं तथापि तद्भव रागिणियों के विषय में स्वतन्त्र मत का प्रतिपादन करते हैं। मिश्र की मान्यता के अनुसार किये जाने वाले राग-वर्गीकरण[3] को निम्न कोष्ठक में दर्शाया गया है :—

राग		रागिणियाँ
1. भैरव	:	देसकार, पटमञ्जरी, मालश्री भैरवी, ललित, सिन्धु
2. मालवकौशिक	:	नट, गौडी, गुणक्री, रामकली, मालवगौड, खंभावती
3. हिण्डोल	:	देसाख, मधुमाधवी, वेलावल, सारंग, तोडी, देवगंधार
4. श्री	:	मेघमल्लार, कामोद, आसा, मारू, केदार, सितमल्लार
5. मेघ	:	पंचम, गुण्ड, त्रिभास, बंगाल, गुजरी, ककुभकल्याण
6. दीपक	:	देसी, कानडा, वैराडी, वसन्त, सोरठी, धन्याश्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4. रागार्णव व दामोदर पण्डित ने प्रत्येक मूल राग की ५-५ रागिणियाँ मानी हैं जबकि रागमाला में ६-६ रागिणियाँ स्वीकार की गई हैं। रागमाला में वर्गीकृत मालवगौड, मधुमाधवी, सारंग, देवगंधार, मेघमल्लार, मारू, पंचम, गुण्ड, विभास व सोरठी इन दस रागिणियों का उल्लेख रागार्णव में नहीं है। इसी प्रकार से रागार्णव में वर्गीकृत मदमादि (मध्यमादि सारंग ?), तनक व भूपाली का रागमाला में कोई उल्लेख नहीं है। अर्थात् उपर्युक्त मालवगौडादि, १० रागों के अतिरिक्त रागमाला के अवशिष्ट २६ राग रागार्णव व संगीतदर्पण दोनों ही ग्रन्थों में उद्धृत किये गये हैं। रागिणियों का एक ही नाम से उल्लेख होने पर भी आश्रयभूत मूल रागों के विषय में दृष्टिगोचर होने वाला मतभेद निम्न सारिणी में द्रष्टव्य है :—

रागिणी नाम	रागमालागत मूल राग	रागार्णव/दर्पण गत मूल राग
1. देसकार	भैरव	मेघ
2. पटमञ्जरी	,,	हिण्डोल
3. मालश्री	,,	श्री
4. भैरवी	,,	भैरव
5. ललित	,,	हिण्डोल
6. सिन्धु (सैन्धवी)	,,	भैरव
7. नट	मालव कौशिक	दीपक
8. गोडी	,,	मालव कौशिक
9. गुणक्री	,,	,,
10. रामकली	,,	हिण्डोल
11. खंभावती	,,	मालव कौशिक
12. देसाख	हिण्डोल	हिण्डोल
13. वेलावल	,,	,,
14. तोडी	,,	मालव कौशिक
15. कामोद	श्री	दीपक
16. आसा	,,	श्री
17. केदार	,,	दीपक
18. सितमल्लार	,,	मेघ
19. बंगाल	मेघ	भैरव
20. गुजरी	,,	मेघ
21. ककुभकल्याण	,,	मालव कौशिक
22. देसी	दीपक	हिण्डोल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

23.	कानडा	दीपक	दीपक
24	वैराडी	,,	भैरव
25.	वसन्त	,,	श्री
26.	धन्याश्री	,,	श्री

5 अर्थात् मध्यकालीन प्रचलित रागार्णव की तुलना करते हुए गिरिधर मिश्र के वर्गीकृत रागों को मूल आश्रय राग तथा तद्भव रागिणियों के वर्णन की समानता/असमानता के आधार पर प्रथमतः द्विधा विभाजित किया जा सकता है :—

(1) वे रागिणियाँ जिनका दोनों मतों में एक ही आश्रय राग है। यथा
भैरवी व सिन्धु (भैरव)
गौडी, गुणक्री व खंभावती (मालव कौशिक)
देसाख व बिलावल (हिण्डोल)
आसा (श्री)
गुजरी (मेघ)

(2) वे अवशिष्ट २६ रागिणियाँ जिनका दोनों मतों के अनुसार मूल राग भिन्न है।

6. मूल राग के वर्णन साम्य/वैषम्य के आधार पर इन रागिणियों को पुनः चार प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :—

(अ) समान मूल राग होने पर समान स्वरूप वर्णन वाली रागिणियाँ। यथा—भैरवी, देसाख, श्री, आसा, गुजरी, सिन्धु, खंभावती

(ब) समान मूल राग होने पर असमान स्वरूप वर्णन वाली रागिणियाँ। यथा—गौडी, गुणक्री, वेलावल

(स) असमान मूल राग होने पर समान स्वरूप वर्णन वाली रागिणियाँ। यथा—देसकार, पटमञ्जरी, रामकली, तोडी, बंगाल, वैराडी, धन्याश्री

(द) असमान मूल राग होने पर असमान स्वरूप वर्णन वाली रागिणियाँ। यथा—मालश्री, ललित, नट, कामोद, केदार, सितमल्लार, ककुभ-कल्याण, देसी, बसन्त

7. यद्यपि समान/असमान वर्णन से यहाँ पर तात्पर्य भावात्मक-साम्यादि से ही है तथापि उपर्युक्त समूहों में से रागार्णव/दर्पणगत तुलना के लिये कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये गये हैं :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1 सिन्धु (सैन्धवी) —

त्रिशूलपाणि शिवभक्तियुता
रक्तांबरा धारितबन्धुजीवा ।
प्रचण्डकोपा रसवीरयुक्ता
सा सैन्धवी भैरवरागिणीयम् ।।४

कर कराल करवाल गहइ, वांधि कंधि लगि सीस ।
रुधिर स्रवत सिन्धु लरत, रणरंजित मनु ईश ।।५

2 गौडी—

निवेशयन्ती श्रवणेऽवतंसं
ग्राम्रांकुरं कोकिलनादरम्यम् ।
श्यामा मधुस्यन्दिसु सूक्ष्मनादा
गौरीयमुक्ता किल कोह्लेन ।।६

इन्दुवदन मृगशावद्रग्, कुच उत्तग कटि क्षीन ।
हंसगमनी गौडो दिपई, पेख होत रति दीन ।।७

3 तोडी—

तुषारकुन्दोज्ज्वलदेहयष्टि :
कश्मीरकपूंरविलिप्तदेहा ।
विनोदयन्ती हरिणं वनान्ते
वीणाधरा राजति तोडिकेयम् ।।८

करवीणा तोडो दिपत, रूप रंग वन मांहि ।
ग्ररुण वरुण ग्राभा ग्रधिक, लगे रहित मृग लांहि ।।९

4. मल्लार—

गौरी कृशा कोकिलकण्ठनादा
गीतच्छलेनात्मपतिं स्मरन्ती ।
ग्रादाय वीणां मलिना रुदन्ती
मल्लारिका यौवनदूनचित्ता ।।१०

इन्दुकुन्द गजदन्त द्युति, राग मल्लार श्रुति लंब ।
मधुर धाम मन्थर चलति, सोभित भार नितंब ।।११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार के सभी उदाहरण इस लघुकाय लेख में प्रस्तुत करना असुविधाजनक होने से रागमाला के पाठ को विद्वत्समीक्षा हेतु यहाँ पर प्रस्तुत किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। रागमाला का उपलब्ध पाठ इस प्रकार है :-

रागमाला

करि प्रणाम हरिचरणकु, दुखनासन सुखचित्त ।
होति सुमति जाकइ पढ़त, रागमाला सुनिमित्त ॥१॥

या प्रमदा जिन राग का, तास्युं ताहि संयोग ।
अवर राग संगतइ, गावत पढ़त वियोग ॥२॥

समय विना हरिदरसनइ, उपजत रोष प्रसङ्ग ।
तइ सइ राग समय विना करत होत मतिभङ्ग ॥३॥

प्रात समइ भइरुं करे, मालव सूर उद्योत ।
प्रथम याम हिंडोली कहुं, याम द्वीप द्वै होत ॥४॥

निसा आदि श्री राग को, समयो कहइ प्रवोण ।
मेघ राग मध्यर्राति विण, गावइ सो मतिहीण ॥५॥

भइरव मालव कौशिक फुनि, फुनि हिण्डोल श्रीराग ।
मेघ राग दीपक तइ, ए षट् राग विभाग ॥६॥

देसकार पटमन्जरी[१२], मालसिरी सुखधाम ।
नाद भइरवि ललितसिंधु, भइरव की ए वाम ॥७॥

नट गौड़ी अर गुणकरी, रामकली सुविचारि ।
मालवगौड़ खंभाइती, मालवकौशिक नारी ॥८॥

दइ साख मधुमाधवी, वेलाउल सारंग ।
तोड़ी देवगंधार फुनि, ए हिण्डोल वामङ्ग ॥९॥

ए नागरि श्रीरागकी, मेघमल्लार कमोद ।
आसा मारु केदार फुनि, सितमल्लार सुनि मोद ॥१०॥

मेघराग पंचम सुनउ, ताकी नारी सुजान ।
गुण्ड विभास वगालस्यो, गुजरि ककुभकल्याण ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोरठि सोतउ धन्यासिरी, वैराडीय वसन्त ।
देस वराडी कानडउ, दीपक इनको कन्त ॥१२॥

इति रागमालायां रागरागिणीनिरूपिणो प्रथमाङ्कः ॥१॥

श्याम रूप सोभा सुभग, परम पुरुष मन लीन ।
राग शिरोमणि पेखीयइ, भइरुं भव भय हीन ॥१३॥

कामिनी के कर कमलतइ, सीस खेम रचि लेत ।
देसकार करउ करइ, दरपन सु अति हेत ॥१४॥

विरह ताप तन धूसरइ, पढ़ मंजरी वियोग ।
नलिन कुसुममाला धरइ, प्राणि दुखित मनयोग ॥१५॥

मुग्ध वेस तनु हेम द्युति, मालसिरी वहु भाँति ।
बइठत गिरिकानन तरइ, लावत वीरी पाति ॥१६॥

पारिजात के कुसुम की, दाम धरइ मृगनयन ।
भोर भये निज गेह तइ, निकसी ललित पिक वचन ॥१७॥

दिव्य सरोवर कमलवन, फटिक रचित हरिधाम ।
तामइ करपंकज लियइ, पूजा करत सुठाम ॥१८॥

फुनि रचना ताकी कहु, गीतनाद अलि गान ।
धूप दीप उपचार सब, नाद भइरवि जान ॥१९॥

कर-कराल करवाल गहइ, बाधि कंधि लगी सीस ।
रुधिर स्रवत सिन्धु (?) लरत, रणरंजित मनु ईश ॥२०॥

इति रागमालायां भइरव रागरागिणीनिर्णयो द्वितोयोऽङ्कः ॥२॥

चमर ढाल कामिनी दिपत, द्वे रति कइ सइ रूप ।
कनक पीठ परि कामिनी, मालव कौशिक भूप ॥२१॥

इंदुवदन मृगशावदृग्, कुच उत्तंग कटि क्षीन ।
हंस गमनि गौड़ी दिपइ, पेख होत रति दीन ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाहु पासि दयिता गहइ, मधुर वचन घनरूप ।
मोर मिलइ हित जानि कइ, नट को एह स्वरूप ॥२३॥

पारिजात के पुन्जतइ, कनक कलश लियइ संग ।
निकशित कृशतनु गणकरी, करि धरि कुसुम सु रंग ॥२४॥

नीलांवर तनु हेम द्युति, रामकली वहुमान ।
मानु बुझावत जासु पिय, पायल गिरति जानि ॥२५॥

रामामुख चुंबन किये, कीरकान्ति दगरति ।
संध्या पइठति धाममइ, मालीगौड प्रमत्त ॥२६॥

श्वेत वसन तनु कनकद्युति, चतुरानन मुखमाँहि ।
वहु नागरि सेवा करइ, कहइ खंभायति ताहि ॥२७॥

इति रागमालायां मालवकौशिकरागरागिणीरूपनिर्णये तृतीयोऽङ्कः ॥३॥

नवल नितंब निसंग लिये, सुखद हिंडोल हिंडोल ।
वइठइ घनदामनी लसइ, सखी झुलावत बोल ॥२८॥

केलि धाम पति सीखवइ, आभूषण रचि अङ्ग ।
वेलावल रंभारुचिर, तरु तमाल के रंग ॥२९॥

सारंग कर वीणा गहइ, नारद गान प्रसङ्ग ।
घन तरवर छाया सघन, निरखित लजित अनङ्ग ॥३०॥

कर वीणा तोड़ी दिपत, रूपरंभ वनमांहि ।
अरुण वरुण आभा अधिक, लगे रहित मृग लांहि ॥३१॥

देवगंधार विभूति तन, भगव वेश मुनि जान ।
खीन देह हरिनेह नित, नयन मुंदी मन ध्यान ॥३२॥

प्रवल देह सुर मेघ धनु, भुजादण्ड सुविसाल ।
गौर देह देसाख की, मल्लरूप अविसाल ॥३३॥

अजिनासनु बैठइ मनुं, रति मनोज अनुहारि ।
स्यामचोर मधुमाधवी, गान मान सुविचारि ॥३४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति रागमालायां हिंडोलरागरागिणीरूपनिर्णये चतुर्थोऽङ्कः ॥४॥

तरुण वेस तनु गौरद्युति, अलकलंव अति स्याम ।
चन्द्रानन श्रीराग कहइ, जपमाला लियइ काम ॥३५॥

माननि मेघमल्लार छवि, षट्दश रचे शृंगार ।
धरइ चाप कर बाण फुनि, जीतन काम विचार ॥३६॥

कर जपमाला जप करइ, वइठइ सरिता तीर ।
देखइ मोद कमोद मइ, पहिरइ मृगत्वचचीर ॥३७॥

मोर पिच्छ कइ भूषनहि, पहिरइ चीर सुभेष ।
आसा सवरी रूप उर, लपटइ उरग अशेष ॥३८॥

फुनि ताकी रचना सुनो, भिल्ल भेप पति जास ।
आखैटक हाथी हए, पहिरइ मुकता तास ॥३९॥

कुच उत्तंग अति क्षीण कटि, सुभग रूप तन लाज ।
मारू अपनइ नाथसु, वात करत सुख काज ॥४०॥

इन्दु कुन्द गजदन्त द्युति, राग मल्लार श्रुतिलंव ।
मधुर धाम मंथर चलति, सोभित भार नितंव ॥४१॥

तरुण वेस आभा अधिक, देख करत तन भार ।
कामिनी के विरहते, धूसर तनु केदार ॥४२॥

इति रागमालायां श्रीरागरागिणीरूपनिर्णये[१३] पञ्चमोऽङ्कः ॥५॥

कनकलता कामिनी लिये, मेवराग सुख दइन ।
अलिङ्गन चुंबन रचइ, देखइ त्रियतन नयन ॥४३॥

धरइ नृत्त(?) करमंजरी, श्वेत कुसुम रचि भेष ।
कुंज कुंज चंदन सघन वइठे गुण्ड सुपेख ॥४४॥

कामायुध विधि सूं कियो, अर्धखण्ड कुच धाइ ।
वडो खेद विनास को, गहि सेज कर धाइ ॥४५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौजी गुण मृगत्वच धरइ, ब्रह्मचर्य जित कांम ।
राग बंगाल विराजहिं दीरघ तन अति स्यांम ।।४६।।

सजी शृंगार सज्जा रची, धर वीणा सुर साज ।
पंथ निहारत नाथ को, गूजरि सुख के काज ।।४७।।

श्याम केश श्यामा सुभग, पिताम्वर रुचि भेष ।
कूजत पिक वानी सुनइ, ककुभा काननि पेष ।।४८।।

मदन रूप कल्यान को, कोकिल कंठ समान ।
गायक सजा संपेखइ, गावत वहुविधि तान ।।४९।।

अंग लगाये अरगनो, रुचिर भेष अलि तास ।
बइठि सुर दिये, रति मनोज कइ पास ।।५०।।

इति रागमालायां मेघरागरागिणीनिर्णयो षष्ठांकः ।।६।।

सीस सुचि द्युत स्याम वय, मलय पुष्प उरमाल ।
दीपक नारी गेहमयी, गावत करि धरि ताल ।।५१।।

सुरत देख देसी दिपत, मांगत खिनक विलंव ।
कुच उत्तंग आलस भरी, विरम नाथ तन भंग ।।५२।।

कर क्रियान कानड दिपइ, मोर कंठ द्युति देह ।
दक्षिण कर करिदन्त धरि, कर्णफूलस्यो नेह ।।५३।।

कर कंकन चामर टरत, मंद हास मृदु वइन ।
वइराडी वइठी दिपत, चित्र हरत पिक सइन ।।५४।।

मोरपिच्छ मस्तक धरइ, फुनि रसाल अंकुर ।
वन वसन्त दिन प्रति रमश, सुधनि समाज को मूर ।।५५।।

सुखदायक सोरठि सदा, प्रिय कुं दइत तबोल ।
रूप राशि आभा अधिक, सोभित लोचन लोल ।।५६।।

सांवर देह आभा अधिक, लेख लिखत कलहास ।
धन्य धन्यासी चारु दृग, वोलति वचन सुवास ।।५७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूरव कविकृत देखि कइ, गिरिधर मिश्र विचार ।
रागमाल रूपक रचे, सत कवि लेहु विचार ॥५८॥

इति संगीतसारोद्धारमिश्रगिरिधरविरचितरागमालायां दीपकराग-रागिणीनिर्णय सप्तमोऽङ्कः ॥७॥

इति रागमाला ॥

सन्दर्भ :

१. अधिग्रहणांक ३९६९ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, चित्तौड़गढ़ संग्रह ।
२. संगीतशास्त्र, के. वासुदेव शास्त्री, रागाध्याय
३. रागमाला १-९
४. सं. द. २, ५१
५. रा. मा. २, ५१
६. सं. द. २, ५५
७. रा. मा. ३, २२
८. सं. द. २, ५३
९. रा. मा. ४, ३१
१०. सं. द. २, ७७
११. रा. मा. ५, ४१
१२. पदमंजरी
१३. रागिणीनिर्णये

डॉ० डी. बी. क्षीरसागर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति, ज्ञान और वैराग्य

प्रो० रामचन्द्र दत्तात्रय रानडे ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'Pathway to God' में परमार्थ-पथ के प्रमुख तत्वों का निरूपण करते हुए बताया है कि इस पथ का प्रारम्भ तब होता है जब कोई व्यक्ति सांसारिक जीवन की छलना, अविद्या, विषमता पाप की भावना, जरा-मरण की विभीषिका, और असहायता आदि की अनुभूति से उसकी असारता को हृदयंगम कर लेता है तथा दिव्य जीवन की प्रबल अभीप्सा ले कर वह किसी ईश्वर-साक्षात्कारी संत की शरण में जाता है। ईश्वर-साक्षात्कारी सद्गुरु से ईश्वर-नाम का सबीज मंत्र[1] प्राप्त होते ही साधक की पारमार्थिक यात्रा आरम्भ हो जाती है। ईश्वर अनंत है इसलिये ईश्वर प्राप्ति का मार्ग भी अनन्त है संत ज्ञानेश्वर कहते हैं कि स्वयं शंकर भी ईश्वर-मार्ग के यात्री-मात्र हैं। समर्थ रामदास भी राघव के पथ को अनंत-पथ'[2] की संज्ञा देते हैं प्रो. रानडे ने इसी सत्य की ओर संकेत करते हुए कहा है कि 'ज्ञान' पारमार्थिक जीवन की एक निश्चित 'घटना' नहीं है वरन् वह अनंत ईश्वर को आत्मसात् करने का एक निरंतर अभिवृद्ध होने वाला 'कार्य-व्यापार' है ["Jnana is a process and not an event."] दीर्घकाल तक और निरंतर एकनिष्ठ 'भक्ति' से साधना करते-करते 'ज्ञान' की प्राप्ति होती है, तथा 'ज्ञान' के उदय होने पर सच्चे 'वैराग्य' की प्राप्ति होती है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के पारस्परिक संबंध की सम्यक् व्याख्या करना है तथा इस सम्बन्ध में जो भ्रामक धारणाएं प्रचलित हैं उनका निराकरण करना है।

पारमार्थिक जीवन के सम्बन्ध में अनेकानेक भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। इसका मुख्य कारण है अंधविश्वास के आधार पर प्रत्येक सिद्धान्त को स्वीकार करने की प्रवृत्ति। अनेक पाखण्डी लोग देश और विदेश में अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये ईश्वर, आत्मा, योग, भक्ति, ज्ञान, कर्म और वैराग्य आदि विषयों पर थोथे शब्द-ज्ञान पर आधारित, अनुभव से शून्य उपदेश देकर भ्रांत सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं, और पारमार्थिक जीवन को कलंकित करते हैं। दर्शन के विद्यार्थी होने के नाते हमारा यह कर्त्तव्य है कि अध्यात्म के क्षेत्र में स्वतंत्र तर्क-बुद्धि की सहायता से हम प्रत्येक सिद्धान्त का परीक्षण करें और पारमार्थिक जीवन को अंधविश्वास से पृथक् करके विचार एवं विवेक की आधारशिला पर स्थित करने का प्रयत्न करें।

साधारणतया पारमार्थिक जीवन के सम्बन्ध में यह धारणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचलित है कि सांसारिक जीवन के प्रति वैराग्य उत्पन्न होने के पश्चात् ही भक्ति और ज्ञान सम्भव होते हैं। यहां तक कि Gospel of Shri Ramkrishna' के प्रसिद्ध लेखक एम. ने भी श्री रामकृष्ण के उद्गारों का जो अंकन किया है उसमें भी वैराग्य (Dispassion) को ज्ञान एवं भक्ति का (Knowledge and Devotion) पूर्वगामी बताया गया है। इस धारणा के ठीक विपरीत महेश योगी का जैट–युगीन Transcendenlal Meditation 'वैराग्य को कोई स्थान नहीं देता' उसके अनुसार धन-दौलत, आमोद-प्रमोद आदि समस्त सांसारिक विषयों में राग बनाये रह कर भी भागवत ज्ञान की उपलब्धि की जा सकती है।

इस संबंध में कोई दो मत नहीं हो सकते कि संसार के प्रति एक प्रारम्भिक असंतोष के बिना पारमार्थिक जीवन पर चरण रखना किसी व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं है। किन्तु उसे वैराग्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार सांसारिक झंझटों आपत्तियों, निराशाओं एवं कुंठाओं से जो सभी के प्रति चिड़चिड़ापन और बौखलाहट उत्पन्न होते हैं उन्हें भी वैराग्य नहीं कहा जा सकता। और तो और किसी प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु होने पर श्मशान की विभीषिका देख कर जो 'मसान का वैराग' उत्पन्न होता है वह भी यथार्थ वैराग्य से सर्वथा भिन्न होता है। इसी 'श्मशान वैराग्य' के झटके में कुछ व्यक्ति घर-बार छोड़-कर संन्यासी बन जाते हैं किन्तु उनका वह तथाकथित संन्यास स्थिर नहीं रह पाता और वे कालान्तर में नवीन विषय-भोगों के चक्कर में आकर पतन के गर्त में स्वयं तो गिरते ही हैं वरन् अन्य लोगों को अपने साथ ले डूबते हैं। अपने अमर ग्रंथ दास बोध' में समर्थ रामदास जी इस प्रकार के विवेक रहित वैराग्य के प्रति चेतावनी देते हुए कहते हैं कि ऐसे वैराग्य से संसार और परमार्थ दोनों की हानि होती है और वह अंततोगत्वा पतन का कारण होता है। समर्थ विवेकयुक्त वैराग्य को 'महद्भाग्य' मानते है[४] जब इस असंतोष के आधार पर भी स्थायी पारमार्थिक जीवन का निर्माण नहीं हो सकता तब फिर महर्षि महेश योगी के Transcendental Meditation से परमार्थ कैसे मिल सकता है जब कि संसार के प्रति आसक्ति ज्यों की त्यों बनी रहती है। पारमार्थिक जीवन कोई मनोरंजन नहीं है जिसे सप्ताह दो सप्ताह के कोर्स को पूरा करके प्राप्त किया जा सकता है। वह आजीवन कष्ट का, परिश्रम का, साधना का, त्याग का जीवन है। कबीर कहते हैं कि वे बाजार में जलती मशाल लेकर खड़े है जो व्यक्ति अपना घर फूंकने को कटिबद्ध है वे ही उनके साथ चलें। ईसा मसीह ने भी कहा है कि अपने माता-पिता तक को छोड़ दो और मेरे पीछे लगो। भगवान् बुद्ध ने अपने स्त्री-पुत्र एवं राजपाठ को छोड़ा और वे परमार्थ-पथ पर साहस-पूर्वक अग्रसर हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः संसार को छोड़ने की प्रारम्भिक तैयारी अथवा सांसारिक विषयों के प्रति अनुभव होने वाला असंतोष वैराग्य नहीं कहा जा सकता। सच्चा वैराग्य जहाँ स्वयं अपने शरीर से प्रारम्भ होता है और धीरे-धीरे अन्य संबंधियों एवं वस्तुओं को अपने भीतर समा लेता है, वहाँ मिथ्या वैराग्य संसार के प्रति चिड़चिड़ाहट या क्रोध से प्रारम्भ होता है और तथाकथित वैरागी के शरीर के प्रति स्वार्थ और मोह को केन्द्र बना कर अपने मिथ्यापन में अभिवृद्ध होता है। यह वैरागी अपने शरीर के पोषण के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों और वस्तुओं के प्रति क्रूर होता है और उन्हें अपनी स्वार्थपूर्ति के साधन बनाने में तनिक भी नहीं हिचकता तथा ऊपर से वैराग्य का दम्भ धारण किये रहता है।

जैसा कि प्रारम्भ में संकेत किया जा चुका है पारमार्थिक जीवन का प्रारम्भ अधिकारी सद्गुरु से प्राप्त सबीज नाम-मंत्र पर साधना से प्रारम्भ होता है। इस साधना का प्रमुख तत्व 'भक्ति' होता है। 'भक्ति' शब्द 'भज्' धातु से निकला है, अतः उसका अर्थ है दिव्य-जीवन में भागीदार होना, Participate करना। गुरु के द्वारा दिया गया 'नाम' ही साधक के लिये ईश्वरीय जीवन में भागीदार होने का साधन है। नामस्मरण अत्यन्त प्रेम, श्रद्धा एवं आर्त्तता पूर्वक जितने काल तक किया जाता है उतने काल तक साधक दिव्य जीवन में भागीदार बनता है और ईश्वर से एक रूप बनता है। समर्थ रामदास कहते हैं कि जो परमेश्वर से विभक्त नहीं है उसी को 'भक्त' कहना चाहिये। 'विभक्त नाहीं सो भक्त'। नामस्मरण करते-करते जब दिव्य प्रकाश, गंध, रस स्पर्श और नाद आदि के रूप में ईश्वर का रूप-दर्शन होने लगे तब उन पर एकचित्त से शरणागत हो कर चिंतन करना भी दिव्य-जीवन में भागीदार बनना है। ईश्वर के नाम का स्मरण और ईश्वर के रूप के चिंतन को ही क्रमशः 'भक्ति' और 'ज्ञान' की संज्ञा दी जा सकती है। 'भक्ति' की पराकाष्ठा ही 'ज्ञान' है अर्थात् 'नाम' का स्मरण-संकीर्तन प्रेम एवं निष्ठा से करते-करते जो ईश्वर का सुन्दर आकर्षक और भव्य दर्शन होता है वही सच्चे अर्थों में 'ज्ञान' है। डा० विनायक हरि दाते का कथन है कि 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। एक तो बौद्धिक और शाब्दिक पांडित्य के अर्थ में, और दूसरे ईश्वर साक्षात्कार के अर्थ में[५]। पारमार्थिक दृष्टि से 'ज्ञान' का अर्थ है ईश्वर-साक्षात्कार। यह 'ज्ञान' एक-निष्ठ भक्ति करते उदय होता है अतः वह भक्ति का उत्कर्ष रूप ही है। भक्ति से ही ज्ञान बौद्धिक और शाब्दिक पाण्डित्य से अधिक नहीं होता। ऐसा पाण्डित्य चाहे वाद-विवाद और शास्त्रार्थ में विजय में सहायक कितना ही हो किंतु इस ज्ञान से आत्मा का पारमार्थिक कल्याण कदापि सम्भव नहीं हो सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार 'ज्ञान' का अर्थ है ईश्वर के रूप का दर्शन। ईश्वर के रूप-दर्शन से ईश्वर के प्रति आसक्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है क्योंकि उस रूप में अपार सौंदर्य, आकर्षण व उदात्तता के साथ-साथ प्रबल शक्ति, उग्रता और रहस्यमयता होती है। आटो ने अपने ख्याति प्राप्त ग्रंथ में उसे अर्थात् Holy को Mysterium Tremendum की संज्ञा दी है।[१] अर्जुन को श्रीकृष्ण ने जब विश्वरूप दर्शन दिया तब उसने भी हर्ष, विस्मय, रोमांच, भय, उग्रता आदि का अनुभव किया क्योंकि उसमें अनेक रूप अनेक बाहु अनेक उदर अनेक मुख ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवता, अनेक सूर्य इत्यादि की उपस्थिति थी। 'ईश्वर के प्रति आसक्ति होने पर ही संसार के प्रति सच्ची 'अनासक्ति' होती है। सांसरिक विषयों की तुच्छता, असारता, क्षणभंगुरता एवं मूल्यहीनता का अनुभव केवल ईश्वर साक्षात्कारी साधक को ही यथार्थ रूप में हो सकता है। उसे अपने शरीर की तुच्छता एवं विनाशिता का अनुभव हो जाता है। संत तुकाराम कहते हैं कि "मैंने अपना मरण आज अपनी आँखों से देख लिया है ... .मेरी विषय वासनाएं सिर धुन-धुन कर रो रही हैं। "[८] गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि स्थितप्रज्ञ ज्ञानी की इन्द्रियों का विषयों के प्रति रस अथवा आकर्षण परमतत्व के दर्शन से निवृत्त हो जाता है।

'रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते' (२, ५६) जिस अवस्था में ज्ञानी की इन्द्रियों से विषय अपने-आप बिना उसके प्रयास के लौट जाते हैं, शरीर प्रेत-रूप बन जाता है, मन-बुद्धि अहंकार के साधारण व्यापार समाप्त हो जाते हैं, वासनाएँ ईश्वर-केन्द्रित होने से रूपांतरित हो जाती हैं, उस अवस्था को वैराग्य की अवस्था कहना चाहिये। अतः ज्ञान रूपी पुष्प के विकसित होने पर वैराग्य रूपी सुवास अपने-आप चारों ओर फैलने लगती है। भक्ति करते-करते ज्ञान उत्पन्न होता है, और ज्ञान के परिपक्व होने पर वैराग्य की मनःस्थिति उत्पन्न होती है। यह वैराग्य ईश्वर-साक्षात्कार के आनन्द का पूरक होता है। ईश्वर-ज्ञान से शून्य वैराग्य केवल उदासीनता, और निराशा का कारण बनेगा। स्टॉइक दार्शनिक ऐसे ही निराशामय उदासीनता-युक्त वैराग्य तक पहुंचने में समर्थ हुए थे। सच्चा वैराग्य आशामय आनन्दमय वैराग्य होता है जिसमें ईश्वर-विहीन पदार्थों के लिये असंगता एवं निस्पृहता के साथ-साथ ईश्वर-ज्ञान की आसक्ति और शान्ति का निवास होता है। श्री अरविन्द इस प्रसंग में कहते हैं कि भक्ति के बल से जब साधक दिव्य शक्ति से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर लेता है तब पहले चरण में तो वह दिव्य शक्ति की सेवा के लिये निर्मित एक कार्यकर्ता के रूप में स्वयं को समझने लगता है, दूसरे चरण में वह दिव्य शक्ति के मन्त्र के रूप में अपना अनुभव करता है और अन्तिम चरण में वह दिव्य चेतना से इतना तादात्म्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त कर लेता है कि वह उसकी गहरी शान्ति एवं आनन्द में लीन हो जाता है तथा "दिव्य चेतना और शक्ति के शिशु एवं शाश्वत अंग" के रूप में स्थित रहता है।[६]

परमार्थ-पथ की यात्रा ज्ञानी सत्पुरुष के मिलने पर ही वस्तुत: आरम्भ हो सकती है। आज के युग में ऐसे सत्पुरुष को ढूँढना कठिन है क्योंकि मिथ्या परमार्थ का बाजार लगा हुआ है जहां अनेक योगी, महर्षि, योगेश्वर, आनन्दमूर्ति अपनी-अपनी आडम्बरपूर्ण दुकानें खोल कर बैठे हैं जहाँ मिथ्या वेदात, योग धर्म, अध्यात्म आदि के भ्रामक सिद्धांतों का क्रय-विक्रय होता है। इस बाजार में सच्चे ज्ञानी को पहिचानना अत्यन्त कठिन है। दूसरी बात यह है कि 'ज्ञान' की स्थिति एक आंतरिक स्थिति है; अत: जो ज्ञानी होता है वही अन्य ज्ञानी को पहचान सकता है। तुकाराम महाराज कहते हैं कि ज्ञानी अंतर में चतुराई से ज्ञान-बोध का रस पीता है किन्तु बाहर से पिशाचवत् रहता है। अत: ज्ञानी की अन्तर-स्थिति को ज्ञानी ही जान सकता है, अन्य लोगों को भ्रांति ही होती है।[१०] प्रश्न उठता है कि साधारण व्यक्ति ज्ञानी को कैसे पहचाने? भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की उपरोक्त व्याख्या की विशेषता यह है कि उसके आधार पर साधारण व्यक्ति भी ज्ञानी की परीक्षा कर सकता है। हमने देखा है कि ज्ञान की अभिव्यक्ति भक्ति और वैराग्य में होती है अत: जिस पुरुष में भक्ति युक्त साधन है और वैराग्य एवं निस्पृहता है वह अवश्य ज्ञानी होगा। किसी पुरुष के व्यवहार को देख कर उसके ज्ञानी होने का निश्चित अनुमान लगाया जा सकता है, यदि वह शरीर एवं इन्द्रिय-विषयों के प्रति वैराग्यशील है, यदि वह अखण्ड भक्ति-साधना में रत है तो उसमें ज्ञान की उपस्थिति अवश्यम्भावी है। ज्ञानी होने का ढोंग किया जा सकता है, वेदांत और परमार्थ के सिद्धांतों का शाब्दिक ज्ञान प्राप्त करके लच्छेदार उपदेश देना सम्भव है, किंतु भक्ति और वैराग्य का ढोंग नहीं किया जा सकता—चतुर व्यक्ति को उस ढोंग को समझने में देर नहीं लगेगी, अत: ज्ञानी वही हो सकता है जिसके पास भक्ति है और वैराग्य की सम्पदा है। इस प्रकार भक्ति और वैराग्य ज्ञान के सूचक माने जा सकते है।

अंत में एक अन्य प्रश्न पर थोड़ा विचार किया जा सकता है। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पारमार्थिक जीवन में क्रम की दृष्टि से भक्ति का स्थान प्रथम है। भक्ति करते-करते कालांतर में ज्ञान का उदय होता है और ज्ञान की शोभा वैराग्य में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान और वैराग्य परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। एक दृष्टि से उनका अन्योन्याश्रय संबंध भी है। प्रारम्भिक वैराग्य के बिना भक्ति-साधना सम्भव नहीं हो सकती, और भक्ति-साधना में जितना संलग्न रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है उतना ही वैराग्य भी अधिक प्रबल होता है। भक्ति से ही ज्ञान उत्पन्न होता है, किंतु यथार्थ भक्ति ज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् ही सम्भव होती है। तुकाराम महाराज कहते है कि ईश्वर साक्षात्कार होने के पश्चात् ही 'सद्भक्ति' संभव होती है। सच्चा वैराग्य ज्ञान के परिपक्व होने पर ही उत्पन्न होता है, और ज्ञान की अभिव्यक्ति वैराग्य में अवश्य होती है, इसी प्रकार ज्ञान की अभिव्यक्ति भक्ति में भी होती है।

भक्ति, ज्ञान और वैराग्य में से तुलनात्मक दृष्टि से आधारभूत कौन है ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि भक्ति ही ज्ञान और वैराग्य का आधार है। यदि भक्ति-साधना को हस्तगत कर लिया जाय तो ज्ञान और वैराग्य कालान्तर में स्वतः उपलब्ध हो जाएँगे। जिस मात्रा में भक्ति-साधना की जाती है उसी मात्रा में ज्ञान प्राप्त होता है, और जिस मात्रा में ज्ञान प्राप्त होता है उसी मात्रा में वैराग्य की सुगंध फैलती है। अतः भक्ति ही ज्ञान और वैराग्य दोनों का आधार है।

सन्दर्भ :

१. ईश्वर नाम का सबीज मंत्र वह 'नाम' है जो साधना के आधार पर ईश्वर के 'रूप' दर्शन नामक विशाल वृक्ष के रूप में विकसित होने की क्षमता रखता है। ऐसे 'नाम' की दीक्षा केवल वही गुरु दे सकता है जिसने स्वयं ईश्वर का रूप देखा है और जो अपने शिष्य को भी उक्त रूप के दर्शन करा सकता है।

२ 'गमू पंथ आनन्त या राघवाचा', १. मनाचें श्लोक।

४. दास बोध : विवेक वैराग्य निरूपण नाम समास (१२.४.१)

५. Sevenfold Stream of the Saintly life, P. 34 (Poona University Gurudeva Ranade Memorial Lectures, 1971)

६. Idea of the Holy, P. 15

७. भगवद्गीता अध्याय ११.१५-१६.

८. तुकाराम गाथा

९. The Mother P. 21-22

१०. वारा अभंग

डॉ० मोहनलाल शर्मा
अध्यक्ष, दर्शन विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि धनदेश्वर कृत कामाभिनन्दन महाकाव्य

संस्कृत पुराणों को आधार बनाकर संस्कृत साहित्य में काव्यप्रणयन की एक अटूट परम्परा है। महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश एवं कुमारसंभव, भारवि एवं माघ प्रणीत किरातार्जुनीयम् तथा शिशुपालवध महाकाव्यम् हालांकि प्रथम दो आर्षकाव्यों के उपजीव्य रहे हैं किन्तु शैलीगत पार्थक्य सर्वत्र परिलक्षित है। जहाँ कालिदास में कोमलकान्तपदावली का लालित्य है वहाँ भारवि एवं माघ में कठिनबन्ध एवं वैदुष्यप्रदर्शन है। नैषधकार श्रीहर्ष भी वैदुष्य प्रदर्शन में अपने दो पूर्ववर्त्तियों को पीछे छोड़ देते हैं। उनके नैषधकाव्य के बारे में यह श्लोक 'उदिते तु नैषधेकाव्ये क्व माघः क्व च भारवि' प्रचलित है। कठिनकाव्यसर्जन की इस परम्परा का भामह ने बहुत पहले विरोध किया था किन्तु उसका तत्कालीन विद्वत्समाज में कोई ठोस प्रभाव हुआ ऐसा प्रतीत नहीं होता। उसके तुरन्त बाद भट्टि-कवि ने अपने 'रावणवधमहाकाव्यम्' में लगभग उसी परम्परा को प्रश्रय देते हुए इसे 'विद्वत्[२] प्रियतया मया' यह कर भामह के विरोध का परिहास किया।

पुराणोपजीव्य महाकाव्यों की उक्त परम्परा का अनुगामी प्रस्तुत महाकाव्य धनद (धनदेश्वर) नामक किसी कवि द्वारा प्रणीत है। १२ सर्गों के इस काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में मिलने वाली पुष्पिका में कवि ने अपने आपको कश्यपवंशोत्पन्न काशी निवासी श्री रुच्छरंग एवं हीरादेवी की सन्तति बतलाया है। अपने पिता के लिए कवि ने स्थान-स्थान पर 'श्रीमान्राजसमाज पूजितपद' जितयश' प्रभृति विशेषणों का प्रयोग किया है जिससे अनुमान होता है कि शायद रुच्छरंग भी सम्मान्य राज्याश्रय में रहे होंगे। कवि की आत्मपरिचयात्मक पुष्पिका निम्नप्रकारेण है :—

काश्यां कश्यपवंशजोर्जितयशः श्रीरुच्छरंगः पिता।
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽसूत प्रसूयं सुतं।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वंद्वालिना निर्मिते।
काव्ये श्रीधनदेश्वरेण कविना सर्गोऽजनिष्टादिमः ॥१-४३॥

काव्य के १२ वे सर्ग में प्राप्त एक अन्य पुष्पिका से कविवंशवृक्ष का परिचय मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनन्त
|
चन्द्र
|
हरिपाल
|
१
०
|
रुद्धरग
|
धनद

विद्यारण्यमुनिप्रसादसुभगोऽनन्तोस्य चन्द्रः सुत ।
स्तस्य श्रीहरिपाल ....रङ्गोभवत् ।

तस्याहं धनदः कवित्वरसिकः श्रीदेवतां चिन्तना ।
निर्म्माणं मम कामनन्दनमहा ....॥१२-४८॥

विद्यारण्यमुनि का समय १४ वीं शताब्दी निश्चित है। अनन्त से लेकर धनद कवि तक अगर २०० वर्ष का समय माने तो धनद का काल १६ वीं शताब्दी निश्चित होता है। इसी पुष्पिका में आगे एक स्थान पर "पङ्कराजस्य रसपूर्णा सरस्वती" पाठ मिलता है जिससे विदित होता है कि कवि पङ्कराज अथवा मङ्कराज नामक किसी नरेश के राज्याश्रय में रहा है। चतुर्थ सर्ग की एक अन्य पुष्पिका में कवि ने अपने लिए "मान्यं गूर्जरभूभृतां कविमथि" का प्रयोग किया है जिससे कवि का गुर्जरनरेशों के आश्रय में रहने का भी अनुमान होता है, कवि के काल के बारे में अन्य कोई बाह्य प्रमाण उपलब्ध नहीं है और यह काव्य भी कवि की एक मात्र कृति है जिसकी दो ही प्रतियाँ मिली है तथा दोनों ही अपूर्ण, त्रुटित एवं कीटभक्षित है। जो भी हो कवि का काल १६-१७ वीं शताब्दी के बीच में रखा जा सकता है वैसे सही काल के बारे में विप्रतिपत्ति है तथा वह अनुसंधान का विषय है।

दोनों उपलब्ध प्रतियों में काव्य का नाम 'कामाभिनन्दनमहाकाव्यम्' तथा कामनन्दनमहाकाव्यम्' नाम से मिलता है। प्रथम सर्ग में एक जगह कवि ने इसे मुरजित् चरित्र नाम से भी सम्बोधित किया है किन्तु यह नामकरण समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि काव्य की कथा-वस्तु उषानिरुद्ध प्रणय है अतः कामाभिनन्दन या कामनन्दन नाम ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काव्य की कथावस्तु उषा अनिरुद्ध की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है जो विष्णुपुराण में उपलब्ध है। विष्णुपुराण की संक्षिप्त कथा निम्नप्रकार से है।

दानवराज बलि के पौत्र बाण की इकलौती पुत्री उषा ने स्वप्न में अनिरुद्ध को देखा तथा उसके साथ कामकेलि की व प्रेमाविष्ट हो गई। जागृतवस्था में उषाकी विह्वलता को देखकर उसकी सखी चित्रलेखा ने अपनी चित्रकला शक्ति की सहायता से उषा को उसके प्रियतम का दर्शन कराया। अपनी योगमाया से चित्रलेखा अनिरुद्ध को द्वारका से शोणितपुर ले गई। अन्तः पुर के सब लोगों से छिपकर अनिरुद्ध उषा के पास रहा। कुछ दिवस पर्यन्त परिचारकों द्वारा बाणासुर को सारी बात विदित हुई तो उसने अनिरुद्ध के साथ युद्ध करके उसे बन्दी बना लिया।

नारद से सारा वृतान्त जानकर श्रीकृष्ण ने बलराम व यादवसेना के साथ शोणितपुर पर आक्रमण किया और घोर संग्राम में बाणासुर को पराजित कर दिया। शिव के प्रसाद से बाणासुर को श्रीकृष्ण ने मारा नहीं। अन्त में बाणासुर ने अपनी कन्या कृष्ण के समक्ष अनिरुद्ध को भेंट की।

प्रस्तुत काव्य की दो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध है। प्रथम प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर संग्रहालय में उलब्ध है और अन्य प्रति पूना के ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में है। जोधपुर वाली प्रति में मात्र ११ ही सर्ग उपलब्ध है अतः यह अपूर्ण है। पूना वाली प्रति १२ सर्गात्मक है किन्तु इसका प्रान्त्यंश त्रुटित और कीटभुग्न होने को वजह से पाठ जगह २ से लुप्त है।

इसी पौराणिक कथा को पुनः उपन्यस्त करते हुए कवि का कथन है कि जिस प्रकार सुन्दरियों के अभिराम नयनयुगल अञ्जनसंजनेन सौन्दर्य वर्धन में सहायक होते हैं तद्वत् पुराणविश्रुत कथा भी कवियुक्त्या सरस बन जाती है।[3]

विक्रमांकदेवचरित में वर्णित 'क्रमेलकः कण्टकजालमेव' वत् कवि को निन्दकों से मात्र निन्दा की ही अपेक्षा है—विदग्ध जन भले ही अभिशंसा करे, कवि मुरजित्चरित्र के गान में अपना श्रम सार्थक मानते हैं।[4] प्रस्तुत महाकाव्य की कथावस्तु १२ सर्गों में विभाजित है।

(१) द्वारवतीवर्णन

(२) रतिगर्भसंभव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) स्वप्नसंदर्शन
(४) मनोरथसाधन
(५) शोणितपुरप्रवेश
(६) अनिरुद्धभ्रमनिरसन
(७) उषानिरुद्धसंदर्शन
(८) संयोगवर्णन
(६) नानाविहार
(१०) बाणासुरबाहुछेदन
(११) बाणनिग्रह
(१२) द्वारवतीपुरीप्रवेश

उपर्युक्त कथा का विस्तार करते हुए कवि ने प्रथम सर्ग में द्वारका नगरी का अनन्य सौन्दर्य वर्णन करते हुए इसे नगरीरत्न से विभूषित किया है। द्वितीय सर्ग में रुक्मिस्वसा का गर्भधारण, प्रद्युम्न का जन्म, विद्याध्ययन, विवाह एवं रति के साथ त्रैलोक्यविहार चित्रित है। तृतीय सर्ग में अनिरुद्ध का जन्म, बाल कीडाएें तथा अनिरुद्ध एवं उषा का एक दूसरे के प्रति स्वप्न, संदर्शन चित्रित है। काव्य के चतुर्थ सर्ग में १२ वे सर्ग तक उषा अनिरुद्ध की सम्पूर्ण कथा लगभग विष्णुपुराण जैसी ही है हालाँकि कवि ने कथानक में यत्किञ्चित् परिवर्तन किया है।

काव्य के सामान्य आलोकन से विदित होता है कि इसके प्रणेता धनद न केवल काव्य रचना में ही निष्णात थे बल्कि वे साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, सामुद्रिकशास्त्र, मन्त्र, संगीत एवं दर्शनशास्त्र के भी महान् विद्वान् थे। काव्य के द्वितीय सर्ग का ३२ वाँ श्लोक, तृतीय सर्ग ४६ वाँ श्लोक एवं चतुर्थ सर्ग का तृतीय श्लोक कवि की मन्त्रशास्त्र, ज्योतिष, शकुन एवं वेदान्त सांख्यादि शास्त्रों में गहनगति का बोध कराता है। काव्य के ११ वे सर्ग में वेदान्तदर्शन के गूढ तत्त्वों की व्याख्या करते हुए कवि ने द्वैतापत्ति का निरूपण एवं जीव ब्रह्म की एकता अत्यन्त सरस एवं सरल शब्दों में की है।

नैषधकार श्रीहर्ष की तरह कवि ने काव्य में जगह जगह पौराणिक उपाख्यानों के अवलम्बन से काव्य की सरसता में वृद्धि की है। श्रीकृष्ण द्वारा पूतनावध, कालियनागदमन, गोवर्धनधारण, कंसवध, ब्रह्मा द्वारा गोपालकृष्ण के वत्सों का हरण, सागर की कथा, हिरण्यकशिपु एवं बलि की कथा, गंगा द्वारा शिव के सिर की शोभा बनाना, अगस्त्य द्वारा समुद्रपान प्रभृति अनेकों कथानको द्वारा कवि ने अपना वैदुष्य प्रदर्शन किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस काल में महाकवि ने प्रस्तुत काव्य का प्रणयन किया उनके समक्ष एक ओर जहां आर्ष काव्यों की वर्णनात्मक सहज उदातत्ता थी, कालिदास की प्रणयपेशला वैदर्भी का शैलोसौष्ठव था तो दूसरी ओर भारवि, माघ, श्रीहर्ष एवं भट्टि की दुरूहता भी थी। महाकवि धनदेश्वर ने अपने काव्य प्रणयन में प्रसाद गुणान्वित वैदर्भी शैली का अवलम्बन किया है। काव्य के पञ्चम सर्ग में सहसा स्वप्नोत्थित बाणपुत्री उषा की मानसिक स्थिति का बड़ा ही अभिराम चित्रण किया गया है।

अथ गतेषु कियत्सु दिनेषु सा निशि सुखं स्वपती सहसोत्थिता।
अहह! कांत विञ्च विञ्च मामिति निगद्य भृशं विषसाद च ॥५-६॥

सम्पूर्ण काव्य में जहां हृदय को आह्लादित करने वाली सहज स्निग्ध भाषा का मधुर स्रोत है वहां यदा कदा कवि ने पाण्डित्य प्रदर्शन भी किया है। काव्य के ११ वें सर्ग में जब बाणासुर कृष्ण के वाणों से विकल हो उठता है तब वह आशुतोषद्वारा पूर्व प्रदत्त वर का स्मरण करता हुआ उनका आह्वान करता है। यहाँ पर कवि का शब्दकाठिन्य द्रष्टव्य है।

हर्म्येहमहसां हर्ष हराहर हराहर।
हठे हन्नं हस्तां हंत हंति हर हरंहस ॥११-५॥

शिशिरांशुशरीरांशै श्री शौरेःश्री शरैररं।
शूरारोरू शिरोरांशि शशिश्रीशौरिरारसै ॥११-१०॥

प्रस्तुत महाकाव्य में महाकवि ने श्रृंगाररस को अंगीरस मानते हुए इसे रससार एवं रससम्राट् व्यवहृत किया है। कवि ने श्रृंगार की संयोग विप्रयोगात्मक उभयपक्षीय झांकी बहुत ही सुन्दर रूप से प्रस्तुत की है।

द्वारका नगरी एवं शोणितपुर के विभिन्न प्रासादों में निद्रागत अनिरुद्ध एवं उषा को एक ही काल में एक दूसरे का स्वप्नसंदर्शन होता है। उसकी अनुपम छटा काव्य के तृतीय[५] सर्ग में द्रष्टव्य है। स्वप्नसंदर्शन के पश्चात् स्मरतप्त अनिरुद्ध की मानसिक दशा मेघदूत के यक्ष के समान हो जाती है जो विप्रयोग में चेतनाचेतन में कोई विभिन्नता नहीं देखता। स्मरतप्त अनिरुद्ध पूर्णेन्दु में उषा का वदन, मधुकरश्रेणियों में वेणी, मछलियों में उसके नेत्र, श्रीफल में उसके कुचयुग, प्रतप्त कनक में उसकी कान्ति तथा प्रसून में उसका स्मितान्वेषण करता है।[६] उषा के प्रति अपने पूर्वराग को अनिरुद्ध किसी के समक्ष नहीं कहता केवल चित्र फलक में उसको चित्रित कर के अपना समय व्यतीत करता है। उषा[७] के विरह में उसकी दशा नीड विरहित विहगवत् हो जाती है जो भावी गन्तव्य के विषय में किंकर्तव्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमूढ है। पूर्वराग की इस दशा का बड़ा ही करुण चित्र कवि ने काव्य के चतुर्थ सर्ग में उपस्थित किया है। समागम पूर्व का यह अनुराग उषा में भी लगभग उसी मात्रा में विद्यमान है जैसा कि अनिरुद्ध में। उषा भी अनिरुद्ध के विरह में प्रलाप करने लगती है और मूर्च्छित हो जाती है।

संयोग श्रृंगार के भी अनेकों निदर्शन काव्य में इतस्ततः द्रष्टव्य है। काव्य के द्वितीय सर्ग में रति एवं प्रद्युम्न के त्रैलोक्य विहार के प्रसंग में अनेकों स्थलों में संयोग श्रृंगार की अवतारणा है। रति एवं प्रद्युम्न की मन की एकता से कवि को सन्तोष नहीं होता है तभी तो उन्होंने वपु की एकता भी दर्शायी है

"ऐक्यं मनोभ्यां न हि केवलं तौ गतौवपुर्भ्यामपि कान्तिमद्भ्याम्"

उषा, अनिरुद्ध को कामकेलि की कवि ने काव्य के सप्तम सर्ग में अत्यन्त अभिराम झांकी प्रस्तुत की है।[८] जलक्रीडा हेतु अपनी प्रिया से आमन्त्रित अनिरुद्ध अगाध जलराशि में प्रवेश कर कामक्रीडा करता हुआ अपनी श्रान्त प्रिया को बार-२ आलिङ्गित करता हुआ सन्तोष को प्राप्त नहीं होता। इसी विहार के प्रसङ्ग में एक जगह पर सुन्दर कमलसमूहों को देखकर अनिरुद्ध बड़ा ही आकर्षित होता है—अपनी प्रिया को एक अम्भोज का अवलोकन कराते हुए कहता है प्रिये! देखो उस अम्भोज को छूना मत क्योंकि वहां उसका प्रेमी भ्रमर शयनरत है, अगर जगा दिया तो वह तुम्हारे अधर को काटेगा।[९]

उषा[१०] राजप्रासाद के अपने विशेष कक्ष में श्रृंगाररत है और मुकुर में अपनी छवि को निहार रही है। सहसा अनिरुद्ध भी वहाँ आकर मुकुर के समक्ष खड़ा हो जाता है। अपने कपोल में प्रतिबिम्बित प्रिय के अधर को देखती है जो अञ्जनांक है अतः उसे बार-बार मिटाती हुई अत्यन्त लज्जा को प्राप्त हो जाती है।

श्रृङ्गारान्तर्गत कवि ने अनेकों स्थानों पर उषा की नखशिख शोभा का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। एतन्निमित काव्य के तृतीय, चतुर्थ, अष्टम एवं नवम सर्ग विशेषरुपेण अवलोकनीय हैं।

श्रृंगार के अतिरिक्त काव्य में वीर, करुण एवं वात्सल्यादि रसों का भी निबन्धन है। काव्य के दशम सर्ग में वीररस की अवतारणा की गई है। यादव एवं दैत्य सेनाओं के मध्य जो घनघोर संग्राम हुआ उसकी अत्यन्त ही सजीव झांकी प्रस्तुत की गई है।[११] युद्ध में नरमुण्ड कट कट कर गिर रहे हैं, कहीं पर कबन्ध नृत्य कर रहे हैं, योगिनियाँ हस्तताल के साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अट्टहास कर रही हैं, शंखनाद से भूमि का कम्पन हो रहा है और प्रतिपक्ष के योद्धा भाग रहे हैं।

[१२]रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त एक योद्धा के पास आसीन उसकी प्रेयसी करुणस्वर से विलाप कर रही है। हे प्रिय ! आप तो मेरी सुखशय्या की शोभा के वर्धक है, यहाँ पर रक्तरंजित पृथिवी का क्यों आलिंगन कर रहे हैं, मुझ जैसी विलासिनी का परित्याग करके आप अप्सराओं के पास क्यों चले गये है ? आप मुझे जवाब क्यों नहीं दे रहे हैं ?[१३]

काव्य के तृतीय सर्ग में वात्सल्यरस का भी चित्रण है।[१४] शिशु अनिरुद्ध को अपनी गोद में क्रीडा कराती हुई रुक्मिणी बार-बार उसे निश्चल नेत्रों से देखती हुई भी विरत नहीं हो रही है इसका मनोहारी वर्णन काव्य के तृतीय सर्ग में द्रष्टव्य है। शिशु अनिरुद्ध कभी माता की गोद से उतर कर पिता के पास चला जाता है. पुनः तुरन्त ही माता के पास चला जाता है। श्रीकृष्ण[२] प्रद्युम्न को तरफ इङ्गित करते हुए उस शिशु के साथ आलाप कर रहे है अरे। यह तो मेरा है तुम्हारा कहां है-ऐसी बातों से बच्चे के[१५] पिता त्रपानत हो रहे हैं।

अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की तरह धनद कवि ने भी संध्या, सूर्योदय, प्रातः, नदी, सागर, पर्वत, नगरी, ऋतु आदि का भी वर्णन किया है। काव्य के प्रथम सर्ग में द्वारका नगरी का वर्णन करते हुए इसे विश्वस्य चैकस्थसमस्तशोभा प्रसिद्धमेतन्नगरीषुरत्नं 'श्रीद्वारकानामपुरी पुरीणां,' तथा 'कयोपमेया नगरी नगर्याः' कहकर वोधित किया है। काव्य के द्वितीय सर्ग में[१६] रैवतक एवं सुमेरु पर्वत का वर्णन है जिसकी गह्वराओं में सिद्धांगनाएँ रतिक्रीडा का श्रम मलयानिल से मिटा रही है। यहां प्रत्येक वृक्ष पुष्प भार से अवनत हो रहा है, मत्तभ्रमर पुष्पों पर भ्रमण कर रहे हैं, भृङ्गगुन्जन से प्रतिवोध्यमान अनङ्ग मानिनियों के मान को भङ्ग कर रहा है।[१६]

सूर्योदय का वर्णन काव्य के पञ्चम[१८] एवं अष्टम[१९] सर्ग में किया गया है। इसी सर्ग में चन्द्रोदय का भी वर्णन मिलता है। काव्य के षष्ठ सर्ग में प्रकृति एवं इसके उपादानों में उषा का आरोपण है जिसमें अनेकों, अभिराम रूपकों की सृष्टि की गई है। कुल मिलाकर अगर इसे रूपकसर्ग कहा जावे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक एवं रूपक आदि शब्दालं-कारो के साथ अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, सन्देह, भ्रान्तिमान, तुल्ययोगिता एवं श्लेषप्रभृति अनेकों प्रचलित अलंकारों का प्रयोग है। कतिपय निदर्शन प्रस्तुत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारिका नगरी में श्रीकृष्ण के प्रासाद में क्रीडारत बालक अनिरुद्ध मणिकुट्टिमांगण में अपनी छवि देखकर उसके साथ आलाप में रत है- अभिराम स्वभावोक्तिबंध द्रष्टव्य है।

शिशु स रिंगन्मणिकुट्टिमांगणे पुरो विलोक्य प्रतिबिम्बिमात्मनः।
सहालपंस्तेन सुमुग्धया गिरा स सम्भ्रमं कस्य न कौतुकं व्यधात्॥ ३-१६॥

हजारों मील दूर अपने-२ प्रासादों में शयनरत उषानिरुद्ध को एक दूसरे का स्वप्न संदर्शन होता है। उसकी मनोहारि छवि अर्थान्तरन्यास में द्रष्टव्य है :-

समजनि स विभाते विस्मयोत्फुल्लनेत्र पुलकिततनुवल्लि साप्युषा स्वप्नभावैः।
द्वयमपि सममेव प्राप तुल्यामवस्थां किमिव नहि विभाव्यं कर्मणां प्राक्तनानाम्॥
३-३८॥

श्रृङ्गाररस का परिपाक और अलंकारों के चित्र वैचित्र्य पूर्ण समायोजन से काव्यार्थ की प्रतीति नारिकेलफल ·· ········· आदि की अपेक्षा। वैदर्भी बाहुल्य के कारण जहाँ सद्यः सहृदयजनसंवेद्य बन पड़ी है, वहीं, कही कहीं पर महाकाव्य के नियमों की अनुसारिता में शैथिल्य भी प्रकट हुआ है। फिर भी संस्कृत महाकाव्यों की अविकल परम्परा में प्रस्तुत काव्यरत्न सरसता और वैदुष्य के कारण अपने पूर्ववर्ती काव्यों के समान ही साहित्य-श्री का अभिवृद्धिकारक है।

सन्दर्भ :

(१) भामह —काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवसुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हता॥२-१०॥

(२) दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते॥
व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः पुधियामलम्।
हता दुर्मेधस चास्मिन् विद्वत्प्रियतया मया॥

(३) ख्याताः पुराणेषु कथास्तथापि युक्त्या कवीनां सरसा भवंति।
नेत्राणि चित्राण्यपि सुन्दरीणां सौभाग्यभाञ्ज्यञ्जनसंजनेन॥१-६॥

(४) निंदंति मंदा स्वत एव वस्तु स्तुवंति सन्तस्तदहो न चिन्ता।
यतः पवित्रे मुरजिच्चरित्रे श्रमो ममायं चरितार्थ एव॥१-५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(५) अथ निखिलनतभ्रूगर्वसर्वस्वनेत्रीं सममविदितपूर्वां कामिने बाणपुत्रीम् ।
तमपि पुरुषजातौ रत्नमस्यैमृगाक्ष्यै क इति न मतिमत्यै दर्शयामास निद्रा ।।३-३७

(६) पूर्णेन्दौ वदनोत्सवो मधुकरश्रेणीषु वेणीभ्रमो,
मीने लोचनचेष्टितं कुचयुग श्री श्रीफले श्रीमति ।
हंसे हंसगति प्रतप्तकनके कान्तिप्रसूने स्मितं,
दृश्यन्ते तव ते त एव दयिते भावा कदा त्वं पुनः ।।३-४५।।

(७) भवति बस्तु पृथग्नहि जीवतो भ्रमति शून्यमिदं परितो मनः ।
विरहितो विहगः प्रियनीडतः क्वचन कामपि नैति रतिं यतः ।।४-३०।।

(८) स सिच्यमान प्रियया कराभ्यां गाधादगाधं जलमाविवेश ।
श्रान्तां पुनस्तत्र नितम्बभारादालिङ्गदालिङ्गनलोलचिताम् ।।७-३८।।

(९) अम्भोजमम्भोजविशाल नेत्रे,
मा मा स्पृशेदं मधुपोधिधशेते ।
प्रिया सखो जागरितः सरोषा,
त्वाधरं सुन्दरि ! दङ्क्ष्यतीति ।।९-३७।।

(१०) विलोकयन्ती मुकुरे मुखं सा,
निजे कपोले प्रतिबिम्बितस्य ।
वीक्ष्य प्रियस्याधर-मज्जनाङ्कं,
संमार्ज्यं संमार्ज्यं वधूर्ललज्ज ।।९-४।।

(११) मुण्डं मुण्डं खण्डितं वीरखड्गैं खण्डं खण्डं खण्डयत्याधिनृत्तम् ।
योगिन्योस्तान्योन्यहस्तात्ततालैः क्रीडं क्रीडं चक्रुरट्टाट्ट हासम् ।।१०-३।।

(१२) हा । प्रिय । जातु भवानधिशेते मामपहाय नयत्सुखशय्याम् ।
सम्प्रति किं धरणीमतिरक्तां त्वं परिरम्य चिरं स्वपिपीह ।।१०-५१।।

(१३) मानवतीमनुनीय विलासिन् मा त्वमहा, मधुरोक्तिररंरसी ।
अप्सरसां वशगो विलपन्त्यै न प्रतिवाचमपीह ददासि ।।१०-५२।।

(१४) शिशुं निजोत्संगतले निधाय तं निरीक्षणान्नो विरराम रुक्मिणी ।
पुनर्पुनर्निश्चलनेत्रयोश्चिरं ससर्ज सानन्दभराश्रुवर्षणम् ।।३-१५।।

(१५) अयं मम प्राप्ति कुतोऽस्य ते पितुः क्वसोत्रैष पितामहेन सः ।
लपन्निति स्वपितरं त्रपानतें चकार गारत्मतकीरकौमुदी ।।३-२२।।

(१६) सिद्धांगनानामिह गह्वरेषु सुवर्णरेखाभ्रमिमंजुलेषु ।
रतिश्रमपुष्पितकाननेषु निरस्यतेद्रागमलयानिलेन ।।२-३४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१७) तरौ तरौ पुष्पभरोऽत्रशैले पुष्पेषु मत्तभ्रमरा भ्रमंति ।
भृङ्गै रनङ्ग प्रतिबोध्यमानो मानं हरत्युन्मदमानिनीनाम् ॥२-३५॥

(१८) कामाभिनन्दनमहाकाव्य— ५-४६

(१९) वही ८-७४

ओम्प्रकाश शर्मा
वरिष्ठ शोध सहायक,
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब

सिख पंथ के दसवें गुरु गोविन्दसिंह ने कार्तिक सुदी ५ (८) सम्वत् १७६५ वि. तदनुसार ७ अक्टोबर, सन् १७०८ ई. को गोदावरी नदी के किनारे नांदेड़ में गुरु नानकदेव से लेकर गुरु तेगबहादुर तक गुरुओं की चिर-अक्षुण्ण 'जोतती' ज्योति में अपनी 'ज्योति' मिलाकर अपने जीवन की ऐहिक लीला समाप्त कर दी थी। वह स्वाभिमानी, वीर-प्रसू, आध्यात्मिक और दैवी सम्पदा के सिद्ध साधक, भक्त, और सर्व प्रकारेण दूरदर्शी थे। फलत: अपने महाप्रयाण से पूर्व पंथ की अविकृति और सिखों की उदात्त ऐक्य भावना को सुरक्षित रखने के लिए अपने साथ ही पंथ की गुरु-परंपरा समाप्त कर दी थी और गुरु-पद पर स्थायी रूप से श्रीग्रन्थ को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब संज्ञा देकर शुभासीन कर दिया था।[1] मात्र इतना ही नहीं, यह उन्हीं को श्रेय है कि उन्होंने पंथ को 'खालसा' संज्ञा प्रदान की और प्रत्येक सिख को सिंह की उपाधि से विभूषित किया। उनके इन प्रदेयों को ही यह श्रेय है कि पंथ के अनुयायी स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर हो उठे, साथ ही उनमें राष्ट्र के विरोधी तत्वों से जूझने की अमोघ शक्ति भी भर गई।

सिख पंथ अध्यात्म और आत्मचिन्तन से युक्त हो, मानवीय तत्वों को प्राधान्य देकर चला है, एतदर्थ गुरुओं, सिखेतर संतों की वाणियों के द्वारा उनको प्रेरणाएँ और समर्थन मिला है। इसलिए गुरु ग्रंथ पंथ के दर्शन और व्यवहार पथ के लिए उसके अनुयायी सिखों को ही प्रेरित नहीं करता है, वरन् उसकी विश्वजनीन भावनाएँ और सिद्धान्त मानव मात्र को अमर सन्देश प्रदान करते हैं। फलत: लोक भाषाओं में लिखित अन्य पवित्र ग्रन्थों की तुलना में गुरु ग्रन्थ की उदात्तता और व्यापकता चिर मान्य है। इसी से विश्व-कल्याण के हितेच्छु, जिज्ञासु, अध्येता और विद्वान् इसके अध्ययन के लिए प्रेरित और अग्रसर हैं।

गुरु ग्रन्थ बहुसंख्यक रचनाओं का एक आकर ग्रन्थ है, जिसमें गुरुओं और संत कवियों के विविध काव्य रूपों, वाणियों, रागों आदि का सन्निवेश है।

क- गुरु ग्रन्थ के रचनाकार :

अ–सिख पथ के गुरु

१. गुरु नानकदेव	महला-१	(ई. १४६९-१५३९)
२. गुरु अंगददेव	महला-२	(,, १५०४-१५५२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३.	गुरु अमरदास	महला-३	(ई. १४७९-१५७४)
४.	गुरु रामदास	महला-४	(,, १५३४-१५८१)
५.	गुरु अर्जुनदेव	महला-५	(,, १५६३-१६०६)
६.	गुरु तेगबहादुर	महला-९	(,, १६२१-१६७५)

आ- भगत (सिखेतर संत) :

७.	जयदेव (जैदेउ)	१३ वीं शताब्दी
८.	नामदेव	(ई. १२६९-१३५०)
९.	त्रिलोचन	१२६७ ई. के आसपास
१०.	परमानंद	अज्ञात
११.	सधना	१४ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध
१२.	बेनी	१५ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध
१३.	रामानन्द	(ई. १२९९-१४१०)
१४.	धन्ना	अनवगत
१५.	पीपा	१४१३ ई. के आसपास
१६.	सेणु	१४ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध
१७.	कबीर	(ई. १३९८-१५१८)
१८.	रविदास (रैदास)	(,, १३८८-१५१४)
१९.	शेख फरीद	(,, ११७३-१२६६)
२०.	भीखन	निधन १५७३
२१.	सूरदास	जन्म १५२८ ई.

इ- सिख पंथ में पल्लवित कवि, भट्ट आदि :

२२. बाबा सुन्दर, २३. बलबंड सता, २४. मरदाना,

२५. सलय, २६. हरिवंस, २७. कलसहार, २८. कीरत,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२९. गयंद, ३० मथुरा (भट्ट सं. २९)

(ख) वाणियाँ, राग-नाम तथा काव्य रूप :

अ–वाणियाँ :

अनंद, अलाहणीयाँ, सलोक सहसक्रती, सिध गोलटि, सुखमनी, सुचजी, सोदर, सो पुरख, करहले कुचजी, चउबोले, दखणी उअंकार, दिनरैणि, पहिरे, फुनहे, बावन अखरी, बारा माह, बिरडड़े, मुंदावणी, राग-माला, वणजारा, सतवार - संख्या २२

आ–राग-नाम :

सिरी रागु, रागु माझ, रागु गउड़ी, रागु आसा, रागु गूजरी, रागु देव-गंधारी, रागु बिहागड़ा, रागु बडहंसु, रागु सोरठि, रागु धनासरी, रागु जैतसरी, रागु टोडी रागु बैराड़ी, रागु तिलंग, रागु सूही, रागु बिलावलु, रागु गौड, रागु रामकली, रागु नट नाराइन, रागु माली गउड़ा, रागु मारु, रागु तुखारी, रागु केदारा, रागु भैरउ, रागु बसंत, रागु सारंग, रागु मलार, रागु कानड़ा, रागु कलिआन, रागु प्रभाती, रागु जैजावंती — ३१ राग

इ–काव्य रूप :

असटपदी, सलोक, सवैये मुखवाक, सवये, सोलहा, छंत दखणे ६ काव्य रथ

गुरु ग्रन्थ के रचनाकारों का प्रदेय इस प्रकार है :

अ–गुरु :

१. गुरु नानक – ९७४ पद (पौड़ी और सलोक मिलकर)
२. गुरु अंगद – ६२ सलोक
३. गुरु अमरदास – ९०७ पद (पौड़ी और सलोक मिलकर)
४. गुरु रामदास – ६७९ पद (पौड़ी और सलोक मिलकर)
५. गुरु अर्जुन – २२१८ पद (पौड़ी और सलोक मिलकर)
६. गुरु तेगबहादुर – ५९ पद और ५६ सलोक

आ–पंथ में अन्य रचनाकार :

७. सुन्दर – पद-१ (छः पौड़ियाँ)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. मरदाना – ३ सलोक

९. कल – ४६ सवैया और ३ सोरठा

१०. कलसहर – ४ सवैया

११. तल – १ सवैया

१२. जलप – ४ सवैया

१३. जल – १ सवैया

१४. कोरत – ८ सवैया

१५. सल – ३ सवैया

१६. मल – १ सवैया

१७. नल – ६ सवैया

१८. भीखा – २ सवैया

१९. जलन – १ सवैया

२०. दास – १४ छन्द(७ सवैया, ३ रद और ४ भेलने)

२१. गयंद – ५ सवैया

२२. सेवक – ७ सवैया

२३. मथुरा – १० सवैया

२४. वल – ५ सवैया

२५. हरवंस – २ सवैया

२६. एवं २७. – राइ बलवंद और सतै डूमि आखी १ वार (राम रामकली में)

इ–भगत और सूफी संत

१. जयदेव – २ पद

२. नामदेव – ६१ पद

३. त्रिलोचन – ४ पद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. परमानंद – १ पद

५. सधना – १ पद

६. बेनी – ३ पद

७. रामानन्द – १ पद

८. भगत धन्ना – ४ पद

९. पीपा – १ पद

१०. सेणु – १ पद

११. कबीर – २९२ पद और २४९ सलोक

१२ रविदास – ४१ पद

१३. शेख फरीद– ४ पद और १३० सलोक

१४. भीखन – २ पद

१५. सूरदास – २ पद

श्री गुरु ग्रंथ का प्रथम सम्पादन :

सिख पंथ के इस पवित्र धार्मिक ग्रंथ का प्रथम सम्पादन गुरु अर्जुन देव द्वारा रामसर (अमृतसर) में १६०४ ई. में सम्पन्न हुआ था, इस ग्रन्थ के प्रमुख लेखक भाई गुरुदास (ई. १५४६-१६२९) थे।

गुरु अमरदास के बाबा विशनदास थे, जिनके तेजभान संज्ञक पुत्र से गुरु अमरदास, दातारचन्द, ईशरदास और एक (अज्ञात नाम) चार पुत्र जन्मे थे। केसरसिंह छिबर रचित 'बंसावली नामा' (पाँचवाँ चरण) के अनुसार भाई गुरुदास ईशरदास के पुत्र थे। इस प्रकार गुरु अमरदास के वह भतीजे थे। गुरु अर्जुनदेव के समीप भाई संतदास, हरिआ, सुक्खा और मनसाराम चार लेखक और थे, पर गुरुदास सर्वाधिक विद्वान् होने के कारण उनमें प्रमुख लेखक थे।

वारां गिआन रतनावली भाई गुरदासजी
(भूमिका - अ-स)
भूमिका लेखक–स. शमशेरसिंह 'अशोक'
(शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी,
अमृतसर, फरवरी, १९८१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु अर्जुनदेव द्वारा गुरु ग्रन्थ के सम्पादन कार्य आरम्भ करने से पूर्व निज की रचनाओं के अतिरिक्त चारों गुरुओं की रचनाएँ उन्हें समुपलब्ध थी, जो सिख पंथ अथवा गुरुमत के प्रचार-प्रसार की प्रेरणा स्रोत अथवा उनकी उपजीव्य थी। प्रथम गुरु नानकदेव को पंथ के प्रवर्तन का श्रेय होने पर भी अवशिष्ट गुरु उनके पथ को प्रशस्त और पुष्ट करते रहे हैं। उन सबकी एक ही आध्यात्मिक और जीवनपरक व्यावहारिक मान्यताएँ रही हैं। इससे प्रत्येक गुरु और सभी गुरुओं की वाणियों में पुनरुक्तियाँ हैं, जिनसे गुरु ग्रन्थ भरा पड़ा है। इनको यदि काव्य-दोष की दृष्टि से परिगणन करेंगे तो उन गुरुओं की भावनाओं के साथ अन्याय होगा। वस्तुतः वे उनकी स्वाभाविक, मानसिक अभिव्यक्तियाँ हैं. जो आराध्य की प्रेरणा से अभिभूत हो उनके मुख से अबाध गति से निसृत होती रही है।[२]

गुरु नानकदेव ने अपनी वाणी-निस्सरण के सन्दर्भ में स्वयं कहा है, 'ता मैं कहिआ कहणु जो तुझे कहाइया'। इस प्रकार उनकी सभी प्रकार की वाणियों का श्रेय जगन्नियन्ता की परमात्म शक्ति की अन्तःप्रेरणा को है, मानवीय शक्ति अथवा शास्त्रीय ज्ञान को नहीं। इस सन्दर्भ के समर्थन उनके शिक्षारंभ, यज्ञोपवीत संस्कार, सुल्तानपुर के निवास-काल आदि अवसरों की घटनाओं में उपलब्ध हैं। अनन्तर अपनी चार उदासियों (यात्राओं) के अन्तराल में जब भी ऐसी अन्तः प्रेरणाएँ उद्भूत हुई, उन्होंने अपने सहयात्री मरदाना को रबाव बजाने को कहा है और उनके मुख से रागमय वाणी निस्सरण हो उठो है। इस प्रकार के उदाहरण उनकी जनम-साखियों द्वारा सम्पुष्ट हैं।[३] उनकी वाणियों उदात्त, व्यापक, व्यावहारिक और मानव-जनीन थी, इससे वे गुरुमत का प्रमुख आदर्श बनी और सिख (शिष्य) समाज तथा भारतीय जन जीवन ने अपनी निष्कृति की दृष्टि से उन्हें हृदयंगम किया। यही कारण है कि उनकी वाणियाँ संकलित की गई और 'गुरुमत' का शुभारंभ हो गया।

पंथ में वाणियों के संग्रह के सम्बन्ध में यह तथ्य उपलब्ध है कि गुरुमुखी लिपि के प्रचलित हो जाने पर गुरु अंगद ने श्री नानकदेव का जीवन और उनकी वाणियों का संग्रह और उनके अनन्तर गुरु अमरदास ने भी प्रथम गुरु की वाणियों का संकलन किया था। अन्य सूत्रों से यह सिद्ध है कि प्रथम गुरु की वाणियां भाई मनसुख, द्वितीय की पेड़े मोखे और तृतीय को मोहनजी के सुपुत्र सहसराम ने लिखी थीं।[४]

यह मान्य तथ्य है कि प्रत्येक गुरु ने अपने से पूर्व के गुरु अथवा गुरुओं की वाणियों का चिंतन, मनन और अध्ययन किया है, साथ ही पंथ के प्रचार और प्रसार में उनका सम्यक् सहयोग लिया है। अन्यथा उनके दर्शन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और विचारों में एकसूत्रता और परंपरापोषण न मिलता। सच तो यह है कि परंपरा निभती रही और गुरु पंथ पुष्ट होता गया। गुरु नानक की वाणियाँ इतनी लोकप्रिय हो गई थीं कि व्यापारी बाहर जाने पर उनकी वाणियों का गान करते थे।[५] अवशिष्ट गुरु भी भ्रमणशील थे। परंपरा-पालन के साथ वाणियों का प्रचार और प्रसार स्वाभाविक था। धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से गुरुओं की वाणियों का संकलन और संग्रह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य समझा गया।

गुरुमत के प्रचार-प्रसार में मात्र गुरुओं की वाणियाँ ही साधन नहीं रही हैं, उनके साथ भगत-वाणियाँ भी प्रेरणास्पद रही हैं। इस प्रसंग में प्रथम पातशाह गुरु नानकदेव की उदात्त भावनाएँ और सहृदयताएँ उल्लेखनीय हैं। वह अपनी यात्राओं (उदासियों) में जहाँ भी गये अपने दार्शनिक विचारों और मान्यताओं के अनुकूल भगत-वाणियाँ मिलने पर उन्होंने उनका संग्रह करना श्रेयस्कर समझा, जिससे उनका संग्रह उनके अनन्तर गुरु परम्परा में समुपलब्ध रहा। इस गतिविधि के फलस्वरूप गुरुजनों की वाणियों के साथ भगत जनों की वाणियाँ भी सुरक्षित रहीं, जिनका पंथ के वातावरण में गुरु वाणियों के समान ही सम्मान रहा। फलस्वरूप ग्रंथ-सम्पादन के समय वे वाणियाँ गुरु अर्जुनदेव की विचार और निर्णय की सीमा में आई और उनका उसमें सम्पादन कर लिया गया।[६]

पंथ में वाणियों की स्थिति सुनिश्चित न रहकर अनिश्चित रही है, यह पंथ के पोषकों और उसके अनुयायियों के समक्ष विशेष कठिनाई रही है। इसका कारण पंथ में गुरुपद का अभिवृद्धिशील सम्मान, लोकप्रियता और सार्वजनीनता के विरुद्ध उससे सम्बद्ध व्यक्तियों का आक्रोश है। गुरु-पद के पैतृक परम्परा में न रहने के कारण पंथ के अन्तराल में असन्तोष की लहर फैल गई थी। उसके प्रथम पातशाह गुरु नानकदेव ने (परमेश्वर की) ज्योति में (अपनी) ज्योति समाने से पूर्व अपना गुरु-पद अपने पुत्र श्रीचंद अथवा लक्ष्मीचन्द को न देकर लहना (अंगद) को दिया था। उनकी सैद्धान्तिक और मानवीय कसौटी पर गुरु अंगददेव खरे उतरे थे, जब कि उनके अपने पुत्र नहीं। पंथ के स्थायित्व और उसके प्रेय तथा श्रेय के लिए प्रथम गुरु का इस प्रकार का निर्णय स्तुत्य है। उनकी इस परम्परा को आगे के गुरुओं ने भी निभाया-द्वितीय पातशाह ने गुरु-पद दातू और दासू को न देकर गुरु अमरदास को, तृतीय पातशाह ने मोहन और मोहरी को न देकर गुरु रामदास (अपने दामाद भाई जेठा) को तथा चतुर्थ पातशाह ने यह पद पृथ्वीचन्द और महादेव (प्रथम और द्वितीय पुत्र) को न देकर अपने लघु पुत्र गुरु अर्जुनदेव को दिया था। गुरुओं के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार के निर्णय और निश्चय के लिए प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने गुरु-पद अधिकारी व्यक्ति को ही सौंपा, पर इससे उद्भूत झंझावात से पंथ में संगृहीत वाणियाँ निरापद न रह सकीं।

गुरु-पद के विरोधी तत्व का यहाँ मात्र संकेत किया गया है, इससे पंथ का पवित्र वातावरण दूषित और विषाक्त हो गया था। इस समग्र के पीछे मानवीय विकृतियों और स्वार्थान्धता के स्पष्ट प्रमाण हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में इसकी ऐतिहासिक गतिविधियों में न जाकर गुरु ग्रंथ के सम्पादन में गुरु अर्जुनदेव के समक्ष उपस्थित कठिनाइयों पर दृष्टिपात कर लेना उचित है।

"तत्र यहाँ गुरु-ज्योति गुरु अर्जुनदेवजी में प्रदीप्त हो रही थी। इस ज्योति को बाबा पृथिवीचंद (गुरु अर्जुनदेव के ज्येष्ठ भ्राता) की ओर से झूठ के बादलों द्वारा आच्छादित होने का प्रयास हो रहा था। साधारण गुरु-श्रद्धालुओं को अन्धेरे की ओर ढकेला जा रहा था। भाई गुरदासजी ने बाबा बुढ्ढाजी आदि प्रमुख शिष्यों के सहयोग से इन झूठ के बादलों को भगाकर सिख-संगतों को सत्य के सूर्य का प्रकाश दिया।"[७]

इस प्रतिकूल वातावरण के सन्दर्भ में यह प्रमाण भी द्रष्टव्य है :

मिहरवान पुत्र प्रिथीए का कवीसरी करे।
पारसी, हिंदवी, संसक्रित नाले गुरमुखी पढे।

तिन भी वाणी वहुत वणाई।
भोग गुरु नानकजी दाही पाई ॥८७॥

डूम लगे सबद मीणिआ दे गावनि।
दूजा दरबार बड़ा गुरिआई लगे बणावनि।

इथे किसे सित सबद मिहरवान दा कीरतन विच पढिआ।
सो सरवणीं गुरु अरजन जी पढिआ ॥९२॥

वचन कीत भाई गुरदास, गुरु दी वाणी जुदा करीऐ।
मीणे पांदे वों रतां सो वाणी निचि रला न धरीए ॥९३॥[८]

पिरथीचन्द को गुरु गद्दी न मिल सकने के कारण उसका विद्रूप पंथ और सिख-समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ। उसने अपने पिता गुरु रामदास के अतिरिक्त भाई गुरदास (गुरु ग्रंथ के लेखक) और बाबा बुढ्ढा को अपमानित किया, साथ ही अपने अनुज गुरु अर्जुनदेव के विरुद्ध मुगल शासकों से कह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर षड्यंत्र किए और अर्जुनदेव के पुत्र हरिगोविन्द को विष देने के प्रयास किए, जिससे 'मीणा' जैसी घृणास्पद संज्ञाएँ उसको दी गई।[९] इतना ही नहीं उसने नानक-वाणियों को भी दूषित और विकृत करने का प्रयत्न किया, उसने अपने कवि पुत्र मिहरवान द्वारा नानक नाम की मणिता से वाणियाँ सर्जित करा के गुरु-वाणियों में मिश्रित करा दी और भट्टों को प्रेरित कर उनके गान के माध्यम से समाज में उनको प्रचलित भी करा दिया। जब गुरु अर्जुनदेव को अशुद्ध वाणियाँ श्रुतिगोचर हुई, उन्होंने गुरु वाणियों को शुद्ध रखने और करने का दृढ सकल्प किया।

यह वह समय था, जब गुरु अर्जुनदेव को गुरु-वाणियों के संग्रहों की प्रतियाँ देखना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गया। एतदर्थ उन्होंने गुरु-वाणियों को प्राप्त करने के लिए भाई गुरुदास और बाबा बुढ्ढा को गुरु अमरदास के ज्येष्ठ पुत्र भाई मोहन के समीप भेजा। जब वे अपेक्षित संग्रह प्राप्त करने में असफल रहे गुरू अर्जुनदेव स्वयं गोइन्दवाल गए और उनसे प्राप्त करने में सफल रहे।[१०]

गुरू ग्रंथ के सम्पादन के सन्दर्भ में यह स्वीकार्य तथ्य है कि गुरु-वाणियाँ (उन तक पांचों गुरुओं की वाणियाँ) सिख पंथ के संस्थानों भट्टों की वाणियों उनके पुत्रों और भगतों की वाणियाँ गुरु नानक के संग्रहों से गुरु अर्जुन को मिली हैं, क्योंकि अपनी विविध उदासियों के मध्य में भाव-साम्य की दृष्टि से उन्होंने उनका संग्रह किया होगा।

भगतों की जीवन सीमाएँ देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जयदेव, शेखफरीद, नामदेव, त्रिलोचन, परमानन्द, सधना, पीपा, सेणु, कबीर, रैदास आदि का जीवन और रचना-काल गुरु नानकदेव (ई. १४६९–१५३९) से पूर्व पड़ता है। इससे इन भगतों की रचनाएँ उनसे पूर्व अथवा उनके जीवन-काल में हुई होंगी। रहे दो भगत, इनमें भीखन का समय १५७३ ई. और सूरदास का समय १५२८ के आसपास पड़ता है। सूरदास नानक की मृत्यु के समय मात्र ग्यारह वर्ष के रहे होंगे। इससे इन दो भगतों की वाणियों का संग्रह करना नानक द्वारा संभव नहीं है और यह विश्वस्त प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी यात्रा-काल में उक्त तेरह भगतों की वाणियों का संग्रह किया होगा। इस तथ्य के पीछे उनकी पारखी दृष्टि, दूरदर्शिता और व्यावहारिक उदात्तता अभिव्यक्त होती है।

नानक के अनन्तर के गुरु उनके पद-चिह्नों पर चले हैं। निज की मौलिक दृष्टि होने पर भी उन समग्र ने उनके ही व्यावहारिक और दार्शनिक सिद्धान्तों का अनुकरण किया है। फलतः स्पष्ट है कि भगत-वाणियों को सुरक्षित रखने में वे उनकी विचार सीमा के बाहर न जा सके, जिससे गुरु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाणियों के साथ वे भी सुरक्षित रही और अर्जुनदेव ने गुरु-वाणियों के संग्रह और सम्पादन के समय भगत-वाणियों का सम्पादन भी कर लिया। उनकी इस दृष्टि में वस्तुतः गुरु-धर्म का पोषण था, इससे वह यशस्वी भी बने।

गुरु अर्जुन ने भगतों की भक्ति-भावना का यशोगान किया है :–

घने सेविया बालबुधि त्रिलोचन गुरि मिलि भई सिधि॥
बेणी कउ गुरि कीओ प्रगासु। रे मन तू भी होहि दासु॥
जैदेव तिआगिओ अहंमेव। नाई उधरिओ संनु सैव॥

कबीर धिआइओ एक रंग। नामदेव हरि जीउ बसहि संगि॥
रविदास धिआए प्रभु अनूप। गुर नानकदेव गोविन्द॥[११]

भट्ट कल ने भी अपनी पूज्य भावनाएँ भगतों के प्रति समर्पित की है :–

गुण गावे रविदासु भगतु जैदेव त्रिलोचन॥
नामा भगतु कबीर सदा गावहि समलोचन॥
भगतु बैणि गुण रवै आतम रंगु माणै॥[१२]

प्रस्तुत वाणियों में घना, त्रिलोचन, बेनी, जयदेव, सेणु, कबीर, नामदेव, रविदास आदि भगतों के नाम और उनकी विशेषताएँ इंगित है। ये भगत गुरु अर्जुनदेव से पूर्व अपनी लौकिक लीला समाप्त कर चुके होंगे-क्योंकि 'सेविआ', 'भई', 'कीओ', 'तिआगिओ', 'उधारिओं', 'धिआइओ', 'धिआए' आदि समग्र भूतकालिक क्रियाएँ है। साथ ही 'नामदेव हरि जीउ बसहि संगि' अर्द्धाली भी उल्लेखनीय है, जिसमें 'बसहि क्रिया भूतकालिक न होकर वर्तमानकालिक है। इससे नामदेव की भक्ति भावना की उपलब्धि स्पष्ट है। वस्तुतः वह इतनी उच्च और महत्वपूर्ण है कि नामदेव भक्त रूप में सदैव अपने हरि (विठोबा) के साथ रहते हैं।

इस प्रकार यह सुनिश्चित तथ्य है कि ये सभी भगत अर्जुनदेव से पूर्व हो चुके होंगे, साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि ये भगत अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए लोक-विश्रुत थे। इसी से उन्होंने उनकी प्रशस्ति का गान किया और गुरु-परपंरा में उनकी वाणियों के मिलने पर गुरु ग्रंथ में उनका सम्पादन कर लिया।[१३]

नानक-वाणी में उनसे पूर्व के और समकालीन भगतों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, जैसा अन्य गुरुओं की वाणियों में उपलब्ध है। इस अनुल्लिखित तथ्य का कारण क्या है? यह एक चिंतनीय और विचारणीय प्रश्न है। सम्भव है कि इस प्रसंग के सन्दर्भ नष्ट हो गए हों अथवा गुरु-परंपरा की उपलब्ध वाणियों में प्रस्तुत संदर्भ की वाणियाँ गुरु अर्जुन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादन की सीमा में न आ सकी हों। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भगतों का संकेत मिलने पर भी अब वहिःसाक्ष्य के द्वारा देखना यह है, क्या नानक की इन भगतों से किसी अथवा किन्हीं स्थलों पर भेंट हुई थी ?

सूफी पंथ की एक विशिष्ट परंपरा से गुरु नानक का समीप का परिचय था, १२६६ ई. में उसके सुहरावर्दिया सम्प्रदाय की संस्थापना मुल्तान में हुई थी। यह नगर गुरु नानक के जन्म स्थान तलवंडी से अधिक दूर नहीं है। इससे अपने बाल्यकाल से ही उसके संतों और सिदुएन्तरे के विषय में वह सुनते रहे होंगे। १२३६ ई. में अजमेर में प्रवर्तित चिश्ती सम्प्रदाय के भक्त शेख इब्राहीम से उनकी तीन वार भेंट हुई थी। अपनी तृतीय भेंट में उन्होंने उनसे शेख फरीद के शताधिक छन्द प्राप्त किए थे।[१४]

गुरु-परंपरा की भावना को चिर-अक्षुण्ण रखने के सन्दर्भ में यह उल्लेख करना विषयान्तर न होगा कि गुरु अर्जुनदेव ने भी सूफियों से अपना सम्वन्ध सुरक्षित रखा था। १४८२ ई. में सिंध में प्रवर्तित सूफी पंथ की कदरिया शाखा के संत मियां मीर उनके घनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने गुरु अर्जुन की प्रेरणा से अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर का शिलान्यास किया था।[१५]

अपनी प्रथम उदासी (ई. १५०७-१५१५) में जब नानक सोमनाथ और द्वारका होते हुए बीकानेर के मार्ग से तलवण्डी लौट रहे थे, पुष्कर (राजस्थान) में भगत धना से उनकी भेंट हुई थी।[१६]

मिहरवान की 'जनम साखी' (पोथी सच खण्ड) में यह विवरण उपलब्ध है कि गुरु नानक काशी, हाजीपुर, पटना आदि की यात्रा के बाद अयोध्या पहुँचे और वहाँ उन्होंने दो प्रवचन किए, जिनमें जयदेव, नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, रविदास, सेणु, सधना, धना, वेनी आदि उनके समक्ष उपस्थित हुए। उन समग्र ने नानक का अभिनंदन किया अनन्तर वे स्वर्ग चले गए। स्वर्ग में जाकर इन भगतों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और यथा समय उन्हें अपने समीप बुला लिया। इस अतिरंजना पूर्ण घटना का अधिक नहीं परन्तु इतना विश्वास तो किया ही जा सकता है कि नानक ने इन भगतों द्वारा मान्य सिद्धान्तों और भावनाओं को अपने प्रवचनों में व्यक्त किया होगा।

गुरु नानक की वाणियों में इन भगतों का संकेत न मिलकर तीसरे गुरु अमरदास में मिलता है। इस तथ्य को लेकर यह विचार उठना स्वाभाविक है कि गुरु अमरदास ने सिख पंथ स्वीकार कर लेने के बाद भगतों की वाणियों का संग्रह किया हो। साथ ही यह कहना भी अनुचित न होगा कि उनके द्वारा किया भगतों का प्रशस्ति-गान अविश्वस्त न होगा। सच तो यह है कि भगत-वाणी के संग्रह के प्रमाण नानक द्वारा समर्थित अवश्य होंगे अन्यथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गिने-चुने भगतों के गान के लिए ही वह प्रस्तुत क्यों होते।[१७]

गुरु ग्रन्थ में भगत-वाणियों के समावेश के सन्दर्भ में 'पंथ' में यह कथन प्रचलित है कि उसके संपादन के पूर्व गुरु अर्जुनदेव ने तत्कालीन हिन्दू और मुसलमान भगतों को आमंत्रित किया, जिन्होंने अपने-अपने पंथ के भगतों की वाणियों का गान किया। उनमें से जो पद सिख ग्रंथ की परम्परा और सिद्धान्तों के अनुकूल लगे उनका संपादन उन्होंने गुरु ग्रंथ में कर लिया।[१८]

इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि नानक अथवा अमरदास से लेकर अर्जुनदेव तक भारतीय वातावरण में न जाने कितने भगत हुए होंगे, जिनकी विचारधारा सिखपंथ से मिलती है, उन्हें भी गुरु ग्रन्थ के सम्पादन में गुरु अर्जुनदेव को स्थान देना उचित होता। यदि उन्होंने यह किया होता तो 'जनम साखी', गुरु अमरदास, और स्वयं उनके भगतों की नामावली में साम्य न मिलता। भगतों के नामों में साम्य मिलने के कारण यह कहना ही उचित है कि गुरु नानकदेव द्वारा भगत-वाणियों का किसी न किसी प्रकार का संग्रह अवश्य रहा होगा।

अन्ततः यह कहना उचित है कि गुरुग्रन्थ के प्रथम सम्पादन के लिए गुरु-वाणियों के समान भगतों की वाणियाँ भी गुरु अर्जुनदेव को सिख पंथ के प्रबुद्ध अनुयायियों अथवा पंथ के प्रतिष्ठानों से मिली है, जिनको अपने नीर-क्षीर-विवेक के माध्यम से उन्होंने गुरु ग्रन्थ में सम्पादित किया।

गुरुओं की वाणियों को महला संख्या देना और गुरुओं तथा भगतों की वाणियों को क्रम से रागान्तर्गत रखने में गुरु अर्जुन का विवेकपूर्ण निर्णय तो है ही, साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने उन्हीं वाणियों को संगृहीत और सम्पादित किया है, जो पंथ के आचार-विचार और दर्शन के अनुकूल विश्वजनीन मानवीय उदात्त भावनाओं का पोषण करती थी। उन्होंने भगत-वाणियों का विश्लेषण कर उन्हें सम्पादन के लिए स्वीकार अथवा अस्वीकार किया है। उन्होंने छज्जू, शाह हुसैन तथा कुछ दूसरे भगतों की वाणियों का परित्याग किया है, क्योंकि उनमें नारी के प्रति घृणा और विरक्ति की भावनाओं की पुष्टि थी, ये वे तथ्य हैं जो पंथ की उदात्तता के विरुद्ध थे।[१९]

अपेक्षित बीड (पाण्डुलिपि) के तैयार हो जाने पर उसकी जिल्द बंधवाने के लिए भाई बन्नो को लाहौर भेजा गया। उन्होंने इस पोथी की नवीन प्रतिलिपि ही नहीं कराई, वरन् उसमें सूरदास और मीराबाई के पद तथा मुन्दावणी के अनन्तर कुछ अंश जोड़ दिए। जब गुरु अर्जुनदेव को इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिवर्तन और परिवर्द्धन का पता चला उन्होंने उस पोथी को अस्वीकार कर दिया, जिससे कालान्तर में इसे 'भाई बन्नो की बीड' अथवा 'खारी बीड' की संज्ञा प्राप्त हुई, जो भाई बन्नो के वंश में मागह जिला गुजरात में अद्यापि उपलब्ध है।

गुरु ग्रंथ के सम्पादन सम्बन्धी काल-विषयक दो अभिमत सिख पंथ में प्रचलित हैं, पहला, सं. १६५८ वि. (१६०१ ई.) और दूसरा सं. १६६१ वि. (१६०४ ई)। पहला मत भाई केसरसिंह छिब्बर का है[२०] और दूसरा अन्य विद्वानों का।[२१]

श्रीछिब्बर ने बंसावली नामा 'संज्ञक अपना ग्रंथ सं. १८३६ वि. में पूर्ण किया था। उन्होंने अपने स्वीकृत विषय के अनुसार समग्र गुरुओं के जीवन चरितों का वर्णन अपने ग्रंथ का लक्ष्य रखा है। इससे उनकी घटनाओं के साथ सन्-सम्वतों का समावेश स्वाभाविक हो गया है, पर अपनी ग्रंथ रचना में उन्होंने वैज्ञानिक और विवेचनात्मक दृष्टि न रख सुनी-सुनाई घटनाओं का समावेश कर लिया है। इससे सम्वत् भी अशुद्ध और अमान्य है।[२२]

बंसावलीनामा संज्ञक अपनी रचना की विषय वस्तु के सन्दर्भ में भाई श्रीछिब्बर ने यह उल्लेख किया है।

संभत कीती बंडिआँ दी।
भामाक्रिपालसिंह जी सुभिसखी।
दसवें पातशाह दा माया डिठ्ठा अखी ।।१६४।।

भाई मनीसिंह तारासिंहजी दी संगति।
कउरसिंघ जी चंद्रा डिठा तिस बिच पंगत।
होर सिख बहुत डिठे गुरु के पिआरे।
लिखे बरने सुने सुनाए तिन संगत भझारे ।।१६५।।

भलिआँ गुरमुखाँ वडिआँ सिखाँ वे कीते में दीदारु।
माता सुन्दराजी माता साहिब देवीजी दे दरबार।
दीवान साहिबचन्द दीवान धरमचन्द।
दीवान दसवें पातिसाह के।
हउं धरमचन्द का नाती लिखी कर चाह के ।।१६६।।[२३]

प्रस्तुत पंक्तियों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि गुरु गोविन्दसिंह के दीवान धर्मचंद के पौत्र होने के नाते श्री छिब्बर को सम्मानित सिखों की संगति का लाभ था, प्रसंगतः सभी गुरुओं की चर्चा चलती रहती होगी, जिसको सुनने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुयोग उन्हें मिलता रहा होगा। फलतः उनके द्वारा 'बंसावलीनामा' लिख डाला गया। इसलिए उन्होंने सम्वतों के औचित्य अनौचित्य पर ध्यान नहीं दिया। और गुरु ग्रंथ का रचना-काल सं. १६५८ वि. लिख दिया, जो अशुद्ध और कल्पित है। इसके विरुद्ध सं. १६६१ वि. इसका रचनाकाल विद्वानों द्वारा सम्मत और मान्य है जिसका समर्थन भाई जोधसिंह, प्रसिद्ध ऐतिहासिक बाबा प्रेमसिंह, प्रो. प्रीतमसिंह आदि आदि ने किया है।[२४]

(२) गुरु ग्रंथ का द्वितीय सम्पादन :

गुरु ग्रंथ का द्वितीय सम्पादन दसवें पातशाह गुरु गोविन्दसिंह ने १७०७ ई में दमदमा साहिब में किया था। उनसे पूर्व तक नवें पातशाह गुरु तेगबहादुर (इ. १६६४-१६७५) ने वाणियों की रचना अवश्य की थी, शेष छठे, सातवें और आठवें गुरुओं-क्रमशः हरगोविन्द (ई. १५९५-१६४४) हरराय (ई. १६३०-१६६१) और हरिकृष्ण (ई. १६५६-१६६४) ने वाणियों की सर्जना न की थी। इससे 'महला-९' के अन्तर्गत गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पिताजी के ५८ पद पन्द्रह रागों और ५७ सलोकों का इस ग्रंथ में सम्पादन किया था। इस कार्य में लेखक के पद पर भाई मनीसिंह प्रतिष्ठित रहे है। कहा यह जाता है कि इन सम्पादित सलोकों में सलोक संख्या ५६ गुरु गोविन्दसिंह द्वारा विरचित है,[२५] पर यह कथन विश्वस्त नहीं है;[२६] छठे, सातवें और आठवें गुरुओं की रचनाएं न होने के कारण महला संख्याएं छः, सात और आठ गुरु ग्रंथ में नहीं है।

केसरसिंह छिब्बर के मतानुसार भाई मनीसिंह ने परम्परागत गुरु ग्रंथ से भगत-वाणियों को हटाकर उसमें गुरु गोविन्दसिंह के दशम ग्रंथ का सन्निवेश किया था, पर भाई मनीसिंह की इस नीति की सराहना न हुई। इससे उन्होंने १७३४ ई में दशम ग्रंथ का अलग से सम्पादन किया था।[२७]

गुरु ग्रंथ के अन्तिम सम्पादन का श्रेय तो गुरु गोविन्दसिंह को है ही, उसी प्रकार उस पवित्र ग्रंथ को गुरु 'पद' पर आसीन और प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी उन्हीं को है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण में प्रवृत्त मुगल शासन से संघर्ष करते हुए वह महाराष्ट्र में गोदावरी के किनारे नांदेड़ पहुंचे। वहाँ पर ही उन्होंने गुरु ग्रंथ को 'गुरु' संज्ञा प्रदान की।

"सम्मत सतरां से पैंसठ, कार्तिक मास की चौथ, शुक्ल पख्खे, बुधवार के दिहूं, भाई दयासिंघ से बचन हांआ, श्री ग्रंथ साहिब लै आओ, बचन पाइ दयासिंघ श्री ग्रंथ साहिब लै आए। गुरुजी ने पांच पैसे एक नारिअल आगे भेटा राखा, माथा टेका, सरबत्त संगत से कहा, मेरा हुकम है, मेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगह श्री ग्रंथजी को जानना, जो सिख जानेगा तिस की घालाधाएं पएगी। गुरु तिस की बाहुड़ी करेगा, सत्त कर मानना ।''[२७]

यह तथ्य अन्य सूत्रों से भी पुष्ट है ।[२८] सच तो यह है कि दसवें पातशाह की इस घोषणा या मान्यता से 'गुरु पद' 'व्यक्ति' के लिए सदैव के लिए विलुप्त हो गया, कारण उस पद पर सदैव के लिए गुरु ग्रंथ को मान्यता मिली, जिसमें सभी गुरुओं और भगत-संतों के अमर संदेश समाहित हैं। इस ग्रंथ द्वारा सामाजिक और धार्मिक सिद्धान्त सिखों के लिए सुनिश्चित हो गए जिससे उनके प्रेरित और स्फूर्त रहने के लिए एक स्थायी साधन बन गया।

गुरु ग्रंथ उपसंहार :

गुरु ग्रंथ के सम्पादन के सन्दर्भ में प्रस्तुत विवरण और विवेचन के उपरान्त उसने 'उपसंहार' के विषय में विचार कर लेना भी उचित है। इस प्रसंग में उसके दो निम्न अंश उल्लेखनीय है।

(१) मुंदावणी, और

(२) रागमाला

(१) मुंदावणी

'मुंदावणी' का अर्थ है, 'मूंदना' अथवा 'मुद्रा लगाना'। इस अंश के रचने का श्रेय 'महला ५' पंथ के पांचवें गुरु अर्जुनदेव को है। सच तो यह है कि गुरु ग्रंथ के सम्पादन के अनन्तर स्वरचित मुंदावणी की पंक्तियाँ रख कर इस ग्रंथ की समाप्ति पर अपनी मुद्रा लगादी है अथवा अपनी 'सही' कर दी है। दसवें पातशाह गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पिताजी की वाणियों के सम्पादन में इस तथ्य का ध्यान रखा है, फलस्वरूप उन्होंने नवें पातशाह की वाणियों मुंदावणी से पूर्व 'महला ९' के अन्तर्गत रख कर अपना पवित्र दायित्व पूर्ण किया है।

मुंदावणी गुरु ग्रंथ का उपसंहार है, इससे इसकी पंक्तियाँ बड़ी सार पूर्ण हैं। यह गुरु ग्रंथ के समान आध्यात्मिक जीवन को प्रेरित करता है।

संसार में जिन लोगों ने ब्रह्म नाम रूपी अमृत अपने जीवन का आधार बना लिया है, वे लोग सत्य और संतोष के विचारों की अनुभूति करते हैं। तथ्य यह है कि जो राम-नाम का उपयोग अथवा पान करते हैं, उनका उद्धार हो जाता है। वस्तुतः राम-नाम त्याज्य नहीं है। इसे अपने मानस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में रखना चाहिए क्योंकि ब्रह्म-ज्योति का सर्वत्र प्रसार है। इससे इसके माध्यम से संसार के अज्ञान रूपी अंधकार से पार जाने का प्रयास करना चाहिए ।

हे ब्रह्म, तुम्हारे प्रदेय को मैं जान नहीं पाया हूँ, पर तुमने मुझे उसे समझने योग्य बनाया है, यह सत्य है। मुझे निर्गुण ब्रह्म समझने की क्षमता नहीं है, पर तुमने मुझ पर कृपा की है, जिससे मुझे योग्य गुरु मिल गया है। हे ब्रह्म यदि तुम्हारी कृपा स्वरूप मुझे राम नाम स्मरण का आधार मिल जाए, तो मेरा मन ईश्वर में स्थिर हो जाएगा, यह सत्य है।[३०]

गुरु ग्रन्थ की यह भाव-धारा ही 'मुंदावणी' द्वारा परिपुष्ट है। इससे यह कहने में दो अभिमत नहीं हैं कि इस अंश के साथ ही यह विशाल पवित्र ग्रंथ विश्राम ले उठा है। फलतः मुंदावणी का अंश इस पवित्र ग्रंथ का अविभाज्य अंश है।

(२) रागमाला :

रागमाला गुरु ग्रंथ का अन्तिम अंश है। न तो यह किसी भगत की रचना है और न किसी गुरु की। यदि यह किसी गुरु द्वारा रचित होती तो इसकी 'महला संख्या' अवश्य होती, यदि किसी भगत-विरचित होती तो इसकी भणिता में उसका नाम अवश्य होता। इससे यह तो स्पष्ट है कि यह किसी अन्य सहृदय की रचना है, जो किसी के माध्यम से गुरु ग्रंथ में सन्निविष्ट कर दी गई है और अब वह उसका अविभाज्य अंग है।

पंथ के बाहर की रचना होने के कारण शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर ने १९४५ ई. में गुरु ग्रंथ के पाठ की समाप्ति पर 'रागमाला' के पाठ करने की मनाही कर दी थी।[३१] पर पारंपरिक रूप से यह गुरु ग्रंथ से जुड़ी हुई है 'इससे निष्ठा और भक्ति भावना के कारण पंथ के श्रद्धालु उसे गुरु ग्रंथ से अलग करने के पक्ष में नहीं है।[३२]

विद्वानों की मान्यता है कि संस्कृत के जोध कवि विरचित 'माधवानल कामकन्दला' का यह हिंदी अनुवाद है, जो आलम द्वारा प्रस्तुत किया गया है। आलम के 'माधवानल' के ६३ वें छंद से ७२ वें छंद तक का राग-वर्णन ही रागमाला का अंश है।[३३]

रागमाला के आरंभ में इंगित है कि एक राग के साथ पांच स्त्रियाँ और आठ पुत्र आलाप भरते हैं।[३४] राग भैरव, मालकोश, हिंदोल, दीपक, श्रीराग और मेघ प्रमुख राग हैं और उनके साथ ही उनकी स्त्रियों और पुत्रों (रागिनियों और रागों) के नाम दिये गए हैं। पर भारतीय संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्र के संगीत दर्पण, राग तरंगिणी, रागार्णव आदि विश्वस्त ग्रन्थों में इस प्रकार के राग-रागिनियों के विवरण नहीं मिलते हैं।

गुरु ग्रंथ में श्रीराग, माझ, गउड़ी, आसा, गूजरी, देवगंधारी, बिहागड़ा, बडहंसु, सोरठि, चनासरी, जैतसरी, टोडी, बैराडी, तिलंग, सूही, विलावल, गौंड, रामकली, नटनारायण, माली गउडा, मारू, तुखारी, केदारा भैरउ, बसंत, सारंग, कानडा, कलिग्रान, मलार, प्रभाती, जैजावंत आदि ३१ राग-रागिनियों का समावेश है, जिनमें माझ, जैतसरी, रामकलो, तुखारी, प्रभाती, जैजावंतो, विहागडा, बडहंसु, माली गउडा, कलिग्रान आदि का 'रागमाला' में संकेत नहीं है।

रागमाला के प्रस्तुतकर्त्ता ने इसे गुरु ग्रंथ जैसे विशाल और पवित्र ग्रंथ में क्यों रख दिया है, उसका मंतव्य स्पष्ट नहीं है। यदि यह इसमें सन्निविष्ट न भी होती तो भी इस धार्मिक ग्रंथ के गौरव में किसी प्रकार के अभाव की अनुभूति न होती।

डॉ० रामचन्द्र मिश्र डी० लिट्०
'वैदेही'
४७, विद्या विहार,
राणा प्रतापनगर, नागपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संदर्भ :—

१. अगिया भई अकाल की तभी चलाइओ पंथ ।
सब सिखन को हुकम है गुरु मानिओ ग्रंथ ।।

....महान कोश, पृष्ठ-४३०

गुरु ग्रन्थ जी मानियो प्रकट गुरु की देह ।
जो गुरु को मिलबै चहै, खोज शब्द म वेह ।।

श्री प्रहलादसिंह—रहितनामा, पद. ३०

२. सतिगुर की वाणी सति सति करि जाणहु गुर सिखहु हरि करता आपि मुहहु कढ़ाए ।। वार गउड़ी—१४, महला—४

३. द्रष्टव्य—जनम साखी परंपरा - डॉ. कृपालसिंह, (पंजाबी युनिर्वसिटी पटियाला, १९६९, परिशिष्ट)

अ —विलायती वाली 'जनम साखी'
आ—मिहरवान वाली 'जनम साखी'
इ —आले वाली 'जनम साखी'
ई —मानसिंह वाली 'जनम साखी'

४. संतोषसिंह—गुरु सूरज प्रकाश-रास १, अंश ५९ (ज्ञानी प्रतापसिंह-गुरमत लेक्चर पृष्ठ-७४), डॉ. धर्मपाल मैनी—श्री गुरु ग्रन्थ साहिब : एक परिचय पृष्ठ ६.

५. पुरातन जनम साखी—४१, 'भागीरथ मनसुख ते शिवनाम', पृष्ठ १४२-१४८ सम्पादक भाई साहिब भाई वीरसिंह जी (खालसा समाचार, अमृतसर, आठवाँ संस्करण, १९५० ई.)

५. तबि गुरु बाबे नानकजी कहिआ जि पुरषा अंगदा, एह परमेसुर की वाणी है । अरु जहां-जहाँ में उदासी (पद-यात्राओं) के विषे फिरिआ हों, अरु मेरे मुष ते जि वाणी निकसी है । सु जगतु उस कउ जाणता नहीं । अरु उहु वाणी विरथी भी जाणे की नहीं । अरु अबि मैं तुझ कउंजि थापिआ (गुरु-गद्दी पर अभिषिक्त करना है) है । सु उहु वाणी किछु एक तेरे मुष ते भर उपजेगी । अरु तुम ते पीछे जीनाँ पुरषां कउं सबद की थापना होइगी । उहु वाणी उनके मुख ते प्रगटि होती जाइगी । अरु मुझ ते जि सातवीं पीढ़ी गुरु होइगा (गुरु मिहरवान) । उस कउं परमेसुर की आगिआ है जि मेरी वाणी का अरथु प्रगट करेगा । अरु समसतभिगतां की वाणी का अरथु प्रगट करेगा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोसटि गुरु मिहर वानु-अध्याय १, पृष्ठ १७०
सम्पादक-गोविन्दनाथ राजगुरु (पंजाब युनिवर्सिटी, चण्डीगढ़)

७. (अ) कवित्त-सवैये भाई गुरदासजी भल्ला-भूमिका-हरिभजनसिंह संत, पृष्ठ-ख (शि.गु.प्र. कमेटी, अमृतसर, १९५६)

(आ) हरिजी सोढ़ी कृत-गोसटि गुरु मिहरवानु (सम्पा. गोविंदनाथ राजगुरु) अध्याय-१, पिरथीचंद और उसकी परंपरा, पृष्ठ-१७

(इ) M. L. Peace.......... Episodic sketches from the life of Guru Arjun Deva-'A few Facets of Guru Arjun, Pages 22 to 24 (Souvenir to the 50th Sikh Educational Conference at Ranchi (Feb, 1969)

८. केसरसिंह छिब्बर-वंसावली नामा (चरण पांचवां, पद्य-१०)

९. मीणा-कपटी (भाई गुरदासजी की पिरथीचंद को दी हुई उपाधि महान् कोश, पृष्ठ ९७३.

वारां गिआन रतनावली, भाई गुरदास, वार ३६, पौड़ी १ से ८ तक

१०. Guvindev Kaur-The Guru Granth Sahib : Its Physics and Metaphysics-Page 15 (Sterling Publishers Private Ltd., N. Delhi, 1981)

११. गुरु ग्रन्थ, रागु बसंतु, महला-५, दुतुकीआ, पृष्ठ-११९२.

१२. भट्ट कल्ल, गुरु ग्रन्थ, पृष्ठ-१३९०

१३. When Guru Arjun compiled the Holy Book for all Sikhs, he included in it certain of the hymns and poems of God's lovers, who preceded Guru Nanak or were even then singing to God in India. Muslims and Hindus alike were thus honoured, provided their Songs did not offend against the fund amentals of the Guru's doctrine, and the hymns of Kabir, Farid and Namdeva were especially drawn upon to enrich the Guru Granth Sahib.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Duncan Greenlees-The Gospels of Guru Granth Sahib (Adyar. Madras), PXXV-XXVI

१४. C. H. Loehlin Sikh and Their Scriptures, P. 61
डॉ. धर्मपाल मैनो-श्री गुरु ग्रन्थ साहिब : एक परिचय (हिन्दी भवन, प्रयाग) पृष्ठ-१७-१८

१५. C. H. Loehpin, Sikh and Their Scriptures, P. 61

१६. D. Greenlees-The Gospels of Guru Granth Sahib, P. 44

१७. Dr. Mohan Singh-A History of Punjabi Literature P. 35-36

१८. Dr. Sher Singh-Philosophy of Sikhism, P. 63

१९. M.L. Peace-Episodic Sketches from the life of Guru Arjun Deva P. 24

२०. संमत सोला सौ अठवंजा से गए।
तब आदि ग्रन्थ जी जनम थे लए॥

गुरु अरजनजी दे धाम जनम ग्रन्थ जो धारा।
दाइआ थी भाई गुरदास भल्ला लिखारी खिडावनहारा॥

केसरसिंह छिब्बर-बंसावलीनांमा (चौदहवाँ चरण, अन्तिम अंश)
परम पवित्र आदि बीड दा संकलना काल (खालसा समाचार, अमृतसर, सं. १९५२ पृष्ठ–४

२१. गुरदास बोड पर दसखत करे।
संमत लिख्यौ अधिक सुख भरे।

संमत सोलां से सुखकारी। इकसठ तांके ऊपर धारी।
भाद्रों सुदि एकम सुखदायी। श्रीग्रन्थ भयो पूर सुहायी॥
गुरु विलास-अध्याय-४-४०८

संमत सोलां से इक–साठहि, भादव की सुदि ऐकम जानो।
ग्रिन्थ समापत श्रीगुर कीन, महां उतशाह गुरु धर ठानो।
गुरु प्रताप सूरज, रास-३, अंसू-५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२२ केसरसिंह छिब्बर दे संमत, पृष्ठ ५-१५

छिब्बर दी लिखित विच इतिहासिक सत्यता दी अंश, पृष्ठ १६-३०
(परम पवित्र बीड दा संकलना काल, खालसा समाचार, अमृतसर)

२३. श्री छिब्बर-बंसावली नामा, चरत-१४, १६४-१६६

२४. आदि बीड दा संकलना काल (अमृतसर) पृष्ठ ७२-६२

२५. नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुर गोविन्द ॥
कहु नानक इह जगत में किन जपिओ गुरमंतु ॥

गुर ग्रन्थ, पृष्ठ १४२६ (अमृतसर)

२६. गुरिन्दर कौर-द गुरु ग्रन्थ साहिब-इट्स फिजिक्स एण्ड मेटाफिजिक्स
(स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली) पृष्ठ-१८

२७. इतनी वधीक उस पासों गल सी होई। जो भगत बाणी जुदा कर लिखी सी होई ॥ ३७७ ॥ नाल दूजा आदि ग्रन्थ सी रलाइआ। तिस विचों भगत बाणी जुदा कर लिखाईएआ। दोहां ग्रन्थां दी बीड इक कर वंधआई।

बंसावली नामा (उद्धृत-डॉ. सुरिन्दरसिंह कोहली
ए क्रिटीकल स्टडी आफ आदि ग्रन्थ, पृष्ठ १६

२८. भट्ट वही भादसो परगना थानेसर (गुरिन्दर कौर-द गुरु ग्रन्थ साहिब इट्स फिजिक्स एण्ड मेटाफिजिक्स, पृष्ठ २०-२१ से उद्धृत)

२६. आज्ञा भई अकाल की, तभी चलाओ पंथ ॥
सब सिक्खन को हुक्म है, गुरु मानियो ग्रन्थ ॥

गुरु ग्रन्थजी मानियो, प्रकट गुरां की देह ॥
जो गुरु को मिलवै चहै, खोज शब्द में वेह ॥

प्रह्लादसिंह-रहितनामा ४ पद-३०

'कत्तक सुदी ५ (८ कत्तक) संमत १७६५ (७ अक्टूबर सन् १७०८) नूं गोदावरी नदी किनारे नादेड़ साहिब पास, गुरु ग्रन्थ अते पंथ नूं गुरता देके अदुती नेशवा श्री गुरुगोविन्दसिंह जी महाराज जोतीजोति समाए।'

भाई कान्हसिंह नाभा-महान कोश, पृष्ठ ४३०

३०. गुरु गन्थ मुंदावणी, महल-५, पृष्ठ-१४२९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३१. डॉ. बलबीरसिंह-रागमाला दा सवाल, पृष्ठ-उ, खालसा समाचार, अमृतसर

३२. वही ,, पृष्ठ १ से २६ तक

३३. श्री शमशेरसिंह अशोक-माधवानल
डॉ सुरेन्द्रसिंह कोहली-ए क्रिटीकल स्टडी आफ आदि ग्रन्थ, पृष्ठ ९६-१०६
भाई कान्हसिंह नामा–महान कोश, पृष्ठ १०२८

३४. राग एक संगि पंच बरंगन ।
संगि अलापहिं आठहु नंदन ॥–गुरु ग्रन्थ-रागमाला, पृष्ठ-१४२९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंडित परमसुख विरचित विक्टोरियाचरितम्

सन् १८५७ के गदर के विफल हो जाने पर भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हुआ। ब्रिटिश सरकार के सीधे शासन प्रवन्ध में भारत की राज व्यवस्था सम्मिलित कर ली गई। महारानी विक्टोरिया ने भारतीय प्रजा के लिये कई एक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सुधारों की घोषणाएँ की और भारतीय प्रजा का स्नेह अर्जित किया। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि प्रजा उनके द्वारा सम्पन्न कराये गये जनहित के कार्यों की प्रशंसा करती। भारत के कई एक कवियों, लेखकों ने महारानी की प्रशंसा में अनेक भाषाओं में काव्यों का प्रणयन किया, पुस्तकें लिखीं, लेख छपवाये। संस्कृत भाषा में भी विक्टोरिया की प्रशंसा में काव्य रचे गये। जयपुर निवासी विद्वान् परमसुख भी उनमें से एक था, जिसने महारानी विक्टोरिया के शासन प्रबंध की प्रशंसा में 'विक्टोरियाचरितम्' काव्य का प्रणयन किया था।

पं० परमसुख का उल्लेख राजवैद्य श्रीकृष्ण भट्ट ने अपने जयपुर विलासकाव्य में तत्कालीन जयपुर के विद्वानों में किया है। उन्होंने इस उल्लेख में पंडित परमसुख द्वारा कामशास्त्र विषयक रचना करने की ओर संकेत किया है।[1] यथा–

अनंगविच्छितिरनंगशास्त्रे ववन्ध यो वन्धमनर्धवन्धम्।
स सव्यसंघस्तत्कीर्त्तिगन्धः सुखो सुखोऽयं परमादिरास्ताम्॥

डॉ. प्रभाकर शास्त्री ने अपने शोधप्रबंध 'जयपुर की संस्कृत साहित्य की देन १८३५-१९६५ ई.' के कृतिकार खण्ड में पंडित परमसुख की तीन रचनाओं- (१) कामरंगोदय-कामशास्त्र के बंध सं. १ अपूर्ण (पंचम प्रहर्ष मात्र), (२) रसार्णवोल्लोलमाला—साहित्यशास्त्र बंध सं. ८ पत्र ३, और (३) नीतिप्रजागरनामदण्डमाहात्म्यम्–नीतिशास्त्र बंध सं. १ की श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर के संग्रहालय में उपलब्ध होने का उल्लेख किया है।[2] 'रसार्णवोल्लोलमाला' ग्रन्थ की प्रति का रचनाकाल इस ग्रन्थ की अंतिम प्रशस्ति में सं. १९१८ वि० के भाद्रपद के प्रारम्भ की द्वादशी तिथि दिया है और इसकी रचना महाराजा रामसिंह की तुष्टि हेतु करने की ओर संकेत दिया है।

उक्त ग्रंथों में से किसी में भी पं० परमसुख का जीवन परिचय प्राप्त नहीं होता। मात्र रसार्णवोल्लोल माला के प्रशस्ति लेख के, जिसमें उसके जयपुर में रहते हुए महाराजा की तुष्टि हेतु इस ग्रन्थ की रचना का संकेत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया है। डॉ० प्रभाकर शास्त्री ने भी पं० परमसुख का जीवन परिचय प्राप्त न होने की ओर संकेत दिया है।[3]

'विक्टोरिया चरितम्' काव्य में, जिसकी रचना पंडित परमसुख ने सं. १६५५ चैत्र कृष्णा १२ द्वादशो शुक्रवार तदनुसार ७ अप्रेल सन् १८६६ को पूर्ण की, अपना परिचय दिया है। इसके अनुसार उसकी शिक्षा दीक्षा अलवर में जनित प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती के पास हुई थी और जयपुर के महाराजा माधवसिंह के आश्रम में नियुक्त था—यथा

जयपुरमध्ये श्रीमाधवेशाश्रितेन-
ऽलवर जनित श्रीदण्डिभिः पाठितेन
परमसुखबुधेनाऽऽरच्यते सर्वतुष्टचै-
धरणिप विक्टोर्या भारतेशीचरित्रम् ॥१॥

दण्डी स्वामी विरजानन्द उस समय देश के एक प्रकाण्ड विद्वान्, सर्वतोमुखी सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक क्रान्ति को जन्म देने वाले महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के भी गुरु थे। दंडी स्वामी के शिष्य-समुदाय में महर्षि दयानन्द सरस्वती के अतिरिक्त हमें पुण्डरीक गोपीनाथ, दक्षिणी सोमनाथ, रंगदत्त, जुगलकिशोर, चिरंजीलाल, सोहनलाल, गोपाल ब्रह्मचारी, चौबे गंगादत्त, नन्दन चौबे, जगन्नाथ, व्रजकिशोर, पं. उदयप्रकाश, पं. हरिकृष्ण, पं. दीनबंधु, पं. गणेशीलाल आदि नाम मिलते हैं।[4] ये सभी दंडीजी के मथुरा निवास के समय की शिष्य मंडली में थे। पंडित परमसुख का नाम दण्डी विरजानन्द के शिष्य के रूप में प्रस्तुत रचना विक्टोरिया चरित के माध्यम से मिलता है। पंडित भीमसेन शास्त्री ने भी स्वरचित विरजानन्द प्रकाश' पुस्तक में दंडीजी के अलवर निवास के समय (सं. १८८६ से १८६२ वि.) उनका शिष्यत्व ग्रहण करने वाले तीन व्यक्तियों में परमसुख का नाम भी गिनाया है। अन्य दो शिष्य (१) राजा विनयसिंह और (२) बदरिया निवासी अंगदराम थे।[5]

विक्टोरिया चरित में परमसुख ने दंडी विरजानन्द का जन्म अलवर में होना बताया है, पर अन्य विद्वानों ने पंजाब में दुवाबस्त जालंधर[6] या कर्तारपुर कस्बे के निकट बेइ नदी के तट पर स्थित गंगापुर ग्राम[7] में होना कहा है। पं. भीमसेन ने जालंधर से ६० मील दूर स्थित नूर महल में, अपने ननिहाल में उनका जन्म होने की संभावना व्यक्त की है। विरजानन्द के एक शिष्य पं. नवनीत ने सरस्वती के किनारे उनका जन्म होने की ओर संकेत 'नवनीत सुवन सरस्वती पुलिन जन्म' चरण में दिया है।[8] परमानन्द या परमसुख दंडीजी के प्रारंभिक शिष्यों में था; अतः उसका कथन हमें अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा कहा जाता है कि माता पिता की मृत्यु हो जाने पर अन्धे विरजानन्द को उसके भाई धर्मचन्द ने ग्यारह वर्ष की आयु में घर से निकाल दिया। उन्होंने काशी, कनखल, ऋषिकेश, हरिद्वार, गया, कलकत्ता आदि में शिक्षा पाई और तदुपरान्त सौरों में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। उनके शुद्ध उच्चारण और सस्वर श्लोक पाठ से प्रभावित होकर अलवर के महाराजा विनयसिंह ने उन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित किया। जहाँ वे सं. १८८९ के वैशाख में अलवर पहुँचे और साढ़े तीन वर्ष तक अलवर में रहे। अंगदराम और बुधसेन सौरों से ही उनके साथ गये। इस अवधि में महाराजा विनयसिंहजी उनसे नित्य पढ़ते रहे।

विक्टोरिया चरित में परमानन्द ने स्वयं को महाराजा माधोसिंह के आश्रित बताया है और मौजमंदिर (धर्म सभा) में नियुक्त कहा है। उसका निवास स्थान पान के दरीबे में चौकड़ी गंगापोल में था। रसार्णवोल्लोल माला काव्य उसने महाराजा रामसिंह की संतुष्टि के लिये लिखा। उस काल में जयपुर की विद्वद् मंडली में उसकी गिनती थी। फिर भी समुचित मान वे प्राप्त नहीं कर पाये थे ऐसा 'विक्टोरिया चरित' काव्य से भासित होता है।

'रसार्णवोल्लोल माला' ग्रंथ की अंतिम प्रशस्ति और पुष्पिका में वह अपने नाम प्रेमसुख के साथ अपर पर्याय नाम परमानन्द का भी प्रयोग करता है। यथा—

श्रीमद्राजाधिराजेन्द्ररामसिंहेन्द्रतुष्टये,
श्लोकं प्रेमसुखः कृत्वा तिलकेनाप्यभूषयत्।
वस्विन्द्रंकेन्दुभिर्वर्षे भाद्राद्यद्वादशीतिथौ,
रसार्णवोल्लोलमाला प्रेमानन्देन निर्मिता॥

इतिश्री प्रेमसुख प्रेमानन्दापरपर्याय परमसुख पण्डित-विरचित रसार्णवोल्लोलमाला समाप्ता॥"

'रसार्णवोल्लोलमाला' के रचनाकाल सं १९१८ (सन् १८६१) और विक्टोरिया चरित काव्य रचना काल सं. १९५५ (सन् १८९९) से यह सिद्ध है कि उनका ग्रंथ प्रणयन काल कम से कम ३७ वर्ष की अवधि तक तो रहा ही। इस अवधि में उन्होंने और भी रचनाओं का प्रणयन किया हो और १९५५ वि. के उपरान्त भी वे लेखन कार्य में सक्रिय रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं है।

डा० प्रभाकर शास्त्री ने उक्त 'रसार्णवोल्लोलमाला' में से एक पद्य पं. प्रेमसुख के वैदुष्य के प्रदर्शनार्थ दिया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कदाचित् क्राम्यन्ती परिशिवमसख्येऽस्ववपुषि,
स्वबिम्वं स्वीयास्यं कलयति जलैः पांसुरहितं,
भवद्ध-गलां भयविगतरोषाऽवतु शिवा ॥

इस रचना के ३७-३८ वर्ष बाद विरचित काव्य विक्टोरिया चरित में हमें उनके विकसित वैदुष्य के दर्शन होते हैं। विक्टोरिया चरित में पं. परमसुख ने संस्कृत भाषा पर अपने अधिकार और अपनी काव्य पटुता तो प्रदर्शित की है - पर अपनी प्राचीन संस्कृति, इतिहास, और देश और धर्म के प्रति अटूट भक्ति तथा आत्मसम्मान के भावों की प्रतीति नहीं होती जो उनके गुरु भाई महर्षि स्वामी दयानन्द में दिखाई देती है। पंडित परमसुख ने इस ग्रन्थ में महारानी विक्टोरिया के शासन प्रवन्ध की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसके समय में आविष्कृत हुए और भारत में व्यवहृत तार द्वारा संदेश प्रेषण, समुद्र में चलने वाले अग्निवोट, रुई पींजने और कपड़ा बुनने वाली मशीनें, गैस की रोशनी, तोपें, पानी की टूंटिया, रेल, छापाखाने जैसे आविष्कार, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल आदि की व्यवस्था जैसी कोई चीज यहाँ नहीं थी। वेद, पुराण, इतिहास आदि की साक्षी देकर उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सृष्टि के आदि से लगाकर उस काल तक के इतिहास में वही प्रथम चक्रवर्ती साम्राज्ञी हुई है। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्व-रचित सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकादि ग्रन्थों में उस समय तक आविष्कृत वैज्ञानिक यंत्रादिकों के विषय में ही नहीं वेदादि शास्त्रों में निहित विज्ञान के वीज तथा प्राचीन ऋषि महर्षियों के विमान विद्युदादि अनेक अन्य विद्याओं के ज्ञान की ओर भी संकेत किया था, जिनकी उस समय तक किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। अब तो विमान विद्या आदि से संबंधित प्राचीन ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ भी उपलब्ध हो गये हैं। पं. परमसुख ने विक्टोरिया की प्रशंसा में विभोर होकर भारत की प्राचीन संस्कृति, इतिहास आदि का परिहास ही किया है। दंडी स्वामी के ही दो शिष्यों में एक दूसरे के विपरीत यह चारित्रिक स्थिति चिन्त्य है। स्वामी दयानन्द भारत को विदेशी दासता से मुक्त देखना चाहते थे- तदर्थ उन्होंने बुरे से बुरे स्वदेशी राज्य को भी सर्वप्रकारेण सुखकर विदेशी शासन से श्रेष्ठ बताया था। उसके लिये उन्होंने हर संभव उपाय भी किये। पं. परमानन्द नैराश्य की भावना से ग्रस्त हुए तत्कालीन अनेक अन्य भारतीय मनीषियों के समान ही राज्याश्रय और सम्मान प्राप्ति के लिये हो रही होड़ के प्रवाह में बहते दिखाई देते हैं। देश भक्ति, आत्मगौरव और स्वजाति-स्नेह जैसी कोई वात उनमें नहीं दिखाई देती।

पंडित परमानन्द के काव्य का भाषा मधुर, मनोहर, अनुप्रासों की छटा से मंडित है और शैली सुन्दर सुष्ठु है। उनका अध्ययन भी व्यापक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है और भाषा ज्ञान प्रशस्त्य। उनके काव्य में हमें यंत्रादिकों के लिये कवि के द्वारा निर्मित अनेक नये शब्द प्राप्त होते हैं, जो उनके शब्दशास्त्र विषयक अगाधज्ञान के परिचायक हैं। तार (Telegram) के लिये विद्युन्तन्त्री रेल के लिये भू-विमान, जहाज के लिये अब्धियान, टकसाल के लिये मुद्रोद्गार, पेच और कपड़ा मिल के लिये पांचालिका पुत्तली और वस्त्र-पांचालिका, गैस के प्रकाश के लिये धूम-ज्योत्स्ना, और इसी प्रकार तोपयंत्रालिका, घण्टाघटी, यन्त्रालय आदि शब्द इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

पं० परमानन्द ने प्रशस्ति की रचना संस्कृत भाषा में छन्दोबद्ध की है, पर अपने भावों को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हिन्दी भाषा में इस काव्य की विस्तृत व्याख्या भी लिखी है। इस कृति को एक प्रति राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, शाखा कार्यालय, उदयपुर में ग्रंथांक ३९८२ पर उपलब्ध है। ग्रंथ २३ × १४ वर्ग सैन्टीमीटर आकार के कुल १२ पत्रों में समाहित है। प्रत्येक पत्र में लगभग १९ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १८ अक्षर है। ग्रंथ का रचना काल चैत्र कृष्णा १२ शुक्रवार संवत् १९५५ तदनुसार ७ अप्रेल सन् १८९९ है–और यही इसका प्रतिलिपि काल भी प्रतीत होता हैं। ऐसी स्थिति में यह कवि के ही हाथ की लिखी मूल (आदर्श) प्रति हो सकती है।

काव्य में श्लोक सं० १६ उपलब्ध नहीं है, जबकि उसकी व्याख्या प्राप्त है–इससे यह भी संदेह हो सकता है कि यह मूल प्रति न होकर प्रतिलिपि हो–पर प्रति की अवस्था को देखते हुए ऐसा भी नहीं लगता।

इन श्लोकों के भाष्य की एक अन्य विशुद्ध प्रतिलिपि इसी ग्रन्थागार में ग्रंथ सं० ३९८१ पर उपलब्ध है। दोनों ही प्रतियों की व्याख्या की भाषा में कतिपय शब्दों के सामान्य अन्तर के अतिरिक्त कोई विशेष अन्तर नहीं है। सुधि पाठकों के लिये ग्रन्थांक ३९८२ में निहित पूर्ण काव्य हिन्दी भाषा व्याख्यान सहित नीचे यथावत् प्रस्तुत किया जा रहा है—

परमसुख (परमानन्द)

कृतं

विक्टोरियाचरितम्

जयपुरमध्ये श्रीमाधवेशाऽऽश्रितेन,
ऽलवरजनितश्रीदण्डिभिः पाटितेन।
परमसुखबुधेनाऽऽरच्यते सर्वतुष्ट्यै,
धरणिप विक्टोर्या भारतेशी चरितम्॥१॥

जयपुरेन्द्र श्री माधवसिंह जी महाराज के आश्रित और अलवर जन्म-भूमि जिसकी श्री दंडीजी मथुरा निवासी विरजानन्दजी प्रज्ञाचक्षु जी ने पढाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुवा परमसुख नामक पण्डित नै सवकी खुशी के वास्ते सब पृथिवी की पालना करने वाली श्री विक्टोरिया भारतेश्वरी का चरित्र रचा जाता है।

प्रणेतुं विक्टोर्यां प्रभवति न को वेदवदनै,
र्न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपतिः।
अथ स्वीयौत्सुक्यं फलयितु मनाः स्तौतु सकल-
स्तदा किञ्चिद्ब्रूते परमसुखनामाऽपि विबुधः ॥२॥

श्री विक्टोरिया जी की स्तुति करने के लिये ब्रह्मा चारों मुखों से भी समर्थ नहीं होता है और सेनानी स्वामी कार्तिकेय भी छः मुख से स्तुति नहीं कर सकता। शेष नाग हजार मुखों के होते हुए भी सफल नहीं होता है। अथवा अपने अपने उत्साह को सफल करने के उद्देश्य से सब कोई स्तुति करें तो उचित है कि परमसुख नामक पंडित भी कुछ कहे।

उड्डीयन्ते न वियति गरुडाश्चेन्न किं चाटकेरा-
गाहन्तेऽधौ यदि च मकराः किं न शङ्खाः रमन्ते।
धावन्तेऽश्वा यदि च हरिणास्तन्न किं धेनुवत्साः,
स्वीयौत्सुक्यं यदि सफलयन् स्वस्वशक्त्या न वाच्यः ॥३॥

यदि आकाश में गरुड जाति के पक्षी उड़ते हैं तो क्या चिड़ियों के बच्चे नहीं उड़ते हैं। समुद्र में मगरमच्छ अवगाहन करते हैं, तो क्या शंख-सीपादिक जाति के जीव नहीं रमते हैं। घोड़े और हिरण दौड़ते हैं, तो क्या गाय के बछड़े नहीं दौड़ते हैं। अतः अच्छे काम में अपनी अपनी शक्ति के अनुसार अपने उमंग को सफल करता हुआ उपालंभ देने लायक नहीं है।[१] भावार्थ मैं भी अपनी बुद्धि के अनुसार यदि स्तुति करता हूँ तो हँसी करने की बात नहीं है।

फल्गून् बिन्दुसमान् गुणाञ्जलधिवच्चेद्वर्णयेत्सा स्तुति-
र्विन्दून् प्राप्य गुणाब्धितः कतिपयांस्तान् वर्णयेत्का स्तुतिः।
श्रीमत्या गुणसिन्धुतः कतिपयान्बिन्दूनिवालभ्य चेद्,
ब्रूयां किंचन तत् क्षमध्वमधुना सभ्या विपश्चिज्जनाः ॥४॥

बूंद के बराबर तुच्छ गुणों को समुद्र के बराबर वर्णन करे तो वह स्तुति है। भावार्थ यह है कि जैसे चारण भाट वगैरह डिंगल वगैरह कठोर भाषा में मूर्ख राजाओं की बड़ाई करते हैं। जैसे 'फलां राजा! तेरे घोड़े के पागड़े में पाँव रखते ही शेषनाग, जिसके फण के ऊपर जमीन है सो कांपे, धरती थरराहै, दिग्गज चींघाड़े, सूरज चंद्रमा चाल भूल जाय। समुद्र उमड़े। ऐसी ऐसी बातें सुनकर राजा उन लोगों को हाथी, घोड़े, गाँव, ताजीम, कुरब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बक्ष देते हैं और व्रसबब लाइल्मियत संस्कृत-कवियों पर खयाल नहीं करते और जो समुद्र बराबर गुणों में से कितेक ही बूंद बराब्रर आसरा लेकर वर्णन करे तो वह स्तुति नहीं कहाती है। तो, हुजूर के गुणों के समुद्र में से कितने ही बूंद बराबर गुण लेकर के मैं कुछ वर्णन करूं तो हे सभासद पंडित जन' हौं क्षमा, क्या माफ करौ।

श्रीविक्टोर्ये जय जय चिरं पाहि चाकल्पमेत-
त्संतानैः स्वैरजनि भवतीतुल्य एकोऽपि सम्राट् ।
नैवासृष्टेस्तदिह भजतां साक्षितां वादिवृन्दः,
सम्यग्दृष्ट्वा सकलनिगमान् वा पुराणेतिहासान् ॥५॥

हे विक्टोर्ये शाहनशाह आपका जय हो, जय हो और बहोत काल पर्यन्त रक्षा करो और जब से सृष्टि हुई है तब से आपके बराब्रर एक भी सम्राट क्या चक्रवर्ती नहीं हुआ, यही तारीफ है। इस मुकदमे में मैं विवाद करने वालों का समूह हो सब वेद पुराण इतिहासौं को अच्छी तरह देख कर के मुन्सिफ होकर गवाही कबूल करो।

आजीव्यानां तरुणामुभयतटगतच्छायया शोभमानः,
क्लृप्ता मार्गा असंख्याः सममृदुसरलाः सर्वदिक्षु प्रदिक्षु ।
कूपाद्यानावतारैरुभयत उचिता रक्षिता वा भटौघैः,
पान्था यत्राऽऽरमन्ते गृहवदपगतव्याघ्रलुण्ठाकभीकाः ॥६॥

आपके बराब्रर कोई चक्रवर्ती नहीं हुआ, इस बात को जाहिर करता है। अव्वल तो आपके राज्य में सब्र दिशा या उपदिशाओं में अनगिणती के सड़क के रास्ते बनाये गये हैं। कैसे रस्ते हैं कि जिनौं के दुतरफा छाया के दरख्त लग रहे हैं, जिनके फल फूल खाकर तृप्त हो जाय। उन्हीं से जेवा दे रहे हैं, फिर कैसे रास्ते हैं, ऊंचे नीचे नहीं, बड़े कोमल और सीधे हैं और जिनके दोनों ओर कुए बावड़ी वगैरह जलाशय और बाग-बगीचे और उतरने के लिये सराय धर्मशाला वगैरह हैं। और सिपाही बरकमदाजों करके रक्षा किये गये हैं, इसही सबब से जिन रास्तों में मुसाफिर घर की तरह आराम करते हैं, जहाँ भगेरा (बघेरा) लुटेरों का डर नहीं है।

विद्युत्तन्त्री भूविमानाब्धियाने, मुद्रोद्गारावस्त्रपाञ्चालिकाश्च ।
धूमज्योत्स्ना तोपयंत्रालिकाद्याः, घण्टाघटाद्याः कल्पः प्राक्कृताः कैः ॥७॥

विद्युत्तंत्री बिजली से तार की खबर पेशतर नहीं थी, मुकाम गौर फरमाने का है कि श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के चोदहवें अध्याय की कथा है कि-इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के तख्त पर बैठा हुआ राजा युधिष्ठिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिक्र कर रहा है कि अर्जुन कूं द्वारिका भेजा और छः सात महीने गुजर गये, कुछ खबर नहीं आई। अर्जुन नहीं आया। कृष्णजी वगैरह बांधवों का क्या हाल है। यहाँ बहुत खोटे शकुन हो रहे हैं, तो देखो पेसतर इत्ता अंधेर था कि सारी पृथ्वी का दिग्विजय करके राजसूय यज्ञ को करने वाले युधिष्ठिर राजा को अपने परम-इष्ट मित्र श्रीकृष्णजी की और करामातधारी अर्जुन भाई की कुछ खबर नहीं। सात महीने गुजर गये। और आज दिन यह प्रताप श्री भारतेश्वरी का है कि हर एक आदमी अपने बंधुजन का हजारहां कोसों से चंद घंटों में वापिस जवाब मंगा सकता है। दूसरा भू-विमान (रेलवे) जिसमें लाखों मनुष्य जर-जेवर पहने हुए लाखों का माल भरे हुए बड़े आराम से घंटों में सैकड़ों कोस आते जाते हैं और पेसतर ऐसा अंधेर था कि द्वारिका से श्रीकृष्ण के कबीलों को दिल्ली को अर्जुन लाता था, सो रास्ते में भीलों ने लूट लिया। इसी तरह अब्धियान समुद्र में चलने वाला अग्निबोट का चमत्कार। इसी तरह कि रामचन्द्रजी समुद्र ऊपर सेतु बांधि के मुसकिल से लंका पहोंचे थे, अब सब कोई समुद्र को तैर जाते हैं। इसी तरह मुद्रा, मोहर, रुपये वगैरह उगलने वाली (टकसाल) और घन्टों मध्ये रूई की सफाई कर थान बुनकर धोकर घड़ी तय्यार करने वालो पाञ्चालिका पुत्तलियों और वस्त्र पाञ्चालिका, पुतलीघर की पुतलियों का चमत्कार। पेसतर राजा लोग भी देशी मोटा कपड़ा का वरताव रखते थे, आज दिन मेहनत मजूरी करने वाले भी बारीक कपड़े पहिन कर अमीरों के वराबर शौक साधते हैं। और धूम-ज्योत्स्ना (गैस की रोशनी) जिससे चौमासे की अंधियारी रात्रि में भी शहरों में प्रकाश रहता है। तोप यंत्रालिका, जल की टूंटियाँ, पेसतर शहरों में मीठा जल बड़ा दुर्लभ था। अब पैंड पैंड पर सुलभ हो गया है, तो घड़ी घंटा, दरजियों की कल, चरखी, दुर्बीन आदि कल आपकी अमलदारी से पेसतर किसने बनाई थी अर्थात् स्वप्न में भी नहीं थो। तो ऐसे प्रजा को आनन्द देने वाली श्री चक्रवर्तिनी को कोटिशः धन्यवाद देना ही स्तुति है।

कोटिष्वेकः कोपि वा तीर्थयात्रां कृत्वा जीवन्ता जगामाद्भुतं तत्।
अद्यत्वेऽन्धाः पङ्गवोवाजरत्यः कृत्वा यात्रां कोटिशः संति वृत्ताः ॥८॥

बद्रिनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा करके करोड़ों में से एक कोई जीवित लौट आता था और आज दिन करोड़ों आंधे-पांगले, बुढिया वैसो कठिन यात्रा करके आये हैं तो इस इन्तजाम का और पुण्य का कहाँ तक वर्णन कर सकैं।

ग्रन्थाः पूर्वं दुर्लभा दुष्पठा वा दुर्लेखा वा भ्रष्टवर्णा बभूवुः।
ते त्वद्यत्वे सर्वलभ्याः सुशुद्धा मुक्तावर्णाः श्रीभवत्याः प्रसादात् ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छापा जारी होने से हर्ष दिखलाता है। पेसतर ग्रन्थ दुर्लभ थे, क्योंकि पुस्तक-पिशाच पंडित कोई नहीं मनसते थे। इसी कारण से पढ़ने में नहीं आते थे और मिलते तो उनका लिखना मुश्किल था और वे अशुद्ध होते थे। अब हजूर की महरबानी है कि इस समय शुद्ध मोती के अक्षरों के बहोत सुलभ सबको मिलते हैं। सो धन्यवाद पहुँचे।

देशे देशे नगरे नगरे चत्वरेष्वापणेषु,
वीथ्यां वीथ्यां पुरि पुरि लघुग्रामखेटादिमध्ये।
नानाविद्या विगतगदिता लब्धये या प्रजानां,
कोटी कोटिर्वितरति मुदाऽध्यायकेभ्यो भिषग्भ्यः ॥१०॥

श्री चक्रवर्तिनीजी का प्रजा के ऊपर बड़ा भारी उपकार हो रहा है, तिसका कुछ वर्णन किया जाता है। देश देश में, बड़े शहरों में, चौपड़ो में बाजारों में, रास्ते गलियों में, अधबीच के गाँव खेड़ों में सब राया कूं अनेक तरह के इलम पाने के वास्ते और निरोगता के वास्ते पढ़ने वाले पंडित उस्ताजों कूं और डाकतरौ कूं क्रोडौ रुपये श्रीचक्रवर्तिनीजी देते हैं, तो कालेजौ का, सफाखानौ का वनावट सजावट का वर्णन सैकड़ां श्लोकों से हो सकै ॥१०

श्रीमत्या राज्यतः प्राक् सकलमपि जगत् सर्वदा त्रस्तमासी-
न्मात्स्यन्यायेन भूपा अपि परभयदास्त्रासमन्योन्यमापुः।
श्रीमत्यास्तु प्रतापादपि सकलजना निर्भया हर्षयुक्ताः,
स्वच्छन्दा वा रमन्ते जय जय विक्टोर्याभिधेम्प्रेस् सदैव ॥

हे श्रीमती चक्रवर्तिनीजी आपकी अमलदारी से पेसतर सारा जगत सदा ही भयभीत रहता था, कारण कि मात्स्य न्याय मस्छगलागल थी। जिस तरह छोटी मछली कूं वड़ी मछली निगल जावै, उससे बड़ी उसकूं भी निगल जाबै, इस तरह गरीब कूं जोरावर मार लेता था और उससे जोरावर उसकूं मार लेता था, और दूसरौं कूं डराने वाले राजा भी आपस में डरते रहते थे। अब श्रीहजूर के इकबाल सै सब दुनियाँ के लोग निडर हैं। बड़ी खुशी मनाते हैं और स्वाधीन है। कोई किसी का दबेदार नहीं। मन आवै जहां सैल करते हैं सो मैं आसीर्वाद या दुआ देता हूँ कि श्री विक्टोरिया नाम वाली इमप्रेस आप हमेशा कूं प्राप्त हो जीते रहौ ॥

दुर्भिक्षे क्षुद्भयार्ता अपि सकलजनास्तस्करप्रायभूपै-
र्बाध्यन्तेत्यैऽन्नवस्त्रद्रविणहरणतः प्रागियं भूदशाऽभूत्।
श्रीविक्टोर्ये भवत्या भुवनतलमिदं भूरिदुर्भिक्षमध्ये,
कोशात्कोटिव्ययेनाऽप्यमितचरुभरैर्जीवितं भक्ष्यदानैः ॥१२॥

श्री चक्रवर्तिनीजी श्री विक्टोर्याजी की रहमत सखावत का असल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्णन किया जाता है। हजूर की अमलदारी से पेसतर पृथ्वी की यह हालत थी कि जब कहतसाली होती थी तब भूख की मारी हुई सब राया कूं अकसर चोर धाड़ेती बराबर राजे लोग पूरी तकलीफ देते थे। क्या वजै कि किसी के पास नाज कपड़े रोकड़ देखते सो लूट लेते थे। हे विक्टोर्या नाम वाली इमप्रेस आपने तो वहोत सी कहतसालियों में अपने खजाने से क्रोड़ों रुपये खर्च करके लाखों मरण नाज रखने चाबने वगैरा देकर के पृथ्वीतल जीवा दिया ॥१२॥

इन्द्रप्रस्थासनस्थाः कतिपय यवनाः प्राज्यसाम्राज्यभाजो,
म्लेच्छत्वं क्षत्रियाणामकृपत बलतो राजकन्याविवाहान्।
संहारं तीर्थगानां विघटनखनने देवतामन्दिराणां,
वेदादिग्रन्थभारानतिविषमदृशो मज्जयामासुरब्धौ ॥१३॥

देहली के तख्त पर बैठे हुए कितने ही मुसलमीन बड़ो बादशाही पाये हुए थे, उन्होंने राजपूत लोगों को जबरन मुसलमान किया, जैसे जयपुर का मुसाहिब फैजली खाँ वगैरह बड़गूजर कौम राजपूत थे और अलवर के मुसाहब अमूंजान वगैरह चौहान कौम राजपूत थे। सेखावाटी इलाके के जेपुर के कायमखानी कौम राजपूत सेखावत थे।[1]

अलवर भरतपुर के इलाके के मेव लोग सब हिन्दू थे और उन बादशाहों ने राजाओं की कन्याओं से निकाह किये। और अयोध्या मथुरा वगैरह तीर्थों के रहने वाले ब्राह्मण वगैरह लोगों की बेकसूर कत्ल की और हिन्दुओं के देवताओं की मूर्तियों को फोड़ दी, उनके मन्दिरों को खुदवा कर मिसमार कर दिये। जैसे वृन्दावन में मानमन्दिर का एक खन नीसानी वास्ते रहने दिया। कई दरजे फुड़ा दिये और खड़ीखोटी नीयत के थे कि जिन्होंने हिन्दू लोगों के वेद वगैरह पोथियों के बोझों को समन्दर में डुबा दिया।

तीर्थक्षेत्रपुरीषु पत्तनगिरिष्वत्यद्भुता निर्मिता.
श्चीयन्ते च सहस्रशो नृपतिभिर्देवालयाः श्रेष्ठिभिः।
ग्रन्थानद्यलघुव्ययादयुतशो विद्यार्थिनः क्रीणते,
लुप्तान् प्रागधुना श्रमैः प्रकटितान् यन्त्रालये मुद्रितान् ॥१४॥

अब श्री विक्टोरिया महारानीजी की अमलदारी में जो हाल वरत रहा है सो वर्णन किया जाता है। पुष्करादिक तीर्थों में, कुरुक्षेत्र वगैरा क्षेत्रों में, जो अयोध्या, मथुरा वगैरह पुरियों में, जयपुर वगैरह शहरों में, गोवर्द्धन वगैरा पर्वतों में बड़े बड़े अद्भुत देवताओं के मन्दिर राजे लोगों ने, सेठ लोगों ने बनवाये और हाल में बनाये जाते हैं और जो ग्रन्थ पुस्तकें पेसतर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुम हो गये थे सो अब श्री भारतेश्वरीजी के हुकम से बड़ी कोशिशों से तलाश कराकर छपाये गये हैं तो थोड़ी कीमत में हजारों तालिब-इल्म हजारों किताबों कूं खरीद कर रहे हैं। चित्र विचित्र नाना प्रकार के पुस्तकों को चौतरफ से बहुत जर खर्च करके इकट्ठे कराकर महलों के अन्दर बने हुए लायब्रेरियों में, आलमारियों के बीच में बड़ी हिफाजत से रखवा कर विद्याओं की बढवारी वास्ते प्रजा के उपकार के वास्ते सब राया को अपने अपने धर्म में चलने की हिदायत श्री भारतेश्वरीजी कर रहे हैं सो बहुत काल पर्यन्त विजय को प्राप्त हो। इसमें व्यंग्य अर्थ यह हुआ कि किसी मजहब के ऊपर पास होता तो सबके मजहब की किताबों को ऐकठे क्यों कराते? और ध्वनि यह हुआ कि ऐसे रहम वाले बादशाह परमेश्वर के अंश अवतार होते हैं। और प्रतिध्वनि यह हुआ कि सारी सृष्टि ईश्वर की ही की हुई है। ईश्वर एक है। ईश्वर के नजदीक सब बराबर है ॥१४॥

दिल्लीपत बादशाहों के दरबार में सब राजे महाराजे शेर के आगे हाथियों के झुंड की नांई बहुत डरते थे व हाथ-पांव बांधे हुए खड़े खड़े हाजरी साधते थे। हे देवि! श्री विक्टोर्या महारानीजो अब आपसे मान (इज्जत) तलक क्या अलकाब का सत्कार पाये हुए और अपने प्यारे बेटे तुल्य मानकर जिन्हें परगने बख्शे हैं असे राजे महाराजे अपने अपने राज में स्वच्छन्द, स्वाधीन, देवता स्वर्ग में जैसे रमते हैं, असे अैश कर रहे हैं यह इकबाल आपका ही है ॥१५॥[२]

दिल्लीशम्लेच्छसंसद्यखिलनृपतयोऽभ्युत्थिता बद्धहस्ताः,
सेवन्ते स्मातिभीता मृगपतिपुरतो नागपूगा इवासन्।
श्रीमत्यालब्धमानाः प्रियसुततुलिताः प्राप्तनीवृद्विशेषाः,
स्वच्छन्दाः स्वस्वराज्ये स्वरिव सुरगणा देवि! भूपा रमन्ते ॥१६॥

अब भारतेश्वरीजी की दयालुता और बे-लालचपने का वर्णन किया जाता है। राजे महाराजे सब खुद कमजोर हैं और कमजोर फौज वाले हैं, सो क्या हजूर की फौज के अगाड़ी खड़े रह सकते हैं। जो कहो तो जमीन कैसे भोग रहे हैं तो कहा जाता है कि हजूर की उस तरफ बेखयाली है। वो ही बड़ा आसरा है उससे जमीन भोग रहे है और यह बड़े अचरज की बात है जो हजूर जरा सा भी लालच नहीं रखती हैं। सब दुनिया में जाहिर है कि सब राजे महाराजे हजूर को धन्यवाद दे रहे हैं कि गोद का बेटा लेने की इजाजत है ॥१६॥

यद्द् भूगोल-खगोल-पर्वत-खनीवन्याब्धिनद्यादिकं,
वाह्याभ्यन्तरतो निरूपितपदार्थं वामितं सर्वतः।
तत्तद्द्रव्यगसारकर्षणमथो योगप्रभावादिकं,
नैतत्पूर्वमनुष्ठितं च विदितं सिद्धर्षिभिर्योगिभिः ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो (बातें) पहले नहीं थीं और अब पैदा हुई सो कहा जाता है। भूगोल माप, बाहर भीतर का हाल, देश देश के नगर गाँवों की गिणती, जमीन की तासीर, पैदावार, मनुष्यों का हाल, मर्दुमशुमारी वगैरा और खगोल का हाल, सूरज-चांद और ग्रह सितारों का हाल, मध्यरेखा, ध्रुव को स्थिति, ग्रहों की गति, पर्वत खानि जंगलात, समुद्र नदियों का बाहर भीतर का हाल, वस्तुओं का निरूपण, नपंत, पारा, सोना, औषधों की रूहर बेचना, दो चीज के मिलाव से तासीर पैदा होना जैसे गंधक, सोरे से बारूद, काच से बीमारी खेंचना, ऐसी ऐसी अचरज की बातें जो पहले सिद्ध ऋषि योगियों ने भी न किया न जाना-उनका वर्णन करने की हम लोगों की ताकत नहीं है ।।१७।।

श्रीमत्याज्ञाऽतिधन्या जगति विजयते पद्भयान्न्यायसिद्ध्यै,
सेतुश्रेणिः प्रवृत्तोज्झितविषममतिर्यत्र विप्राः श्वपाकाः ।
भूपा रङ्काः समानाः स्वपरविपराः पक्षपातस्तु तथ्ये,
क्षीरं हंसेन तोयादिव भवति पृथग् यत्र सत्यं मृषातः ।।१८।।

श्रीमती शाहनशाह विक्टोरीजी साहब की आज्ञा हुकुम बड़ा धन्य है और जगत क्या जहान के बीच में विजय को प्राप्त हो रहा है। यानि सबके ऊपर गालिब है। कैसी आज्ञा है कि जिसके भय क्या खौफ से न्याय की सिद्धि क्या नातक होने वास्ते सेतु मर्यादा क्या कानून की श्रेणी (पंक्ति) क्या कलमें जारी हुई हैं। कैसे कि जिन्होंने विषम बुद्धि क्या बरखिलाफ समझ त्यागी गई। यानि हाकिमों ने छोड़ दी गई। कैसे जाना कि जहाँ ब्राह्मण और चांडाल और राजराजे और रंक और अपने पराये, दोस्त दुश्मन सब बराबर बरते गये हैं। और तथ्य जो साँच है उसके बीच में पक्षपात है कि हाकिमों का पास करना है जो कहो साँच झूठ जहाँ घुल मिल हो रही है वहाँ क्या किया जाता है—तो कहता है कि हंस जैसे दूध पानी मिले हुए में से दूध को अलग छाँट लेता है, इस प्रकार जिन कानों में झूठ से साँच अलग छाँटी जाती है। जो कहो कि ब्राह्मण और चांडाल बराबर कहना बेजा है। इसका उत्तर हो चुका कि विषम मति जहाँ छोड़ी गई क्योंकि आज दिन ब्राह्मण भंगी को जान से मारै वा राजा गरीब को मारै तो बेशक अवेज सजा पायगा जो कहो शास्त्र धर्म विरुद्ध है—उसका उत्तर भगवद् गीताजी के ही वाक्यों से हो गया कि—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि,
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः ।।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।। इत्यादि'

तथा श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के (२६) गुणतीसवें अध्याय का श्लोक १४ चौदहवाँ जो उद्धव प्रति श्रीकृष्णजी ने निज मत करि के उपदेश किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मणे पुष्कसे स्तेने ब्रह्मण्योऽर्के स्फुलिङ्गके ।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो जनः ॥

ब्राह्मण में और पुष्कस या चाण्डाल समान जाति का उनमें समदृष्टि होने में जाति प्रयुक्त भेद जाता रहा । और स्तेन क्या ब्राह्मण का, सुवर्णादिक द्रव्य चोरने वाला और ब्रह्मण्य क्या ब्राह्मणों के वास्ते सुवर्णादि पदार्थ देने वाला इनमें समदृष्टि होने से कर्म प्रयुक्त भेद गया और सूर्यमण्डल जो तेजः पुञ्ज है और स्फुलिङ्ग क्या अग्नि की चिनगारी इनमें से समदृष्टि होने से गुणकृत भेद जाता रहा और अक्रूर क्या शान्तवृत्ति पुरुष और क्रूर जालिम इनके बीच में समदृष्टि होने से स्वभाव प्रयुक्त भेद नहीं रहा ।

सरित इव समुद्रं सर्वभूपस्तुतिस्त्वां,
व्रजति सकलनाथे तन्मया चित्रकाव्यम् ।
जयपुरनगरेन्द्रप्रीतये यत्प्रणीतं,
भवतु तदिदमद्य प्रीतये श्रीभवत्याः ॥१९॥

जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में जा मिलती हैं। उसी प्रकार राजाओं की स्तुति आपको पहुँचती है । क्या कारण कि आप सकल राजा प्रजा की मालिक हैं तो मैंने यह चित्रकाव्य जो जयपुर नगर के स्वामी श्री माधवसिंहजी महाराज को प्रसन्नता के वास्ते हो ॥१९॥

यदि मम श्रम एष निवेदितो भवति किं च न देवि मुदे तव ।
तदनुसारमिहादरमाप्नुयां, जयपुरेन्द्रनृपादिषु चिन्त्यताम् ॥२०॥

कवि अपने मतलब की अरज करता है कि मेरा अरज किया हुआ मेरा यह परिश्रम हे देवि चक्रवर्तिनीजी थोड़ा सा भी आपकी खुशी के वास्ते होवे तो उस मुताबिक कुछ इशारा फरमाने में आवे जिसके जरिये से शुभचिंतक जयपुर वगैरा महाराजों में आदर पावूं । यह खयाल हुजूर में फरमाणे में आवे ॥२०॥

भावार्थ यह कि सड़कें रोशनी, टूंटी, कालिज, छोटे मदरसे, सफाखाने वगैरह अच्छे कामों में राजे लोग खरच करते हैं सो आपके इकबाल व हुकुम से करते हैं, वरनै कभी न करें क्यूंकि इलम वगैर कदरदानी नहीं हो सकती है । इस हेतु से इस गरीब की यह प्रार्थना है ।

शुभम् भूयात । शिवं भूयात् ।

बाणेष्वङ्केन्दुवर्षे मधुबहुलदले भार्गवे विष्णुतिथ्यां,
नन्दाङ्कभेन्दुबोध्येश सनि समतयाऽप्रेल मासः सप्तमीतः ।
श्रीविक्टोर्याचरित्रं परमसुखकृतं भाषया व्याकृतं यद्-
भूयाल्लोके प्रसिद्धं दिशि दिशि सकलप्रीतये सर्वकाले ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिति चैत्र कृष्णा १२ द्वादशी शुक्रवार संवत १९५५ का मुताविक तारीख ७ सातवीं अप्रेल सन् १८९९ ईसवी।

गुनीस से पचपन का साल चैत का महीना पहला पखवाड़ा बारस शुक्रवार के रोज मुताबक तारीख सातवीं अप्रेल सन् ठारसै नीन्यानवे ईसवीं में परमसुख पंडित का बनाया हुआ श्री विक्टोरिया चरित्र काव्य भाषा में व्याख्यान कीया सो सब दुनियाँ की खुशी के वास्ते चौतरफ हमेशा जाहर हौवैं।

१. यह कथन इतिहास विरुद्ध है। कायमखानी चौहान राजपूत थे, न कि सेखावत (कछवाहा) —

२. मूलपद्य अनुपलब्ध

डॉ० व्रजमोहन जावलिया
देलवाड़ा की हवेली, उदयपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में दण्डनीति का स्वरूप

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं राजनीति के पाश्चात्य अध्येताओं, लेखकों एवं विद्वानों का सामान्यतया यह मत है कि राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन की कोई महत्वपूर्ण देन नहीं है, क्योंकि भारतीय मनीषियों ने राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय राज्य की कोई परिकल्पना नहीं की थी। फलस्वरूप विश्व के राजनीतिक इतिहास में भारतवर्ष का कोई स्थान नहीं है। पाश्चात्य विचारकों के अनुसार प्राचीन भारतीय विचारक निरन्तर धार्मिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन में ही लीन रहने वाले व्यक्ति थे और यही कारण है कि उन्होंने किसी राष्ट्रीयता का विकास नहीं किया। प्रो० डब्ल्यू० ए० डनिंग ने लिखा है– "प्राचीन आर्यों ने कभी भी राजनीति को धर्मशास्त्र एवं अध्यात्मशास्त्र के वातावरण से मुक्त नहीं किया है और आज भी वह उसी में घुला-मिला है।"[1] इसी प्रकार प्रो० मैक्समूलर तथा प्रो० ब्लूमफील्ड ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए क्रमश: लिखा है– "भारतीयों का कभी राष्ट्रीयता की भावना से परिचय ही नहीं रहा तथा उनके हृदय कभी राष्ट्रीय अवधारणा की सुखानुभूति से गद्‌गद् नहीं हो सके। ... . भारतीय मस्तिष्क ने मात्र धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में ही मुक्त रूप से चिंतन एवं सृजन किया है....और वस्तुतः उन तत्वों को प्रायः नष्ट कर दिया है, जिनके द्वारा किसी राष्ट्र को इतिहास में स्थान प्राप्त होता है।[2] प्रो० ब्लूमफील्ड का भी कथन है कि, "भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक काल से ही धार्मिक संस्थाओं ने व्यक्तियों के चरित्र एवं विकास को जिस सीमा तक नियन्त्रित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ...ऐसी व्यवस्था में राज्य एवं राष्ट्र के विकास हेतु कोई प्रावधान ही नहीं है।[3]

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारतीय संस्कृति का उपर्युक्त मूल्यांकन आचार्य कौटिल्य की रचना अर्थशास्त्र के प्रकाश में आने के पूर्व तक अंशतः सत्य रहा है। परन्तु इस महान् एवं महत्वपूर्ण रचना के प्रकाशित होने के फलस्वरूप अब यह कदापि स्वीकारा नहीं जा सकता है कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन का राजनीतिक सिद्धान्तों के क्षेत्र में कोई योगदान नहीं है। हम यह भी स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि भारतीयों द्वारा कभी भी राजनीति को धर्मशास्त्र एवं अध्यात्मशास्त्र से मुक्त कर मानव-ज्ञान की [स्वतन्त्र शाखा के रूप में स्थापित नहीं किया गया है। आचार्य कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र के प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में ही तत्कालीन युग में प्रचलित मानव-ज्ञान को] विभिन्न शाखाओं (विद्या)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है कि समस्त ज्ञान चार विद्याओं में विभक्त है—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति ।[४]

आन्वीक्षिकी में दर्शनशास्त्र, त्रयी में धर्मशास्त्र, वार्ता में अर्थशास्त्र तथा दण्डनीति में राज्यतन्त्र अथवा शासन-व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है।[५] इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय मनीषियों ने राजनीति विज्ञान को, अर्थशास्त्र की भाँति ही धर्मशास्त्र एवं अध्यात्मशास्त्र से पूर्णतया पृथक् कर एक स्वतन्त्र विज्ञान का रूप दे दिया था। यही नहीं अपितु धर्म एवं अध्यात्म द्वारा राजनीति अथवा अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अतिक्रमण भी नहीं होता था। वस्तुत: पाश्चात्य विद्वानों के आरोपों के विपरीत, प्राचीन भारतीय चिन्तन में ऐसे उदाहरणों का भी अभाव नहीं है, जिनके आधार पर यह प्रतीत होता है कि राज्यतन्त्र ही धर्मशास्त्र एवं अध्यात्मशास्त्र का क्षेत्रातिक्रमण करता था।[६] प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा के महत्वपूर्ण स्तम्भ आचार्य बृहस्पति के अनुयायियों के अनुसार मात्र दो ही विद्याएँ हैं- वार्ता एवं दण्डनीति। त्रयी तो लोकयात्राविदों (दुनियादारों) की आजीविका का साधन मात्र है।[७] शुक्राचार्य के अनुयायियों ने मात्र दण्ड-नीति को ही विद्या माना है तथा उसी को सम्पूर्ण विद्याओं का स्थान एवं कारण कहा है। इस प्रकार दर्शन एवं धर्म को दण्डनीति में ही सन्निहित स्वीकार किया गया है।[८]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्टत: कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय विचारकों ने शास्त्रीय एवं स्वतन्त्र रूप से राजनीतिक चिन्तन किया था तथा राजनीति को एक विज्ञान एवं कला के रूप में मानव-ज्ञान की पृथक् एवं स्वतन्त्र शाखा स्वीकार करते हुए प्रतिष्ठापित किया था और उसी को दण्डनीति कहते थे। कालान्तर में मानव ज्ञान की इस शाखा को ही अर्थशास्त्र, राजधर्म, राजनीति तथा नीतिशास्त्र भी कहा जाने लगा।[९]

वस्तुत: प्राचीन भारत में दण्डनीति (राजशास्त्र) की उत्पत्ति कब हुई प्रामाणिक रूप से बताना दुष्कर है। उपाख्यानों एवं कथाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय का शास्त्रीय अध्ययन एवं चिन्तन वैदिक युग की समाप्ति के पश्चात् प्रारम्भ हुआ है। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि आचार्य कौटिल्य के बहुत पूर्व ही प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने मानव के पूर्णतया विकास-हेतु सम्पूर्ण ज्ञान को चार श्रेणियों में विभक्त कर रखा था—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति। आन्वीक्षिकी, त्रयी एवं वार्ता को मानवीय उपयोग-हेतु सुव्यवस्थित करने के लिए दण्ड को परमावश्यक स्वीकार किया गया था। इस प्रकार दण्ड के सम्यक् प्रयोग का ज्ञान जिस विद्या से होता था, वही दण्डनीति थी।[१०]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डी० आर० भण्डारकर ने भी स्पष्ट रूप से यह प्रमाणित किया है कि आचार्य कौटिल्य के पूर्व दण्डनीति विषयक प्रचुर साहित्य था। उदाहरणार्थ राजतंत्र सम्बन्धी—मनु, पराशर, बृहस्पति तथा शुक्र द्वारा प्रतिपादित चार विचारधाराएँ थीं। इनके अतिरिक्त भारद्वाज, विशालाक्ष, पाराशर (पराशर-पुत्र) पिशुनाचार्य, (नारद) कौणपदन्त (भीष्म) वातव्याधि तथा बाहुदन्ती (महेन्द्र) द्वारा रचित राजतंत्र सम्बन्धित ग्रन्थ भी थे। इनका सन्दर्भ मात्र कौटिल्य में ही नहीं, अपितु महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय ५५ में भी उपलब्ध है। अतः स्पष्टतः प्राचीन भारत में दण्डनीति की उत्पत्ति ई. पू. ७०० वर्ष तक हो चुकी थी।[११] प्राचीन भारतीय चिन्तन में दण्डनीति की उत्पत्ति के स्पष्टीकरण हेतु निम्नलिखित प्रसंग भी ध्यातव्य हैं :—

(क) महाभारत में दण्डनीति की उत्पत्ति :—

महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय ५९ में चार विद्याओं का उल्लेख है—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति। इन चारों की उत्पत्ति एक साथ मानी गई हैं। सृष्टि के आदिकाल में मनुष्य सुखी एवं शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे और लोगों की आसुरी प्रवृत्तियाँ सुप्तावस्था में थी।[१२] कालान्तर में आसुरी प्रवृत्तियाँ जागृत हो गईं, जिसके फलस्वरूप जीवन कलहपूर्ण एवं यातनामय हो गया। समाज में मत्स्य-न्याय आ गया। इस मत्स्य-न्याय एवं अराजकता से मुक्ति-हेतु लोगों ने संसार के रचयिता ब्रह्मा की शरण ली। ब्रह्मा ने लोक-कल्याण हेतु एक लाख अध्यायों से युक्त एक बृहदाकार ग्रन्थ की रचना की।[१३] तथा तदनुसार लोगों को आचरण करने के लिए आदेश दिया, जिससे वे मत्स्य-न्याय एवं अराजक स्थिति से मुक्ति प्राप्त कर सुखी तथा शांतिपूर्ण जीवन-यापन कर सकें। ब्रह्मा द्वारा रचित ग्रन्थ दण्डनीति-प्रधान था। चूँकि संसार का सुचारु रूप से संचालन दण्ड के अधीन है, अतः यह ग्रन्थ दण्डनीतिशास्त्र के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ।[१४] समस्त षाड्गुण्यनीति का सारतत्व यह शास्त्र महात्माओं के समक्ष सदैव प्रस्तुत रहेगा। चार पुरुषार्थ-अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष इसी शास्त्र में उल्लिखित हैं।[१५] चूँकि ब्रह्मा द्वारा रचित दण्डनीति विषयक ग्रन्थ विशालकाय था, अतः विशालाक्ष (भगवान् शिव) ने उसे सर्वप्रथम दस हजार श्लोकों में संक्षिप्त किया। पुनः बाहुदन्त (इन्द्र) ने इसे पाँच हजार श्लोकों में, बृहस्पति ने तीन हजार तथा शुक्र ने एक हजार श्लोकों में संक्षिप्त किया।[१६] उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि दण्डनीति की उत्पत्ति सृष्टि-रचना के कुछ काल व्यतीत हो जाने के बाद हुई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) धर्मशास्त्रों में दण्डनीति की उत्पत्ति :—

धर्मशास्त्र का उद्देश्य विभिन्न धर्मों की व्याख्या करना तथा मानव के इहलौकिक एवं पारलौकिक सुख-शांति हेतु पथ-प्रदर्शन करना है। परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति में सर्वाधिक बाधा मानव-प्रकृति है। मनुष्य में सुर एवं असुर दोनों प्रवृत्तियाँ होती हैं। आसुरी प्रवृत्तियों के प्राबल्य के कारण मनुष्य धर्म-च्युत होकर अधर्म की ओर प्रवृत्त हो जाता है। इसके फलस्वरूप समाज में अव्यवस्था एवं अराजकता उत्पन्न होती है और मत्स्य-न्याय प्रारम्भ हो जाता है। मानव के इस पतन को रोकने के लिए दण्ड का विधान किया जाता है। दण्ड मनुष्य की आसुरी प्रवृत्तियों का दमन कर उसे धर्मानुकूल जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करता है। परन्तु दण्ड का सम्यक् प्रयोग ही समीचीन होता है। इस प्रकार दण्ड के पूर्ण एवं सम्यक् प्रयोग के विधिवत् ज्ञान-हेतु दण्डनीति का जन्म हुआ है।[१७] मनु का मत है कि सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण स्वधर्म-पालन में है। परन्तु समाज में ऐसे मनुष्य भी रहते हैं, जिनमें धर्म-परायणता का अभाव होता है।[१८] ऐसे अधर्मी को स्वधर्म-पालन के लिए दण्ड द्वारा ही बाध्य किया जा सकता है। अतः दण्ड की व्यवस्था का समाज में होना परमावश्यक है। मनु का कथन है कि दण्ड का सृजन स्वयं ईश्वर ने किया है।[१९] असम्यक् रूप से दण्ड का प्रयोग करने से प्राणिमात्र का नाश होता है।[२०] अतः दण्ड के सम्यक् प्रयोग हेतु ही दण्डनीति का निर्माण किया गया है। इस प्रकार मनु के अनुसार धर्म एवं दण्ड की उत्पत्ति एक साथ हुई है।

नारदस्मृति में भी मनु को ही धर्मशास्त्र का आदि प्रणेता स्वीकार किया गया है। अतः धर्मशास्त्र के साथ ही साथ दण्डनीति की भी उत्पत्ति मानी गई है। अन्य धर्मशास्त्र में भी दण्ड नीति की उत्पत्ति का यही सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।[२१]

(ग) अर्थशास्त्र में दण्डनीति की उत्पत्ति :—

आचार्य कौटिल्य के काल तक अर्थशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। स्वयं कौटिल्य ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है। परन्तु कौटिल्य का पूर्ववर्ती कोई भी अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। बृहस्पति प्रणीत अर्थशास्त्र संदिग्ध है। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थशास्त्र-साहित्य में मात्र आचार्य कौटिल्य-प्रणीत अर्थशास्त्र ही प्रामाणिक रूप से उपलब्ध है। कौटिल्य के अनुसार चार विद्याएँ हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति।[२२] उनका यह भी मत है कि आन्वीक्षिकी, त्रयी एवं वार्ता का सुचारु रूप से संचालन दण्ड पर ही निर्भर करता है। दण्ड के सम्यक्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयाग की नीति को ही दण्डनीति की संज्ञा दी गई है।[२३] आचार्य कौटिल्य ने दण्डनीति को विशेष महत्व देते हुए कहा है कि यह अप्राप्त अर्थ को प्राप्त कराने वाली, प्राप्त अर्थ की रक्षा करने वाली, रक्षित अर्थ की वृद्धि करने वाली तथा वृद्धि प्राप्त अर्थ को वृद्धों एवं पूज्यों की सेवा हेतु व्यय में समर्थ बनाने वाली विद्या है। समस्त लोक यात्रा इस दण्डनीति के ही अधीन मानी गई है।[२४] अतः स्पष्ट है कि आचार्य कौटिल्य के अनुसार दण्डनीति की उत्पत्ति अन्य तीन विद्याओं के साथ ही हुई है।

(घ) नीतिशास्त्र में दण्डनीति की उत्पत्ति :— नीतिशास्त्र साहित्य में शुक्र-नीतिशास्त्र प्रतिनिधि ग्रन्थ है। आचार्य शुक्र मानवीय कल्याण-हेतु मात्र एक ही विद्या-दण्डनीति को मान्यता प्रदान करने वाले अग्रणी विचारक है।[२५] शुक्रनीति में दण्डनीति को नीति शास्त्र कहा गया है। इसके अनुसार स्वयं ब्रह्मा ने शुक्र को नीतिशास्त्र का उपदेश दिया था।[२६] ब्रह्मा द्वारा प्रदान किए गए नीतिशास्त्र को शुक्राचार्य ने विद्वान् ऋषियों को दिया।[२७] उस समय नीतिशास्त्र के श्लोकों की संख्या एक करोड़ थी।[२८] वशिष्ठ आदि ऋषियों ने मनुष्य की अल्पायु को ध्यान में रखकर नीतिशास्त्र को संक्षिप्त कर दिया। शुक्रनीति के अनुसार इस नीति का अभ्यास करने से लोक-शासन को सुव्यवस्थित किया जा सकता है। यह नीतिशास्त्र धर्म, अर्थ एवं काम की सिद्धि का मूल कारण है। इसके द्वारा अन्ततोगत्वा मोक्ष भी सम्भव हो सकता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि दण्डनीति की उत्पत्ति आदि काल में ही हुई है तथा इसके आदि प्रणेता स्वयं भगवान ब्रह्मा ही हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सुस्पष्ट है कि प्राचीन भारत में एक स्वतन्त्र एवं पृथक् मानव ज्ञान को शाखा के रूप में राजनीतिक चिन्तन कौटिल्य के बहुत पूर्व से ही होता रहा है। इसमें मानव के सर्वोत्तम विकास हेतु लोक-शासन को सुव्यवस्थित करते हुए दण्ड के सम्यक् प्रयोग का निर्देशन होता है। मानव ज्ञान की इसी शाखा को दण्डनीति कहते हैं। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन विषयक जो भी साहित्य उपलब्ध है उसके आधार पर दण्डनीति भारतीय प्रशासन का वह विज्ञान है, जो प्रशासन के कार्य एवं उसके संगठन का अध्ययन करता है।[२९] प्राचीन भारतीय राजनीति-वैज्ञानिकों एवं आधुनिक राजनीतिक विचारकों में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि आधुनिक राजनीतिक विचारक एवं दार्शनिक शासन के संगठन को उसके कार्यों की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं। इसके विपरीत, प्राचीन भारतीय दण्डनीति विशारदों ने शासन के संगठन की अपेक्षा कार्यों पर विशेष बल दिया है। उनके चिन्तन में शासन-संगठन का विशेष स्थान नहीं था। इसका कदापि अर्थ यह नहीं हैं कि उन्होंने शासन-संगठन की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपेक्षा की थी, अपितु इस दृष्टि से भी पर्याप्त चिन्तन हुआ है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय दण्डनीति में प्रशासन के कार्य ही प्रशासन के संगठन को निर्धारित करते थे। परन्तु स्मरणीय है कि शासन के कार्य एवं संगठन का एकीकरण नहीं किया गया था, अपितु दोनों अवधारणाओं के मध्य स्पष्ट अन्तर को स्वीकार किया गया था।

इस प्रकार, संक्षेप में, "दण्डनीति शासन विज्ञान एवं कला दोनों हैं"।[३०] इसी दण्डनीति को कालान्तर में अर्थशास्त्र, राजधर्म, राजनीति, नीतिशास्त्र, नीतिसार, नयशास्त्र आदि भी कहा गया है। "अमरकोश" के "शब्दादिवर्ग" में आन्वीक्षिकी एवं दण्डनीति को क्रमशः तर्क विद्या एवं अर्थ-शास्त्र भी कहा गया है।[३१] विद्वान् लेखक यू० घोषाल ने दण्डनीति एवं अर्थशास्त्र में किंचित् अन्तर स्वीकार किया है। उसके अनुसार "दण्डनीति शासन एवं दण्ड की कला है, परन्तु जहां तक शासन कला का सम्बन्ध है, दण्डनीति का क्षेत्र अर्थशास्त्र को अपेक्षा संकुचित है।[३२] परन्तु यदि आचार्य कौटिल्य के विचारों की समीक्षा की जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है कि घोषाल का मत समीचीन नहीं है। अर्थशास्त्र की परिभाषा देते हुए कौटिल्य ने कहा है कि "मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं, मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते हैं। इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने तथा उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र ही अर्थशास्त्र कहा जाता है।[३३] दण्डनीति को कौटिल्य ने चार विद्याओं में सर्व प्रमुख विद्या स्वीकार की है। उनके अनुसार आन्वीक्षिकी, त्रयी एवं वार्ता सभी विद्याओं की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। आचार्य कौटिल्य का मत है कि जब दण्ड का प्रयोग विधिवत् परीक्षण के पश्चात् शास्त्रानुकूल (सुविज्ञातप्रणीतः) किया जाता है, तो धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति होती है,[३४] जिसे प्राचीन साहित्य में त्रिवर्ग कहते हैं। दण्ड का दुरुपयोग (दुष्प्रणीतः), जो शास्त्र-विरुद्ध होता है, त्रिवर्ग-प्राप्ति में कदापि सहायक नहीं हो सकता है। काम, क्रोध (राग-द्वेष) एवं अज्ञानता से दण्ड का प्रयोग करने पर वानप्रस्थी एवं परिव्राजक भी कुपित हो जाते हैं, गृहस्थों का कहना हो क्या है ?[३५] दण्ड के अभाव एवं अनुचित प्रयोग से मत्स्य-न्याय का प्रचार होता है।[३६] इस प्रकार कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि दण्ड द्वारा रक्षित राज्य सुखी एवं समृद्ध होता है। पुनः कौटिल्य ने दण्ड को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—तीक्ष्ण दण्ड, मृदु दण्ड एवं यथार्थ दण्ड। उनका मत है कि तीक्ष्ण दण्ड से प्राणियों में उद्वेग उत्पन्न होता है। मृदु दण्ड से लोग दण्डधारी का तिरस्कार करने लगते हैं। अतः यथार्थ दण्ड (सम्यक्) ही पूज्य होता है[३७] अतः स्पष्ट है कि दण्ड (शासन) को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है।[३८] संक्षेप में,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौटिल्य के अनुसार समाज के हितों को सर्वोत्तम रूप से संवर्धित करने वाली मानव-ज्ञान की शाखा ही दण्डनीति है।

आचार्य कौटिल्य ने अपनी दण्डनीति विषयक चर्चा में दण्डनीति की परिभाषा देने के पश्चात् उसके ग्रहण करने के लाभों का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार दण्डनीति अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है, प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है, रक्षित वस्तुओं को वृद्धि करती है तथा संवर्द्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में व्यय हेतु निर्देश भी देती है। इस प्रकार दण्डनीति पर ही संसार की समस्त "लोक-यात्रा" निर्भर है। लोक-यात्रा का अर्थ है समाज की शांति एवं उन्नति। अतः स्पष्टतः दण्डनीति का उद्देश्य सामाजिक शान्ति, सुव्यवस्था एवं विकास है। परन्तु इनकी प्राप्ति स्वयं सम्भव नहीं है, अपितु इसके लिए एक सक्रिय एवं संक्षम पथ प्रदर्शक की आवश्यकता होती है और वह एक राजा अथवा मनुष्यों का नेता हो हो सकता है।[३९] इसी प्रसंग में, समान महत्व का उल्लेख महाभारत के वाण पर्व में भी दर्शनीय है, जिसमें शासन के उद्देश्यों पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है।[४०] यही नहीं, अपितु सन् 455-56 के स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ शिलालेख से भी प्राचीन भारतीय चिन्तन में शासन के उद्देश्यों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। अतः स्पष्ट है कि दण्डनीति शासन की कला है और समाज में शान्ति एवं सुव्यवस्था की स्थापना करते हुए सर्वोत्तम एवं सर्वांगीण विकास करना ही इस शासन-कला का चरमोत्कर्ष था।[४१]

श्री काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार 'दण्डनीति कार्यपालिका का शीलाचार है'।[४२] परन्तु यू० घोषाल इस मत से सहमत नहीं है।[४३] श्री जायसवाल के मत को अन्य अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थों के प्रकाश में देखना अनिवार्य प्रतीत होता है। कामन्दक ने संसार के हित के लिए चार विद्याओं का उल्लेख किया है, जिसमें दण्डनीति का सम्बन्ध "नय" अथवा नीति-प्रणाली से स्वीकार किया है। शुक्रनीतिसार एवं कौटिल्य द्वारा इसे 'नयानयौ' भी कहा जाता है।[४४] दण्डनीति की परिभाषा देते हुए कामन्दक ने लिखा है कि अपराध का दमन दण्ड है।[४५] इस सद्गुण को धारण करने वाला राजा स्वयं दण्ड है। इस प्रकार के राजा का प्रशासन ही दण्डनीति है। नीति शब्द संस्कृत के "नी" धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है नेतृत्व अथवा पथ-प्रदर्शन (ले जाना अतः नीति शब्द का अर्थ है लोगों को सत्पथ की ओर ले जाना। शंकराचार्य ने इस पर टीका करते हुए मनु के एक श्लोक को उद्धृत किया है, जिसके अनुसार सम्पूर्ण संसार दण्ड के प्रभाव में है। आचरण की शुद्धता शायद ही कहीं हो। दण्ड के भय के फलस्वरूप ही संसार भोग करने लायक बन सका है।[४६] इस प्रकार कामन्दक का मत है कि दण्डनीति के द्वारा ही राजा स्वयं की रक्षा करता है तथा अन्य विद्याओं के विकास हेतु सुअवसर प्रदान करता है।[४७]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुक्राचार्य एवं बृहस्पति ने अपनी रचनाओं द्वारा दण्डनीति पर और भी अधिक प्रकाश डाला है। शुक्राचार्य के अनुसार नीतिशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक एवं मानवीय कल्याण है। यही धर्म, अर्थ तथा काम का स्रोत है तथा इसी के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः राजा को सदैव नीतिशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। नीतिशास्त्र का ज्ञानी राजा शत्रु-जयी बनता है तथा इसी से वह अपनी प्रजा के सुख का कारण भी बनता है।[४८] अतः स्पष्ट है कि शुक्राचार्य के अनुसार नीतिशास्त्र न तो आचार-शास्त्र पर और न तो राजतन्त्र पर लिखित ग्रन्थ है। वस्तुतः नीतिशास्त्र संश्लिष्ट समाज-विज्ञान है। इसका उद्देश्य सामाजिक कल्याण है, जो सुरक्षा न्याय एवं शान्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में प्राचीन भारतीय राज्यों के यही कार्य थे। शुक्राचार्य नीतिशास्त्र को सामाजिक सावयव के भोज्य के रूप में स्वीकार करते हैं। इसकी अवधारणाएँ मानव समाज को रक्त एवं मांस प्रदान करती हैं। नीतिच्युत राज्य की तुलना शुक्राचार्य ने छिद्र-युक्त जहाज से की है। इस प्रकार का राज्य अपने शत्रुओं की वृद्धि करता है। तथा उसकी कार्य-क्षमता बाधित हो जाती है। अतः किसी भी राज्य को नीतिशास्त्र के अनुसार ही आचरण करना श्रेयस्कर है। जो राजा नीति के अनुसार आचरण करता है वह प्रशंसित होता है और जो नीति-विरुद्ध स्वेच्छाचारी आचरण करता है वह निन्दनीय होता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि शुक्राचार्य ने व्यक्ति को, चाहे वह राजा ही क्यों न हो, नीति का अधीनस्थ स्वीकार किया है।[४९]

आचार्य बृहस्पति ने भी मात्र एक विद्या-दण्डनीति को ही स्वीकार किया है।[५०] नीति की व्याख्या करते हुए उन्होंने इसकी तुलना नदी-तोर के वृक्ष से की है।[५१] जैसे नदी तट का वृक्ष अस्थिर होता है और कभी भी उसका पतन हो सकता है, वही दशा नीति की भी होती है। अतः नीति का कदापि परित्याग नहीं करना चाहिये तथा सदैव उसकी सुरक्षा एवं देख-रेख करते रहना चाहिए। बृहस्पति के अनुसार जो राजा दण्डनीति का परित्याग करता है, वह उसी प्रकार विपत्ति-ग्रस्त हो जाता है, जिस प्रकार अपनी अज्ञानता के कारण पतंगा दीप-शिखा से जल जाता है।[५२] नीति से ही धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति होती है।[५३] बृहस्पति का कथन है कि "भारत भूमि पर दण्डनीति विलक्षण है, अतः यहां चारों वर्णों द्वारा इसका अध्ययन किया जाना अनिवार्य है"।[५४] दण्डनीति के कारण ही सूर्यदेव राजा हैं तथा वायु एवं अन्य देव सृष्टि हैं।[५५] कृतयुग में विवेकवान पुरुषों द्वारा, त्रेतायुग में कर्म में विश्वास रखने वाले पुरुषों, द्वापर में तन्त्र के अनुयायियों तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलियुग के प्रथम चरण में सामान्य पुरुषों द्वारा दण्डनीति का अध्ययन किया जाता रहा है। इसके पश्चात् लोगों में दोष तथा अपवित्रता आ गई, अतः लोगों ने नीति के अनुसरण का परित्याग कर दिया।[५६]

दण्डनीति के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रों में भी लगभग उपर्युक्त विचारों की ही अभिव्यक्ति है। मनु ने कहा है कि दण्ड ही सम्पूर्ण प्रजा पर शासन करता है। दण्ड सबकी रक्षा करता है तथा सबके सो जाने पर दण्ड ही जागता रहता है। दण्ड-भय से ही लोग चोरी नहीं करते हैं एवं विद्वान् लोग दण्ड को ही धर्म मानते हैं।[५७] इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य को राज्य-रूप में रहने के लिए दण्ड अनिवार्य है। यह लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। दूसरे शब्दों में, धर्म-प्रचार का साधन दण्ड ही है। मनु ने तो यहां तक कहा है कि दण्ड देवता के रूप में अपनी काली आकृति एव रक्तिम नेत्रों से पापियों का विनाश करता है तथा निर्दोष लोगों को शान्ति एवं सुरक्षा प्रदान करता है। जिस राज्य में दण्ड-देवता भ्रमण करते हैं, प्रजा कष्ट की अनुभूति नहीं करती है तथा राजा पूर्णतः अपनी स्थिति का सुख भोगता है।[५८]

महाभारत में दण्ड शब्द की विशद एवं व्यापक व्याख्या प्राप्त होती है।[५९] इसके अनुसार दण्ड की शक्ति एवं भयंकरता के कारण ही देवगण, असुर, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग तथा उरग अपने-अपने कर्तव्यों का अनुपालन निष्ठापूर्वक करते हैं। कुल्लूक भट्ट ने मानव धर्मशास्त्र के अध्याय ७ के श्लोक २३ की[६०] टीका करते हुए श्रुति का उद्धरण दिया है। इसके अनुसार दण्ड-भय से अग्नि जलाती है, सूर्य प्रकाश देता है तथा इन्द्र, वायु एवं मृत्यु (पाँचों देवता) अपने धर्म का पालन करते हैं।[६१]

अतः स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में इस सत्य का ज्ञान था कि दण्ड के अभाव में न समाज होगा और न राज्य। दूसरे शब्दों में, समाज एवं राज्य का अस्तित्व दण्ड के ही कारण है। इस प्रकार दण्ड ही प्रत्येक का पथ-प्रदर्शक है। अन्ततोगत्वा, संसार के रचयिता ब्रह्मा द्वारा रचित दण्डनीति के सारतत्व को पुनः संक्षिप्त करते हुए भीष्म की यह अभ्युक्ति है कि दण्ड ही दण्डनीति का नियामक एवं निर्देशक है। इस दण्डनीति की रचना विश्व-कल्याण तथा त्रिवर्ग की स्थापना हेतु हुई है और दण्ड ही दमन एवं सद्भावना द्वारा विश्व की रक्षा करता है।[६२]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में दण्डनीति मानव-विज्ञान की वह स्वतन्त्र शाखा थी, जो शासन का विज्ञान एवं कला दोनों थी। इसका चरम लक्ष्य दण्ड के सम्यक् प्रयोग द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस लोक में त्रिवर्ग की प्राप्ति करते हुए परलोक-हेतु मोक्ष का साधन उपलब्ध करना था। संक्षेप में, समाज में शान्ति, सुव्यवस्था एवं सुशासन की स्थापना कर सर्वजनहिताय एवं सर्वजनसुखाय की कामना ही दण्ड-नीति का विषय वस्तु थी।

दण्डनीति एवं त्रिवर्ग का सम्बन्ध :–

दण्डनीति एवं त्रिवर्ग के पारस्परिक संबंधों पर विद्वानों नें विशेष ध्यान अब तक नहीं दिया है। वास्तव में दण्डनीति की अवधारणा को तब तक पूर्णता प्राप्त नहीं होती है जब तक कि त्रिवर्ग से इसके सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं किया जाय। दण्डनीति-विज्ञान एवं त्रिवर्ग का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध इसी से स्पष्ट हो जाता है कि बृहस्पति धर्मसूत्र में दण्डनीति को त्रिवर्ग विद्या कहा गया है। दूसरे शब्दों में, दण्ड-नीति जीवन के तीनों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ एवं काम) के विज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया है।[६३] सम्पूर्ण राजधर्म का प्रमुख कार्य इन पुरुषार्थों की प्राप्ति-हेतु प्रयत्न करना बताया गया है।[६४]

त्रिवर्ग में धर्म, अर्थ एवं काम आते हैं, जिनमें बृहस्पति नीतिसार के अनुसार धर्म सर्वाधिक महत्व का है।[६५] त्रिवर्ग की प्राप्ति के पश्चात् ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। धर्म एक ऐसा शब्द है, जिसका सदैव विभिन्न प्रकार से आह्वान किया गया तथा अनेक प्रकार से इसका उपदेश दिया गया है। धर्म एक अनुशासन पर आधारित है। इस धर्म में ही व्यक्ति एवं समाज, धर्म एवं दर्शन तथा इहलोक एवं परलोक में मनुष्य एवं परमात्मा का मिलन होता है। इस प्रकार धर्म समाज का संयोजक, (सिमेंट) प्रेम का बंधन तथा परमात्मा की प्राप्ति का साधन है।[६६] अतः धर्म-रूपी पौधे का परिपोषण सतर्कता से करना चाहिए, क्योंकि इसी से कार्यों का उद्भव होता है।

महाभारत में स्पष्टतः कहा गया है कि जो राजा अर्थ एवं काम से वंचित रहता है, परन्तु धर्म-युक्त होता है, दीर्घकाल तक राज्य करता है।[६७] दण्डनीति अश्व की लगाम अथवा हाथी के अंकुश के समान है, जो समाज के चारों वर्णों को धर्मानुकूल आचरण करते रहने के लिए बाध्य करती है। राजा को युग निर्माता स्वीकार करते हुए कहा गया है कि राजा अपने सत्कर्मों से कलियुग को कृतयुग बना सकता है। भीष्म ने कहा है कि राजा ही युग है।[६८] सामयिक एवं निष्पक्ष न्याय (दण्ड) हो धर्म है तथा अर्थ एवं धर्म का मूल है। धर्म का प्रतिफल देवत्व एवं स्वर्ग-प्राप्ति, अर्थ का भोग-प्राप्ति, काम का सन्तुष्टि की प्राप्ति है तथा मोक्ष इन तीनों के बन्धनों से मुक्ति की प्राप्ति है। इस प्रकार महाभारतकार का मत है कि जीवन में त्रिवर्ग की प्राप्ति में ऐसा स्वस्थ प्रतिबन्ध होना चाहिए कि अन्ततोगत्वा मोक्ष की प्राप्ति सम्भव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो सके।[६९] दूसरे शब्दों में त्रिवर्ग की प्राप्ति एवं आध्यात्मिक स्तर में समुचित समन्वय एवं ऐक्य का होना नितान्त आवश्यक है। जो राजा धर्म एवं अर्थ का परित्याग कर मात्र काम की ही प्राप्ति में लीन रहता है, वह विनाश को प्राप्त होता है तथा उसकी ज्ञान-शक्ति समाप्त हो जाती है। ऐसे राजा के राज्य में दुष्ट व्यक्तियों की प्रचुरता होती है तथा राज्य अनेक प्रकार से विपत्तिग्रस्त हो जाता है। अतः राजा को अपने राज्य में पूर्वजों द्वारा अनुसरित धर्मानुकूल आचरण ही करना चाहिए। यदि सूक्ष्म रूप से दृष्टि डाली जाय, तो ज्ञात होगा कि महाभारत के प्रत्येक पर्व में त्रिवर्ग के सम्बन्ध में कुछ न कुछ वर्णित है। सभापर्व के पंचम अध्याय में नारद मुनि ने युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देते हुए धर्म, अर्थ एवं काम को परस्पर संयुक्त माना है (धर्मकामार्थसयुक्त[७०]) महात्मा विदुर के अनुसार राज्य की भाँति ही त्रिवर्ग का स्रोत धर्म है।[७१] महाभारत के शांति पर्व के एक प्रसंग में अर्थ के महत्व पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। महाभारत-युद्ध की समाप्ति पर शोक-संतप्त महाराज युधिष्ठिर जब राज्य का परित्याग कर वन जाना चाहते हैं, तो अर्जुन ने उन्हें समझाते हुए कहा है कि अर्थ ही धर्म एवं काम का साधन है तथा अन्ततोगत्वा इसी के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अर्थ के अभाव में जीवन जीवित रहने योग्य नहीं होता है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में तालाब सूखकर व्यर्थ हो जाता है, उसी प्रकार अर्थ रूपी जल के अभाव के कारण संसार में मनुष्य सर्वथा अयोग्य बन जाता है। समाज का विकास एवं कल्याण अर्थ पर ही निर्भर है।

मनु ने लिखा है कि कतिपय विद्वानों के अनुसार धर्म एवं अर्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। कतिपय अन्य के अनुसार अर्थ एवं काम महत्वपूर्ण है तथा कुछ अन्य के अनुसार मात्र अर्थ ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि यही धर्म एवं काम का एक मात्र साधन है।[७२] परन्तु मनु का मत है कि तीनों (धर्म, अर्थ एवं काम) अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं तथा एक दूसरे के पूरक हैं। धर्म की अवज्ञा से विपत्ति आती है, अतः अनेक कठिनाइयों में रहते हुए भी धर्म विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए।[७३] साथ ही साथ अर्थ एवं काम के उन साधनों का, जो धर्म विरुद्ध हो, परित्याग कर देना चाहिए।[७४] इस प्रकार मनु ने कहा है कि राजा को दिन के मध्य अथवा रात्रि में अपने मंत्रियों एवं पुरोहित से परामर्श कर धर्म, अर्थ एवं काम के अनुसार ही न्याय प्रशासन के संचालन का प्रयत्न करना चाहिए।[७५]

आचार्य कौटिल्य ने त्रिवर्ग को जीवन के तीन उद्देश्य स्वीकार करते हुए कहा है कि इनमें अन्योन्याश्रित संबन्ध हैं।[७६] अतः जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति-हेतु धर्म, अर्थ एवं काम का समान महत्व है। यदि कोई व्यक्ति इनमें से मात्र किसी एक पर ही केन्द्रित होकर अन्य दोनों की उपेक्षा करता है, तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे जीवन-लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं होगी। कौटिल्य का मत है कि काम की प्राप्ति इस प्रकार करनी चाहिए कि धर्म एवं अर्थ-प्राप्ति के मार्ग में बाधा न आ सके। अन्त में कौटिल्य ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि अर्थ को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया जाना चाहिए, क्योंकि धर्म तथा काम अर्थ से ही उत्पन्न होते हैं। वात्स्यायन का भी यही मत है कि राजा के लिए अर्थ का धर्म एवं काम की अपेक्षा अधिक महत्व है, क्योंकि अर्थ द्वारा ही सामाजिक व्यवस्था स्थापित की जाती है तथा देश के शासन का सुचारु रूप से संचालन होता है।[७७] चाणक्य राजनीतिशास्त्र में भी कहा गया है कि अर्थ से धर्म होता है, अर्थ से लोग समृद्ध होते हैं, अर्थाभाव से काम का उपभोग सम्भव नहीं है तथा अर्थ ही त्रिवर्ग का एक मात्र स्रोत है।[७८]

शुक्राचार्य के अनुसार नीतिशास्त्र त्रिवर्ग का मूल है, जो मोक्ष प्राप्ति में सहायक है।[७९] उन्होंने नहुष एव वेन राजा का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि नीति-विरुद्ध आचरण के कारण वे नर्क-गामी बने। इस प्रकार शुक्राचार्य त्रिवर्ग में धर्म को प्रधान मानते हैं। कामन्दक का मत है कि दण्ड के सम्यक् प्रयोग से ही त्रिवर्ग की वास्तविक रूप में प्राप्ति की जा सकती है।[८०] कामन्दक के अनुसार मानव-जीवन के तीनों पुरुषार्थों का क्रमशः विकास होता है और इस प्रक्रिया में क्रमशः उनका महत्व कम होता रहता है।[८१] कामन्दक की टीका करते हुए शंकराचार्य ने लिखा है कि धर्म अनेक जन्म-जन्मान्तरों में संकलित एवं परिपोषित प्रयास का फल होता है तथा अर्थ का उदय इसी से होता है।[८२] अतः अर्थ के अभाव में कोई भी सुख सम्भव नहीं है।[८३] समुचित काम के अभाव में प्रसन्नता की प्राप्ति नहीं हो सकती है। द्वेष एवं घृणा काम के विरुद्ध है।[८४] निष्कर्षतः, कामन्दक ने यह स्पष्ट किया है कि त्रिवर्ग में किसी एक की अति हानिकर है। धर्म, अर्थ एवं काम के समान महत्व को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा है कि धर्म का अतिक्रमण अर्थ एवं काम को नष्ट कर देता है और अन्ततोगत्वा धर्म भी समाप्त हो जाता है।[८५] इसीलिए कामन्दक ने अत्यधिक दान एवं तप की संस्तुति नहीं की है। इसी प्रकार अर्थ के अति को भी वर्जित किया गया है।[८६] काम में अत्यधिक लिप्सा तथा अर्थ का अनुचित प्रयोग जीवन के वास्तविक उद्देश्य को ही समाप्त कर देगा।

एक विचित्र प्राचीन भारतीय मान्यता यह भी रही है कि धर्म-पत्नी को त्रिवर्ग के फल-प्राप्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। चाणक्य नीतिशास्त्र में कहा गया है कि 'भार्या मूलं त्रिवर्गस्य" अर्थात् धर्म-पत्नी त्रिवर्ग-प्राप्ति का मूल कारण है। लगभग इसी विचार की अभिव्यक्ति महर्षि वाल्मीकि ने वन-गमन की संध्या पर मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कराई है।[८७] अतः स्पष्ट है कि एक अनुकूल एवं मनोज्ञ पत्नी पुत्र-रत्न प्रदान कर धर्म, अर्थ एवं काम की वृद्धि करती है। गोविन्द राज ने अपने विशेष एवं उत्तम रूप से टीका करते हुए त्रिवर्ग में धर्म को प्राथमिक महत्व का स्वीकार किया है। उनका कथन है—"धर्मो हि धर्महेतुः अर्थहेतुः काममम्यमानस्रक्-चन्दनवनितादि हेतुश्च"। इस प्रकार त्रिवर्ग की तुलना पत्नी से ही की गई है, क्योंकि उसमें अनुकूलता, मनोज्ञता, मित्रता तथा पुत्र-रत्न प्रदान करने के गुण हैं।[८८] पुनः चाणक्य-राजनीतिशास्त्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति त्रिवर्ग के समुचित अनुपालन के बिना जीवित है, वह जीवित रहते हुए भी मृत व्यक्ति के समान है। वह उसी प्रकार सांस लेता है जैसे लोहार की भट्टी।[८९]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय चिन्तन में त्रिवर्ग के सम्बन्ध में दो विचारधाराओं का प्रचलन रहा है—एक धर्म को सर्वप्रधान स्वीकार करती है तथा दूसरी अर्थ को प्रधान स्वीकार करते हुए भी धर्म-विरोधी नहीं है। परन्तु निष्कर्षतः यही स्पष्ट होता है कि धर्म अर्थ एवं काम का परस्पर अन्यान्याश्रित संबंध है। मात्र किसी एक पर ही केन्द्रित होने से जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में "चतुर्वर्ग फलं ज्ञानं" को स्वीकार किया है और त्रिवर्ग के अतिरिक्त यह चौथा वर्ग मोक्ष है। 'अमरकोष' में भी कहा गया है-जीवन-रूपी नौका को संसार-रूपी समुद्र में सफल रूप से संचालित करने के लिए त्रिवर्ग को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता है।[९०] त्रिवर्ग के निर्बाध वृद्धि-हेतु प्रभावशाली एवं सम्यक् दण्ड व्यवस्था नितान्त अनिवार्य है। अतः राज्य को (दण्डनीति को) ऐसी नीति का अनुसरण करना चाहिए कि समुचित रूप से त्रिवग की प्राप्ति होती रहे तथा राज्य में सुख एवं समृद्धि की वृद्धि होती रहे। संक्षेप में, त्रिवर्ग की समुचित प्राप्ति दण्डनीति के सम्यक् संचालन पर ही निर्भर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संदर्भ :—

1. "The oriental Aryans never freed their politics from theological and metaphysical environment in which it is embedded today" prof. W. A. Dunning; A History of Political theories, Ancient and Mediaeval : Introduction p. XIX

2. History of Ancient Sanskrit Literature pp. 30-31

3. "From the beginning of India's history religious institutions controlled the character and the development of its people to an extent unknown elsewhere........ there is no provision in such a scheme for the interest of the state and the development of the race." The Religion of the Veda, pp 4-5

४. आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेत् विद्याः ।। वार्ता १, अ० १, अधि० १, अर्थशास्त्र ।

५. सांख्ययोगौ लोकायतं चेत्यान्वीक्षिकी । धर्माधर्मौ त्रयामर्थानर्थौ वार्तायंनयापनयौ दण्डनीत्याम् । वार्ता ६, अ० १, अधि० १, अर्थशास्त्र ।

६. सम आसपेक्ट्स ऑफ एन्सिएण्ट हिन्दू पॉलिटी, डी० आर० भण्डारकर; पृ० ५

७. वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः । संवरणमात्र हि त्रयी लोकयात्राविद इति वार्ता ३, अ० १, अधि० १, अर्थशास्त्र ।

८. दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसा । तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति । वार्ता ४, अ० १, अधि० १, अर्थशास्त्र ।

९. हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स, वी० आर० रामचन्द्र दिक्षीतार; पृ० २

१०. भारतीय राजशास्त्र प्रणेता; डॉ० श्यामलाल पाण्डेय; पृ० २

११. सम आसपेक्ट्स ऑफ एन्सिएण्ट हिन्दू पॉलिटी, डी० आर० भाण्डारकर; पृ०५-६

१२. श्लोक १४, १५ अ० ५९, शान्तिपर्व, महाभारत ।

१३. श्लोक २९, अ० ५९, शान्तिपर्व, महाभारत ।

१४. श्लोक ७८, अ० ५९ शान्तिपर्व, महाभारत ।

१५. श्लोक ७९, अ० ५९, शान्तिपर्व महाभारत ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६. सम आसपेक्ट्स आॅफ एन्सिएण्ट हिन्दू पाॅलिटी; डी० आर० भाण्डारकर; पृ-६

१७. भारतीय राजशास्त्र-प्रणेता, डाॅ० श्यामलाल पाण्डेय; पृ० ४

१८. दुर्लभो हि शुचिर्नर ।।श्लोक २२, अ० ७; मानवधर्मशास्त्र ।

१९. तस्यार्थे सर्वभूतानाम् गोप्तारं धर्मातमजं ।
ब्रह्मतेजोमय दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ।। श्लोक १४, अ० ७; मानवधर्मशास्त्र ।

२०. समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ।। श्लोक १९, अ० ७; मानवधर्मशास्त्र ।

२१. भारतीय राजशास्त्र प्रणेता, डाॅ० श्यामलाल पाण्डेय; पृ० ४

२२. वार्ता ७, अ० ४, अधि० १; अर्थशास्त्र ।

२३. वार्ता ५, अ० ४ अधि० १; अर्थशास्त्र ।

२४. अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षणी, रक्षितविवर्धनी, बृद्धस्यतिर्थेषु
प्रतिपादिनी च तस्यामायत्ता लोकयात्रा । वार्ता ५ अ० ४, अधि० १; अर्थशास्त्र ।

२५. श्लोक ३, अ. १; शुक्रनीति ।

२६. वार्ता ६, अ. २; अधि. १, अर्थशास्त्र ।

२७. श्लोक ३, अ. १; शुक्रनीति ।

२८. श्लोक २, अ. १; शुक्रनीति ।

२९. हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स, वी. आर. रामचन्द्र दीक्षितार; पृ० १ ।

३०. हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स, वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार; पृ० २ ।

३१. आन्वीक्षिकी दण्डनीतिस्तर्क विद्यार्थस्त्रयोः (१, ९, ९,) दीक्षितार द्वारा उद्धृत ।

३२. हिन्दू पोलिटिकल थियोरीज, यू० घोषाल; पृ० ७८ ।

३३. मनुष्याणां वृत्ति. अर्थः, मनुष्यवती भूमिरप्यर्थं, तस्याःपृथिव्यालाभ-पालनायोपायः
शास्त्रं अर्थशास्त्रमिति । १, १, १८ अर्थशास्त्र; पृ० ९३७ ।

३४. सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्ड प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति । वार्ता १४, अ० ४, अधि० १,
अर्थशास्त्र ।

३५. दुष्प्रणीतःकामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थ परिव्राजकानपि कोपयति किमङ्ग-
पुनर्गृहस्थान् । वार्ता १५, अ० ४, अधि० १, अर्थशास्त्र ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३६. अप्रणीतो हि मात्स्यन्यामुद्भावयति । वार्ता १६, अ० ४, अधि० १ अर्थशास्त्र ।

३७. तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः । मृदुदण्डःपरिभूयते ॥
यथार्थदण्ड पूज्य ॥ वार्ता ११-१३, अ, ४, अधि० १, अर्थशास्त्र ।

३८. आन्वीक्षिकी त्रयी वार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः । तस्य नीतिर्दण्डनीतिः ॥
१, ३, १, अर्थशास्त्र, पृ० १५ ।

३९. हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स, वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार, पृ० ४ ।

४०. अलब्धलाभाय च लब्धवृद्धये, यथार्हतीर्थे प्रतिपादनाय च ।
यशस्विनं वेदविदं विपश्चितं, बहुश्रुतं ब्रह्मणेव वासयेत् ॥ (महाभारत, वाणपर्व; २६,१६) ।

४१. सर्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत्त , न्यायार्जनेऽर्थस्य च कः समर्थ स्यात् । अर्जितस्यापि अथ रक्षणे च । गोपायितस्याऽपि (च) वृद्धि हेतो वृद्धस्यपात्रप्रतिपादनाय ॥
(C I1,7 and 8; F.G I., No. 14. p. VIII)

४२. Calcutta Weekly Notes, VOL. XV, p 275.

४३. हिन्दू पोलिटिकल थियोरीज, पृ० ७८

४४. शुक्रनीतिसार, १.१५३ (शंकराचार्य ने इस प्राविधिक उक्ति पर टिप्पणी की है । उनके अनुमार "किसी उच्चतर शक्ति से संधि द्वारा योगक्षेम की स्थापना करना नीति है और इसके विपरीत आचरण अनीति है ।"
ज्यायसा सधिः योगक्षेम निष्पादकत्वात् नयः ।
विग्रहस्तु अनिष्पादकत्वादितरः अपनय इत्यर्थः ॥ कामन्दक नीतिसार, पृ० २८
परन्तु स्मरणीय है कि यह दण्डनीति का मात्र एक पक्ष है ।

वाल्मीकि रामायण में नीति शब्द में निहित अर्थ की महत्ता को उत्तम रूप से स्पष्ट करते हुए युद्ध-सध्या में कुम्भकर्ण ने अपने भाई रावण से कहा है कि जो राज प्रशासन में नीति के अनुसार आचरण करता है, उसे कभी पश्चात्ताप नहीं होता है । जो नीति विरुद्ध आचरण करता है, वह सदैव पश्चात्ताप करता है । कारणीय कार्यों को स्थगित करने वाला तथा स्थगित करने योग्य कार्यों को करने वाला राजा नयानयौ से अनभिज्ञ माना जाता है :—
न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन । न स संतप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ।
अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च । क्रियमाणानि दुष्यन्ति प्रयतेष्विव ॥
तत्पश्चात पूर्वंकार्याणि कर्योण्यभिचिकीर्षंति । पूर्वं चापर कर्माणि न सवेद नयानयौ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४५. दमो दण्ड इति प्रोक्तस्तात्स्यात दण्डो महीपतिः ।
तस्य नीतिर्दण्डनीतिः नयनान्नीति रुच्यते ।।) २, १५,-युद्ध काण्ड,
XII, 31-33 cf Sukrd, i, 157.

४६. सर्वोदण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः
दण्डस्य हि भयात्कृत्स्न जगत भोगाय कल्पते ।। श्लोक २२, अ० ७ मानवधर्मशास्त्र।

४७. तयाऽऽत्यानं च शेषाश्च विद्याः पायान्महीपतिः । कामन्दक नीतिसार, १, १६।

४८. सर्वोपजीवकं लोकस्थितिकृन्नीतिशास्त्रकं ।
धर्मार्थकाममूलं हि स्मृतं मोक्षप्रदं यतः ।। (शुक्रनीतिसार, १, ५,)
अतस्सदा नीतिशास्त्रमभ्यसेद्यत्नतो यतः ।
यद्विज्ञानान्नृपाद्याश्च शत्रुजिल्लोकरंजकाः ।। (शुक्रनीतिसार, १, ६ तथा १२)

४९. हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स, वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार, पृ० ८

५०. बृहस्पति-धर्मसूत्र, अ० १, ३, दीक्षितार द्वारा उद्धृत ।

५१. नीतिःकिल नदीतीरतरुवत् । (१, १०२) तन्नोहातव्यम् । (१, १०३)

५२. बृहस्पति धर्मसूत्र, अ० १.११२

५३. ,, ,, अ० २, ४३

५४. ,, ,, अ० ३, ७४-७५

५५. ,, ,, अ० ३, ७६-७८

५६. ,, ,, अ० ३, १४१-१४८

५७. दण्डःशास्ति प्रजा सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डःसुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ।। श्लोक १८, अ० ७, मानवधर्मशास्त्र ।

५८. श्लोक २५, अ० ७, मानवधर्मशास्त्र ।

५९. महाभारत, शांतिपर्व, राजधर्म, अ० CXXI, श्लोक १४-२२

६०. देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः ।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनेव निपीडिताः ।। श्लोक २३, अ० ७, मानवधर्मशास्त्र ।

६१. भयादस्याग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ।।

६२. महाभारत, शान्तिपर्व, राजधर्म, viii, श्लोक ७९-८२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६३. नीते.फलं धर्मार्थकामावाप्ति: । बृहस्पति सूत्र, ii, ४३

६४. धर्म: प्रधानं पुरुषार्थात् । अर्थशास्त्र, ii, ५५

६५. धर्मप्रधानं पुरुषार्थानां । बृहस्पतिसूत्र, ii, ५५, C.P. कामसूत्र, अ० १, ii, १४.११

६६. हिन्दूसंस्कृति, के०एम०आर० शास्त्री, पृ० ६३

६७. सेवाधर्मस्य कर्तव्या सततं भूरिवत्सरै: । महाभारत, शांतिपर्व । xviii, ८०
पुरुषैर्नरशार्दूलतन्मूला: सर्वथा क्रिया: ।
अर्थकामविहीनोऽपि चिरं पाल्यते महीं । Ibid. ८७

६८. महाभारत, शांतिपर्व, १ xix, २५-२८
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्च भरतर्षभ: ।
राजवृत्तानि सर्वाणि राजैव युगमुच्यते ॥

६९. ct. Kama Sutra, BKI, Chapt. ii

७०. महाभारत, सभापर्व, v. 20. ff., ct. Ayodhya Kanda, Chapt. c. 63-64 vide Govindaraja's Commentary.

७१. महाभारत, बाणपर्व, iv ७.

७२. धर्मार्थावुच्यते श्रेय:कामार्थो धर्म एव च ।
अर्थ एवेहवा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थिति: ।
श्लोक २२४, अ० २,मानवधर्मशास्त्र ।

७३. नसीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेश्यते ।
अधार्मिकानां पापानां आशु पश्यन् विपर्ययंम् ॥ श्लोक १७ १, अ०४, मानवधर्मशास्त्र

७४. मानवधर्मशास्त्र, अ० ४, श्लोक १७६

७५. मानवधर्मशास्त्र, अ० ७, श्लोक १५१ ।

७६. समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम् । अर्थशास्त्र, १.७ ।

७७ वात्स्यायन कामसूत्र, १, २, १५-१६ ।

७८. धनादिधर्म: क्रियते धनेन, धनेन धन्या धनिनो भवन्ति ।
धनं विना काम कथैव नास्ति, त्रिवर्गमूलं धनमेव नान्यत् । (iv. 21)

७९. शुक्रनीतिसार, अ० १, श्लोक ५ ।

८०. कामन्दकनीतिसार, अ० ii, श्लोक ३८ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८१. धर्मादर्थोऽर्थतः कामःकामात्सुखफलोदयः ।
आत्मान हन्ति तौ हत्वा युक्तया यो न निषेवते ।। कामन्दक नीतिसार, अ० १, ५१

८२. जन्मान्तरोपार्जित धर्ममूलत्वात् तदुपबृंहणीयत्वाञ्जार्थस्य । कामन्दक नीतिसार के अ० १, के श्लोक ५१ की शंकराचार्य द्वारा की गई टीका

८३. निरर्थस्य विषयोपभोगा संभवात्........... i Ibid.

८४. यस्तु दाण्डवयस्येव दुखफलोदयः सद्वेष एव न कामः (Ibid)

८५. अति दानेन धर्मोऽर्थहत्वा कामं धर्मान्तर च हन्ति ।
तपश्च्यात्यन्तसेवितं कामं हत्वा शरीरक्षयात् धर्मार्थो हन्ति ।।
कामन्दक नीतिसार, अ० १, श्लोक ५१

८६. तथार्थः तादात्विकोऽप्यपदीयमान् ऐलस्थेवधर्मकामौहत्वा अर्थमपि हन्ति ।
काम पुनःअत्यासेव्यमानः स्त्रीमृगयाद्यूतपानैः चतुर्भिव्यसनै.
धर्मार्थौ हत्वा शरीरभयात् आत्मानमपि हन्ति (Ibid)

८७. धर्मार्थकामाःकिल तात लोके समीक्षिता धर्मफलोदयेषु ।
ते तत्र सर्वे स्मरसंशयं मे भार्येव वश्याभिमता सुपुत्रा ।।
यस्मिंस्तु सर्वे स्यु असंनिविष्टा धर्मो यतः स्यात्तदुपक्रमेत ।
द्वेष्यो भवत्यर्थ परोहि लोके कामात्मता खलु अपि न प्रशम्ता ।।
अयोध्याकाण्ड, xxi, ५८ तथा ५९

८८. लोक प्रसिद्धा.त्रयःपुरुषार्थाः,. तेषु सर्वमूलत्वादितरयोः
सापायवाज्ज धर्म एवाश्रयणीय इति स्थापितं भवति ।। अयोध्याकाण्ड, xxi, ६५

८९. यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनानि यान्ति दोहिनः ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ।। (viii, 37)

९०. त्रिवर्गो धर्मकामार्थः चतुर्वर्गः समोक्षकैः
उन्मूलयितुमीशोऽहं त्रिवर्गमित्रदुर्नयः । (Act. V. 22)

प्रो० नागेन्द्रनाथ पाण्डेय
राजनीति विज्ञान विभाग,
प्राचार्य, गनपत सहाय स्नातकोत्तर-
महाविद्यालय, सुलतानपुर (उ० प्र०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविमल्ल हरिवल्लभ भट्ट कृत

कान्तावक्षोज-शतोक्ति का समालोचनात्मक अध्ययन

प्रायः समस्त साहित्य-शास्त्रियों ने चाहे वे ध्वनिवादी हों या रसवादी श्रृंगार को रसराज मानते हैं। यों तो काव्यप्रकाशकार ने श्रृंगार को एक ही माना है, परन्तु उसके अवान्तर अनेक भेद होते हैं। आलम्बन, उद्दीपन आदि विभाव, चेष्टामूलक अनुभाव और संचारीभावों के कारण इसका वैविध्य स्पष्ट है। इनमें प्रत्येक का उदाहरण सरलता से प्राप्त हो सकता है। यों श्रृंगार को मूल रूप से दो भागों में विभक्त किया जाता है, संयोग और वियोग। इनमें भी कवि लोगों की रुचि संयोग की अपेक्षा वियोग श्रृंगार के विवेचन में अधिक रही है। समीक्षकों की एक दृष्टि यह है कि वियोग श्रृंगार मनोग्राही होता है। इसकी साधारणीकरण प्रक्रिया सरल होती है और यह अश्लील नहीं माना जाता जबकि संयोग या संभोग शब्द के उच्चारण से कुछ लोगों को ऐसी अनुभूति होती है मानो उसका प्रयोग ही औचित्यपूर्ण न हो। कविमल्ल हरिवल्लभजी भट्ट अपने समय के कवियों में इस दृष्टि से सहृदय व्यक्ति रहे हैं उनके काव्यों के मंथन से यह तथ्यामृत प्रकट होता है कि वे अपने श्रृंगार रस संबंधी विचारों को,अनुभूतियों को काव्यकृति के माध्यम से प्रस्तुत करना अधिक श्रेयस्कर समझते थे। उनकी रचनाओं में 'श्रृंगारलहर्यः', 'कान्तावक्षोजशतोक्तयः, तथा कुछ मुक्तक पद्य उनकी इस वृत्ति को स्पष्टतः प्रमाणित करते हैं। सामान्यतया यह देखा गया है कि लोक में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण होता है और फिर पुरुष के लिये सम्भवतः स्त्रियों की सृष्टि इस आकर्षण के कारण ही की गई है। स्त्रियों को सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति माना जाता है। इसीलिये रससिद्ध कवीश्वरों ने जिनमें महाकवि कालिदास का नाम सर्वतः प्रमुख है, नारी के सौन्दर्य चित्रण में अनुपम चित्र प्रस्तुत कर अपनी रससिद्धता को प्रतिभासित कर दिया है। मेघदूत काव्य में यक्षिणी का चित्र दर्शनीय है :—

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रेणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्यां,
या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन अंगों से सौन्दर्यानुभूति होती है उन अंगों में नेत्रों के साथ-साथ स्तनों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। काव्यप्रकाशकार ने गुणीभूत व्यंग्य के प्रसंग में लिखा है कि "कामिनीकुचःकलशवत् गूढं चमत्करोति अगूढं तु स्फुटतया वाच्यमानमिति गुणीभूतमेव" अर्थात् कामिनी के कुचकलशों के समान जब वे प्रच्छन्न रहते हैं चमत्कृति उत्पन्न करते हैं अर्थात् कामिनी कुचकलशों का निबन्धन ही चमत्कार का जनक होता है। कालान्तर में यह कामिनी कुचकलश न्याय के रूप में प्रचलित हो गया अर्थात् सहृदयों के द्वारा ही वेद्य व्यंग्य ध्वनि कहलाने लगा क्योंकि वह व्यंग्य निगूढ होता है। इस संबंध में एक पद्य साहित्य शास्त्र में प्रसिद्ध है :—

"नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशो,
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः ।।
अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चित्
सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः ।।"

इससे स्पष्ट है कि व्यंग्य महाराष्ट्र देश की स्त्रियों के स्तनों के समान प्रशंसनीय माना गया है जो न अत्यन्त प्रच्छन्न होता है और न अत्यन्त स्पष्ट। इस सब विवेचन का यहाँ यही आशय है कि साहित्य-शास्त्रियों ने स्तनों के भी अनेक रूप, अनेक भेद पहचाने हैं, जिनमें कुछ अत्यन्त स्पष्टाकृति हैं और कुछ अत्यन्त निगूढ। कुछ ऐसे हैं जो सौन्दर्याधायक हैं। कविमल्लजी ने अपनी मित्रगोष्ठी में शृंगारचर्चा के अन्तर्गत जब यह सुना कि शृंगार के अन्य काव्य तो हैं परन्तु कामिनी के कुचकलशों पर अभी तक किसी ने कुछ भी नहीं लिखा है तो उन्होंने तुरन्त यह कार्य करने का निश्चय कर लिया और कुछ ही दिनों में "कान्तावक्षोजशतोक्तयः" नाम से यह काव्य प्रकाशित कर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। इसका उन्होंने उल्लेख इन शब्दों में प्रारम्भ की पाद टिप्पणी में किया है :—

"जातुचित्प्रसंगे स्तनशतकं नास्ति इति नानाकृत्वः श्री नारायणभट्टै-रुक्तमतस्तदाज्ञानुरोधेनैषानवीनतमाकृतिर्मदीया इति ज्ञेयम्।"

इनका यह कथन है कि ऐसा काव्य इससे पूर्व न इन्होंने देखा और न सुना। वर्तमान में जब हम शोधग्रंथ-संग्रहालयों के शोध सर्वेक्षण पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें यह जानकारी मिलती है कि श्रीविश्वेश्वर पांडेय[२] कृत "वक्षोजशतकम्" ऐसी ही कृति है। इसका उल्लेख श्री एम० कृष्णमाचार्यर, मद्रास ने अपने "हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर" नामक ग्रंथ में किया है और सम्भवतः इसी के आधार पर 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' नामक ग्रंथ के लेखक डॉ. हीरालाल शुक्ल ने इसका उल्लेख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया है। यद्यपि श्री विश्वेश्वर का समय १८ वीं शताब्दी उत्तरार्ध माना गया है और कविमल्ल हरिवल्लभ भट्ट का समय १९ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध समय रहा है। इस प्रकार श्री विश्वेश्वर कृत 'वक्षोजशतकम्', 'कान्तावक्षोजशतोक्तयः' से प्राचीन रचना प्रमाणित हो जाती है। यहाँ यह संकेत कर देना आवश्यक है कि 'कान्तावक्षोजशतोक्तयः" कृति सन् १८९४ ई. में निर्णयसागर प्रस बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है परन्तु श्री विश्वेश्वर कृत रचना 'वक्षोजशतकम्' अभी अप्रकाशित है और विद्वानों के अनुशीलन का अवसर भी प्राप्त नहीं कर सकी है।

श्री विश्वेश्वर रचित 'वक्षोजशतकम्' के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी रचनायें प्राप्त होती हैं जिनके श्रवण से कान्तावक्षोजशतोक्तयः' से साम्य प्रतीत होती है। इन रचनाओं का उल्लेख भी प्रोफेसर एम० कृष्णामाचार्यर ने अपने उक्त इतिहास ग्रंथ में किया है। इसका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

१. कुचशतकम् आत्रेय श्रीनिवास
२. कुचपंचाशिका—वृत्तमणि श्रीनिवास
३. चण्डीकुचपचाशिका—श्री लक्ष्मणाचार्य

उपर्युक्त इन तीनों रचनाओं में से केवल तृतीय रचना 'चण्डीकुचपंचाशिका' निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित होने वाली काव्यमाला सीरीज के नवम गुच्छांक (१८९३ ई.) में प्रकाशित हो चुकी है। इसके लेखक श्री लक्ष्मणाचार्य हैं जो एक दाक्षिणात्य विद्वान् रहे हैं। काव्यमाला-सम्पादक ने इनका परिचय प्रस्तुत करते हुये अन्तःसाक्ष्य को ही प्रमाण माना है। स्वयं श्री लक्ष्मणाचार्य ने इस काव्य के ११, १२, १३ पद्य में अपना परिचय प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर महाराष्ट्र प्रदेश में विद्यमान सह्याद्रि प्रान्तवर्ती वांई नामक नगर में इनका जन्म हुआ था। कवि ने लिखा है कि :-

यद्यपि पदनुतिरादौ कार्या मातुस्तथापि विश्वस्य।
मुख्यमिति स्तनपानं लक्ष्मणबालेन तत्स्तुतिर्विहिता ॥[3]

इसके अनुसार यह प्रमाणित होता है कि कवि ने बाल्यभाव से जगज्जननी माता के चरणों की वन्दना न कर स्तनपान को प्रमुखता प्रदान करने की दृष्टि से इस 'चण्डीकुचपंचाशिका' का गुम्फन किया है। अतः यह रचना सर्वतोभावेन वात्सल्यपरक होने से एक सफल भक्ति रचना है। इसे शृंगारिक रचना नहीं माना जा सकता। इस कथन को इस एक पद्य से पुष्ट किया जा सकता है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मातुर्नौमि पयोधरौ त्रिजगतामारम्भकुम्भौ शुभौ,
भावत्कौ भुवि तौ भवप्रियतमे भाव्यक्षतौ भासुरौ ।।
यौ श्रीकण्ठकरप्रवाललतिकामूर्धस्फुरत्पल्लवौ
षड्वक्त्रद्विरदाननाननवनोज्जन्माभिलीढौ चिरम् ।।"४

चूँकि अन्य रचनायें अप्रकाशित हैं और दक्षिण भारत के संग्रहालयों५ में विद्यमान होने से सरलता से प्राप्त नहीं की जा सकी हैं अतः कविमल्लजी द्वारा प्रणीत इस 'कान्तावक्षोजशतोक्तयः' को ही विद्वत् समाज में सम्मान प्राप्त हुआ है। यहाँ इस रचना के सम्बन्ध में सोद्धरण विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है :—

कविमल्लजी ने महाकवियों द्वारा प्रयुक्त शृंगार रस में मधुपान गोष्ठी, सम्भोग शृंगार एवं शृंगार रस के अन्यान्य परिपोषक बिन्दुओं के विवेचन में प्रायः स्वागतावृत्त को अधिक महत्त्व दिया है। उसी परम्परा का अनुकरण करते हुये कविमल्लजी ने अपने इस शतक में भी स्वागता छन्द का प्रयोग किया है। यह छन्द सहृदयों के लिये पढ़ने और सुनने में मनोहारी होता है। इसका लक्षण छन्दः शास्त्र में इस प्रकार किया गया है :—

"स्वागतेति रनभा गुरुयुग्मम्"

अर्थात् जिस छन्द में क्रमशः रगण (SIS), नगण (III), भगण (SII) और दो गुरु (SS) होते हों वह स्वागता छन्द होता है। इस लक्षण के अनुसार इस शतक के सभी १०० पद्य इसी छन्द में प्रयुक्त प्रमाणित होते हैं। इस शतक का प्रारम्भ निम्नलिखित पद्य से होता है।

'प्रोन्नतौ सरिदधीशकिशोर्यास्तावुभावु रसिजावभिवन्दे ।
युग्मकेन किल यत्र मुरारेः पाणयः प्रविहरन्ति चिराय ।।१।।

इस पद्य में कविमल्लजी ने भगवान् विष्णु और उनकी पत्नी लक्ष्मी को नायक और नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है और भगवती के स्तनों को प्रणाम किया है जिन स्तनों पर कामक्रीड़ा प्रसंग में नायक मुरारि के हाथ विहार की अनुभूति करते हैं।

कविमल्लजी ने कामिनी के स्तनों के सम्बन्ध में जितनी भी कल्पनायें संभव हो सकी हैं उन्हें प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि इनके कुछ पद्य पुनरुक्ति से प्रतीत होते हैं परन्तु कविमल्लजी ने उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उनके कथन में विचित्रता आ जाने से आलंकारिक दृष्टि से वे दोषरहित प्रमाणित हो जाते हैं। उन्होंने कामिनी के वक्षस्थल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर स्पष्टतः प्रतीत होने वाले प्रकट रूप दोनों स्तनों को कामी लोगों के लिये कामधेनु के समान बताया है —

"ऊधसो द्वितयमायतमूलं वक्षसा प्रकटमेव दधाना ।
सर्वथा जयति काचन दिव्या कामधेनुरिह कामिकुलस्य ॥२॥

कविमल्लजी ने इस पद्य में कामिनी वक्षोज को व्यवहारिक दृष्टि से मानवजीवन का मूल आधार बतलाया है उनका कथन है कि मानों कामिजनों के लिये वह कामधेनु के समान एक अद्भुत दिव्य शक्ति है। आशय यह है कि सामान्यतया शिशु स्तन्यपान के द्वारा ही अभिवृद्धि प्राप्त करता है और शारीरिक विकास के द्वारा अपना भावी मार्ग सुदृढ़ करता है। कविमल्लजी द्वारा प्रयुक्त कामिकुल शब्द का प्रयोग सार्थक है क्योंकि वे इसके द्वारा श्रृंगार के मूलभूत अर्थ को प्रकट करना चाहते हैं। दूसरी ओर "कमुकान्तौ" धातु का इच्छापरक अर्थ लेते हुये वे मानवमात्र के संवर्धन व संपोषण की भावना की ओर इंगित करना चाहते हैं।

कविमल्लजी ने स्तनों के संबंध में एक अद्भुत कल्पना प्रस्तुत की है। जिस व्यक्ति को तैरना नहीं आता उसे अभ्यास के लिये सर्वप्रथम तूम्बियों का प्रयोग करना होता है। वह अपने दोनों ओर तूम्बियों को बाँधकर तैराकी का अभ्यास करता है। कामिनी के वक्षस्थल पर सम्भवतः दो स्तनों का आविर्भाव विधाता ने इसलिये किया है कि युवावस्था में रतिसागर में विहार करने वाले कामी युवक कहीं उस समुद्र में ही डूब न जाये। प्रारम्भ में उन्हें उस समुद्र का संतरण करने के लिये आलम्बन व आश्रय की आवश्यकता होगी इसीलिये उन्होंने विशेषतः युवावस्था में ही कामिनी के वक्षस्थल पर दो स्तनों का निर्माण किया है :—

"प्रस्फुरन्निबिडयौवनभाजामुच्छ्रितं कुचयुगं प्रमदानाम् ।
भासते प्रतरतां रतसिन्धौ प्रेयसामिववलम्बनभूतम् ॥३॥

कविमल्लजी की दृष्टि में कामिनीस्तनफल है जो दिव्य जघन रूप पृथ्वी का आश्रय प्राप्त कर कामिनी के नाभिकन्द से उत्पन्न होने वाली रोमराजिलतिका पर लगे हैं। यहाँ रोमराजि को कवि ने लता बताया है और नाभिकन्द को उसका आश्रय :—

आश्रिताज्जघनदिव्यधरित्रीं नाभिकन्दत इयाय जनि या ।
रोमराजिलतिका तव सेयं वल्लभे स्तनफले फलति स्म ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविमल्लजी की यह मान्यता है कि जब किसी स्त्री के वक्षस्थल पर स्तनों का उभार होता है तो उससे संसार की उत्पत्ति का संकेत मिलता है इसी प्रकार उनके लय होने से संसार के लय की संभावना की जा सकती है—

उद्भवेन कुचयोर्वनितानामुद्भवोऽस्य जगतः सकलस्य ।
वर्तनेन च तयोः किल वृत्तिर्मन्मते लयत एव लयोऽपि ।।५।।

जिस क्रम से प्रिय के साथ नववधू का परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ होता है उसी क्रम से मानों उस नववधू की मानसी कठोरता स्तनों के बहाने बाहर प्रकट होती है। कविमल्लजी का यह आशय प्रतीत होता है कि युवावस्था में ही स्तनों का उभार होता है। इस विषय में उनकी कल्पना है (नु वितर्के) कि परिचय की प्रगाढता के कारण नववधू के हृदय में विद्यमान कठिनता मृदुता से परिवर्तित होती है और वह हृदय की कठिनता मानों स्तनों के रूप में वक्षस्थल पर प्रकट हो जाती है—

"यत्क्रमेण परिमूर्छतिसार्द्धं प्रेयसा परिचयो नववध्वाः ।
तत्क्रमेण नु कुचोद्गमदम्भान्मानसी कठिनता बहिरेति ।।६।।"

किसी सुमुखी के आवरण रहित पीवर एवं अत्यन्त कठोर दोनों स्तनों को देखकर कविमल्लजी ने उनके सम्बन्ध में अपनी कल्पना अभिव्यक्त की है कि वे दोनों स्तन मानों महाराजा कामदेव के हृदय रूपी प्रमुख महल के बाहर बनाये जाने वाले दो अलिन्दों के समान हों। प्राचीन भवन-निर्माण शैली में महल के प्रमुख द्वार के दोनों ओर दो ऐसे स्थान बनाये जाते थे जहाँ बैठकर व्यक्ति विश्राम कर सकता था। इसे राजस्थानी भाषा में गोखा और संस्कृत में अलिंद कहा गया है। ये दोनों गोखे उन्नत उभरे हुये और आसन के रूप में प्रयुक्त होते थे :—

वाससा विरहितं सुमुखीनां पीवरं सुकठिनंस्तनयुग्मम् ।
भात्यलिन्दयुगवद्धृदगार द्वारसोमनि मनोजनृपस्य ।। ९ ।।

कोई नायिका अपने स्तनों के अत्यन्त उभार के कारण लज्जा का अनुभव करती है। उसने बहुत बड़ा सा घूँघट भी निकाल रखा है, मार्ग भी उबड़-खाबड़ है। ऐसी स्थिति में जब वह उस मार्ग से गमन करती है तो उसकी सहचरी उसे व्यवस्थित गमन हेतु प्रेरित करती है और वह लज्जा से मानों पृथ्वी में ही समाविष्ट हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास की यक्षिणी के समान "स्तोकनम्रा" नहीं है अपितु अधिक नम्रा है :—

व्रीडया निबिडनीतवगुण्ठा साऽधिकोन्नत कुचा पथि यान्ती ।
उन्नताननतया सहचर्या प्रेरिता समवगच्छति पृथ्वीम् ।। १० ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तनों के विमर्दनार्थ उद्यत नायक को देखकर नायिका द्वारा प्रस्तुत विनयाञ्जलि का एक दृश्य इन शब्दों से चित्रित किया जा सकता है :—

"वीक्षिता प्रियतमेन करौ यद्वक्षसि न्यसति संत्रपिता सा।
तन्नखखण्डित कुचोन्नतिसिद्धयै संतत नमति त विनयेन ॥ ११ ॥

एक पद्य में कविमल्लजी ने कामिनी के स्तनों को कामदेव के शयन-काल में तकियों से उपमित किया है। कामदेव की शैय्या भोलीभाली वधुओं का अनुरागपूर्ण हृदय है और उनके वक्षस्थल पर उन्नत नीलकमल के समान उन्नत उरोज उस कामदेव के लिए तकियों का काम सिद्ध करते हैं :–

"रागभाजि हृदि मुग्धवधूनां निर्भयं किल सदा कुसुमेषुः।
न्यस्य नीररुहकोशकठोरौ स वपित्युरसिजावुपबर्हौ ॥ १३ ॥"

कविमल्लजी की यह मान्यता है कि स्त्रियों का मन अत्यधिक चंचल होता है। सृष्टि के विधाता ब्रह्मा ने जब यह जाना तो उन्होंने उनकी मन रूपी वसुधा को स्थिर करने के लिये मानों उनके वक्षस्थल पर दो पर्वत कल्पित कर दिये :—

"सर्वतः खलु विशेषचलाया योषितां लघुमनोवसुधायाः।
नूनमम्बुजभुवा स्थिरतायै कल्पित गिरियुग कुचकूटात् ॥ १५ ॥"

कामदेव मनुष्यों के चित्त को अपने बाणों से बिद्ध करता है, ऐसा माना जाता है कि यदि शिकारी किसी उन्नत स्थान पर बैठकर यदि धनुष स्फालन करता है तो उसका वह प्रयोग सफल होता है। इस सम्बन्ध में कविमल्लजी की कल्पना है कि मानों ब्रह्मा ने मृगनयनियों के दोनों स्तन शिकार करने को उद्यत कामदेव के लिये बुरज के रूप में बनाये हैं, जिन पर बैठकर वह कामदेव कान तक खींचकर बाण छोड़ता है और मनुष्यों के हृदय को बेधा करता है :—

"एण शावकदृशः समुदग्रौ चित्तभूः कुचहुडावधिरुह्य।
आश्रुति प्रचुरकृष्टततज्य मानसानि बत विद्धयति पुंसाम् ॥१६॥

कविमल्लजी ने कामनियों की नाभि को कूप से उपमित किया है और उसके ऊपर विद्यमान दोनों स्तनों को जलपूर्ण कलशों के रूप में चित्रित किया है। आशय यह है कि जिस प्रकार कुये के ऊपर जलपूर्ण कलश स्थापित होते हैं उसी प्रकार नाभिकूप के ऊपर वक्षोज के रूप में अमृत के छलकते हुये दो कलश स्थित हैं :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'निर्भरोल्लसदगाधतलश्रीर्वर्तते वियति कश्चन कूपः।
तस्य चाहह विभात्युपकण्ठे कुम्भयुग्ममृतोम्भितमुच्चः॥ १७॥'

कविमल्लजी की कल्पना है कि यौवन और कामदेव दोनों को अतिथि के समान अत्यन्त समीप आया जानकर नवयुवति के हृदय रूपी प्रांगण पर दोनों स्तनों के बहाने मानों दो उच्चासन स्थापित कर दिए हैं। यह संस्कृति की मान्यता रही है कि अतिथि का सम्मान किया जाना चाहिये। सर्वप्रथम उनके आगमन पर उच्चासन देकर उसका सम्मान किया जाना चाहिये। स्तनों का उभार युवावस्था से होता है और युवावस्था में ही कामदेव का परिज्ञान होता है। कविमल्लजी की यह कल्पना अत्यन्त सार्थक है। उन्होंने यौवन और कामदेव को दो अतिथियों के रूप में प्रस्तुत कर नवयुवति के वक्षस्थल पर विद्यमान दोनों स्तनों का औचित्य स्पष्ट कर दिया है—

"यौवनासमशरावुपयान्तौ संनिधावतिथिवत्समवेक्ष्य।
तुङ्गपीठयुगलं स्तनदम्भादास्तृतं हृदजिरे नवनार्या।।१८॥"

विपरीत रति में जहाँ कामशास्त्र में "कामिनी पुरुषायते" का उल्लेख किया है उस स्थिति में स्तनों की क्या स्थिति होती है? उस चित्र को प्रस्तुत करते हुये कविमल्लजी लिखते हैं:—

"विस्फुलद्विपुलतुङ्गकुचाग्रा कामिनी रतिविधौ विपरीते।
सौधकुम्भयुगलेन सलीलं सिञ्चतीव हृदयं दयितस्य॥१९॥"

कविमल्लजी ने प्रौढ नायिका के पयोधरों का उल्लेख करते हुये उन्हें पिंजरे में बन्द दो चंचल तीतर शावकों के समान चित्रित किया है:—

"उन्मुखावुदधिरूढकञ्चुकौ प्रौढपङ्कजदृशः पयोधरौ।
पञ्जरान्तिक इव स्थितावुभौ स्फूर्जतश्चटुलतित्तिरात्मजौ॥२०॥"

कामिनी के गुरुतर स्तनों की चर्चा करते हुये कविमल्लजी लिखते हैं कि इनके कारण सुन्दरी न केवल अपने बड़े बुजुर्गों से अपितु पति एवं स्वयं अपने आप से भी लज्जा का अनुभव करती है। वास्तव में यह चित्र उस किशोरी नायिका का है जो मुग्धा है और जो कभी युवावस्था में प्रविष्ट हुई ही है। इस पद्य में उसकी व्रीड़ा का एक मात्र हेतु शब्द है गुरुतरस्तनभारा पद्य है:—

"सुन्दरी गुरुतरस्तनभारा केवलं न गुरुलोकपतिभ्याम्।
व्रीडनं वहति हन्त नितान्तं किन्त्वहो स्वयमपि स्वत एव॥२१॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविमल्ल ने अग्रिम पद्य में एक विचित्र उत्प्रेक्षा का आश्रय लिया है। उनका कथन है कि चंचला नायिका का वक्षोज जब अपने प्रिय वल्लभ के करपल्लव का संपर्क प्राप्त करता है तो वह इस प्रकार प्रतीत होता है मानों कोई सांड (वृषभ) अपने ककुद को कंपित करते हुये अत्यधिक शोभित हो रहा है अर्थात् जब कोई व्यक्ति बलिवर्द की पीठ पर हाथ फेरता है तो वह अपने ककुद अर्थात् उभरे हुये भाग को कंपित करता है, रोमांचित होने के कारण वह उसका कम्पन अत्यन्त सुहावना लगता है :—

"वल्लभस्य करपल्लवयोगात्प्रस्फुरन्नुरसिजस्तरलाक्ष्याः।
आश्रयत्यनडुहोऽभ्युपमृष्टः संधुनन् ककुदिव श्रियमुर्वीम् ॥२२॥"

संभोग शृंगार के अन्तर्गत नायक नायिका की स्थिति का चित्रण करते हुये कविमल्लजी ने निम्नलिखित पद्य प्रस्तुत किया है जिससे यह स्पष्ट है कि नायिका के 'कुचकूटद्वन्द्व' से मानो वे 'प्रोतगात्र' के समान लक्षित हो रहा है :—

"कामिनीं करयुगान्तररुद्धामोष्ठयोः प्रणयवानभिचुम्बन्।
प्रोतगात्र इव तत्कुचकूटद्वन्द्वतः सुनिभृतश्चिरमासीत् ॥२४॥"

नखक्षत का चित्रण करते हुये कविमल्लजी ने लिखा है :—

"अन्यतः सततपातिततीक्ष्णप्रेक्षणीयपरिणाममिवाप्ताः।
कामकेलिषु नखक्षतलेखा भामिनीकुचयुगोपरि धत्ते ॥२६॥"

अपह्नुति अलंकार का आश्रय लेकर कविमल्लजी ने एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। वे नायिका के हृदय को हृदय नहीं मानते अपितु उसका निषेध कर ललना के हृदय को कामदेव का केलिभवन बतलाते हैं। इसी प्रकार वे कामिनी के वक्षस्थल पर उभरे हुये स्तनों को स्तन नहीं कहते अपितु वे उस कामदेव को स्थिरता प्रदान करने वाले घुटने हैं :—

"नैतदस्ति हृदयं ललनायाः किंतु केलिभवनं कुसुमेषोः।
नापि वक्षसिरुहौ इह तस्मिस्स्थायुकस्य किल तस्य हि जानू ॥२७॥"

एक नायिका जलकुम्भ लेकर किसी पनघट पर गई है और उसने उस घड़े को जलपूर्ण करने के बाद किसी युवक से उठाकर ले जाने के लिये कहा है; परन्तु वह व्यक्ति उस घड़े को ले जाने में अक्षम प्रतीत होता है। फिर जब वह उस नायिका के सिर पर घड़ा रखता है तो वह दो घड़ों को ले जाने की इच्छा करता है। कविमल्लजी का आशय है कि वह व्यक्ति उस एक घड़े को तो ले जाने में असमर्थ है, परन्तु कामिनी कुचकलशों को ले जाने में असमर्थ नहीं है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'गर्गरीं घटयुतां जलपूर्णां मूर्ध्नि नेतुमतुनुकः सुदृशोक्तः ।
मोहतोऽहह घटोन्नयकाले द्वौ कुचौ सुपृथुलावनिनीषत् ॥२८॥"

कविमल्लजी ने कामिनी के चूंचुक युक्त स्तनों को इष्ट व्यक्ति के खोजने के लिये अन्य देदीप्यमान दो नेत्रों के समान बतलाया है (चिरं इष्ट-जनस्य लोचनाय स्पष्टलोचनमिव प्रतिभाति)।

किसी चंचलाक्षी के वक्षस्थल का चित्रण करते हुये कविमल्लजी ने लिखा है कि उसके वक्षस्थल पर विद्यमान् स्थूल एवं वर्तुलाकार दोनों स्तन कामदेव की वीणा के तम्बूरे हों अर्थात् कामदेव ने अपनी वीणा को ही मानो इसके वक्षस्थल पर लाकर रख दिया है। कवि ने यहाँ कामिनो के दोनों स्तनों की उपमा भगवती सरस्वती की वीणा से की है :—

"उल्लसत्पृथुलवर्तुलचक्रा वक्षसिस्तनयुगी चपलाक्ष्याः ।
दृश्यते निजगृहे रतिभर्तुर्वल्लकी किल तिरोनिहितेव ॥३२॥"

उपमालंकार का एक सुन्दर चित्र कविमल्लजी ने निम्नलिखिते पद्य में चित्रित किया है :—

"उन्नतात्कुचयुगात्प्लवमानः सुभ्रुवस्तरलहीरकहारः ।
प्रस्खलन् सुरगिरेः शिखराभ्यां भाति निर्झर इव द्युतटिन्याः ॥३३॥"

इस पद्य में कविमल्लजो ने नायिका द्वारा अपने उन्नत उरोजों पर धारण किये हुये तरल हीरक हार की शोभा का चित्रण किया है। वे उसके उन्नत कुचयुगों को सुरगिरि मानते हैं और उस तरलहीरकहार को गंगा नदी का निर्झर।

एक पौराणिक सन्दर्भ से तुलना करते हुये कविमल्लजी कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य की गति को रोकने के लिये विन्ध्याचलपर्वत के शिखर निरन्तर बढने लगे थे और उसकी गति से भयभीत होकर देवताओं ने इन्द्र से प्रार्थना की थी। इन्द्र ने विवश होकर मुनि अगस्त्य से निवेदन किया था जो विंध्याचल के गुरु थे। यहाँ कविमल्लजी की कल्पना है कि अपने कान्त की मानस गति को रोकने के लिये मानों उस नायिका के दोनों उरोज विद्यमान हैं :—

"कान्तमानसगतिं परिरोद्धुं मूर्च्छतोऽद्य नु तथा तदुरोजौ ।
प्राग्यथा रविगतिं परिरोद्धुं विन्ध्यशैलशिखरौ, ववृधाते ॥३६॥

किसी कामिनी के स्तनों का अग्रिम भाग काला क्यों होता है, इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय में उत्प्रेक्षा करते हुये कविमल्लजी ने लिखा है चूँकि उसके उस भाग पर प्रियतम के हाथ का स्पर्श निरन्तर होता रहता है और निरन्तर हाथ के स्पर्श से वस्तु मैली हो जाती है इसलिये वह भाग काला पड़ गया :—

"सततं प्रियकराग्रनिपाताज्जातवत्कलुषचिह्नमिवास्याः ।
नीलिमोल्लसितचूचुकयोगं सुभ्रुवो विजयते कुचयुग्मम् ॥४०॥"

रतिकाल में कामिनी के ये दोनों स्तन कामदेव के टूटे हुये रथ के दो चक्कों के समान शोभित हो रहे हैं :—

"कान्तदीर्णकलिकाकृतिचोलं विस्तृतं कुचयुगं चपलाक्ष्याः ।
चक्रयुग्ममिव रत्यभिमर्दे भग्नमन्मथरथस्य विभाति ॥४१॥"

किसी एक नायिका के स्तनों पर चित्रित की गई पत्र-रचना इस प्रकार प्रतीत हो रही है मानों सुन्दर नेत्रों वाले दो हरिण के बच्चे पिंजरे में बन्द हो गये हैं :—

"साऽधुना स्तनतटे बहुचित्रां स्तोकपत्ररचनां नववामा ।
वागुरामिव दधाति गृहीत्यै कान्तलोचनकुरङ्गकसून्वोः ॥४२॥"

युवावस्था प्राप्त होने पर किसी चन्द्रमुखी नायिका के वक्षस्थल पर उन्नत युगलों को देखकर कविमल्लजी कल्पना करते हैं कि मानों ये दोनों उरोज नहीं हैं अपितु वर्षा ऋतु में आकाश में व्याप्त उन्नत मेघ समूह है अर्थात् जिस प्रकार वर्षा ऋतु में आकाश मण्डल में मेघ अत्यन्त उन्नत होते हैं उसी प्रकार युवावस्था में तरुणियों के स्तन भी उन्नति प्राप्त करते हैं :-

"सांप्रतं तरुणिमावसरेऽस्या वक्षसि स्तनयुगं विधुमुख्याः ।
व्योमनीव सति प्रावृषिकाले मेघवत्प्रचुरमुच्छ्रयमेति ॥४३॥"

कोई कामिनी साड़ी के अञ्चल से दोनों स्तनों को आवृत किये हुये है इस पर कविमल्लजी की उत्प्रेक्षा है कि मानों वह कामदेव के खजाने के रूप में विद्यमान दो पात्रों को सुरक्षित करती हुई सुशोभित हो रही है :-

"सुन्दरी प्रचकितं पिदधाना संततं स्तनयुगं वसनान्तात् ।
कामराजनिधिभाजनयुग्मं दीव्यतीव नितरां परिपान्ती ॥४४॥"

कामशास्त्र में विवेचित विधि के अनुसार प्रियतम द्वारा प्रियतमा के उरोजों पर चिह्नित नखक्षत ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों किसी हाथी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के गण्डस्थल पर अंकुश का चिह्न अंकित हो रहा है। सामान्यतया अंकुश नाखूनों के समान वक्र होता है; अतः यह उपमा बहुत सटीक है :—

"एणशावकदृशः कुचयुग्मे कान्तदत्तकरजक्षतरेखा।
कुम्भिकुम्भयुगले स्फुटमुच्चैरङ्कुशाङ्कनिवहा इव भान्ति ।।४६।।"

करभ के समान उरु वाली किसी नायिका ने कामकेलि के समय जब अपने समस्त वस्त्रों को शरीर से उतार दिया और उससे उसके स्तन स्पष्ट हो गये उससे वह अत्यन्त लज्जित हो उठी और उसने अत्यन्त वेग से सहसा अपने प्रिय के वक्ष का आलिंगन कर लिया :-

"कामकेलिसमये च्युतवस्त्रा प्रस्फुटस्तनतटा करभोरूः।"
आलिलिङ्गचतुरा सहसैव व्रीडिताऽतितरला प्रियवक्षः ।।४७।।

मुग्धा नायिका का एक चित्र प्रस्तुत करते हुये कविमल्लजी ने लिखा है कि वह एकान्त में अपने शरीर पर होने वाले स्तनों के उभार को देख रही है और अपने स्वामी के देखने का परिज्ञान होते ही संवृतकुचा वह इस प्रकार पृथ्वी में गड़ रही और जब तक वह बैठ नहीं गया तब तक वह खड़ी नहीं हुई :-

"मुग्धिका रहसि सून्नमिताङ्गा भर्तुरीक्षणह्रियाशु तथोर्व्याम्।
आस्त संवृतकुचा चिरकालं नोत्थितः किल यथा स निषण्णः ।।४८।।"

कविमल्लजी ने कामिनी के दोनों स्तनों को कामदेव के दो मुद्‌गरों के समान चित्रित किया है जो कामदेव पहलवानी करने को उद्यत है। बहुत समय तक उन स्तनों के चोली में आबद्ध होने के कारण वे अत्यन्त वर्तुलाकार और कठोर हो गये हैं और चोली के हठाने के बाद विमुक्त हुये वे पहलवानी के लिये उद्यत कामदेव के मुद्‌गरों के समान प्रतीत हो रहे हैं।

"सक्तचोलचिरबन्धविमुक्तौ निस्तलायततरौ ललनायाः।
मल्लतां कलयतः कुसुमेषोर्मुद्‌गराविव कुचौ किल शङ्के ।।५०।।"

एक पद्य में कविमल्लजी ने मदिराक्षी नायिका के चोलक में आबद्ध नीलमुख वाले स्तनयुगम की दो मृदङ्गों से तुलना की है। मृदङ्ग का ऊपरी भाग कृष्ण वर्ण का होता है। मानों भावी मन्मथमहोत्सव के लिये ही विधाता ने इनका निर्माण किया है। महोत्सव में मृदङ्गवादन का विधान है :—

"अग्रनीलवदनं स्तनयुग्मं चोलके दृढतरं मदिराक्ष्याः।
नह्यतेन्विव मृदङ्गकयुगमं भाविमन्मथमहोत्सवहेतोः ।।५३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविमल्लजी की कामिनी के स्तनों के सम्बन्ध में एक विचित्र कल्पना है कि कोई कामिनी मार्ग में जा रही है। कुछ राहगीर सामने से आ रहे हैं अचानक हवा से उसका स्तनावरण हट जाता है और उन्हें देखकर पांथ (राहगीर) मूर्च्छित हो जाता है क्योंकि वे उसके लिये कामदेव रूपी तोप के गोले हैं :-

"वातनुन्नवसनावभियान्त्याः सुभ्रुवः पृथुकुचौ वत ! पान्थः।
गोलकाविव मनोभववर्हिर्यन्त्रियौ झटिति वीक्ष्य मुमोह ॥५४॥"

किसी युवक ने कामिनी कपोलपान से जो शिशिरत्व की अनुभूति की तो उस शैत्यपीड़ा को समाप्त करने के लिये उसने स्तन रूपी घर्म के सन्ताप से शैत्य निवारण किया :-

"यर्हि किञ्चन दधारकपोलापाननिर्भररतः शिशिरत्वम्।
तावदेव तरुणः प्रणयिन्या ताप्यते स्म नितरां स्तनघर्मात् ॥५६॥"

प्रेमी द्वारा प्रेमिका के वक्षस्थल पर अंकित नखक्षत को 'शुकमुखाग्रकलंक' से उपमित किया है और स्तनों को पके हुये दो दाड़िम के फलों के समान बतलाया है : –

"भान्ति वक्षसिरुहो कमलाक्ष्याः प्रेयस कररुहव्रणलेखाः।
दाडिमीयफलयोरिव पाकं प्राप्तयोः शुकमुखाग्रकलङ्काः ॥५७॥"

वल्लभ समागमन पर नायिका के प्रसन्नता के कारण अत्यन्त उभार को प्राप्त हुये स्तन-युग्म की कविमल्लजी जय-जयकार कर रहे हैं मानों वे यह कहना चाहते हैं कि अब आप हमें चोली रूपी वन्दीगृह से शीघ्र मुक्त कराओ :—

"वल्लभेऽभ्युपगते वरवध्वा उच्छ्वसत्स्तनयुगं जयतीवत्।
चोलबन्दिनिलयादमुतो मां मोचयाशु तमितीव विवक्षुः ॥६२॥"

कविमल्लजी नें स्तनों के अग्रभाग चूचुक के संबंध में कल्पना करते हुये उन्हें कामसर्प बतलाया है। उनका कथन है कि भगवान् शिव के द्वारा हत हुये कामदेव अपनी पत्नी के स्तन रूपी सम्पत्ति भाण्ड की रक्षा करने के लिये चूचुक के वहाने सर्प रूप धारण कर मानों वहाँ स्थित हो गया है। ऐसी मान्यता है कि सम्पत्ति की रक्षा सर्प करते हैं और वे उस सम्पत्तिपात्र पर कुण्डली मारकर बैठे रहते हैं। स्त्री के यह दोनों स्तन मानों कामदेव का खजाना है और उस पर विद्यमान चूचुक मानों काला नाग है इस प्रकार यह सांग रूपक है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"त्रायते निजवधूस्तनसंपद् भाण्डयोर्हरहतः खलु कामः ।
चूचुकस्य कपटेन भुजङ्गीभूय संस्थित इव प्रतिभाति ।।६४।।"

स्तनों की उत्पत्ति के संबंध में कल्पना करते हुये कविमल्लजी ने लिखा है कि ब्रह्माजी के द्वारा मुग्धा नायिका की हृदयरूपी अवनि में जो रति रूपी बीज बोया गया था वह प्रियतम के हाथ से निरन्तर सींचे जाने के कारण ही अब मानों स्तन के रूप में विकसित हो गया है :—

"मुग्धिका हृदवनौ द्रुहिणेन प्रोप्यते स्म खलु यद्रतिबीजम् ।
रोहति प्रियकरानिशसिक्तं सम्प्रति स्तनपदेन तदेव ।।६६।।"

स्तनों का आलंकारिक चित्रण करते हुये कविमल्लजी लिखते हैं कि किसी नायिका के स्तनों पर विद्यमान उसका आवरक वस्त्र वहाँ से बार-बार खिसक रहा है इस पर उनकी उक्ति है कि कौन गुणवान् व्यक्ति कर्कश व्यक्तियों के साथ संबंध बनाये रखना चाहेगा ? अर्थात् कोई नहीं । कामिनी के स्तन का काठिन्य ही इसका प्रमुख कारण है :

"सुभ्रुवः पृथुकुचद्वितयाग्रात् स्रंसते वसनवस्तमजस्रम् ।
को हि भूरि गुणवान् सहवासं कर्कशैः सह विधातुमभीष्टे ।।७२।।"

एक अन्य कल्पना में कविमल्लजी ने बतलाया कि किसी स्त्री के वक्ष-स्थल पर विद्यमान अत्यन्त परिपुष्ट उन्नत दोनों स्तन ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों शकर से पुनः युद्ध करने वाले कामदेव के दोनों हाथों को मुट्ठियां हों :—

"आदधाति हृदये परिपीनावुच्चकैरुरसिजौ कुटिलभ्रूः ।
शम्भुना पुनरपि प्रयुयुत्सोर्मन्मथस्य करयोरिव मुष्टो ।।७९।।"

कामिनी के स्तनाग्रभाग की रचना के संबंध में कविमल्लजी ने एक यह कल्पना की है कि विधाता ने अत्यन्त सुन्दर कामिनी कुचयुग्म का निर्माण कर युवकों के नेत्रदोष का निवारण करने के लिये मानों ये अत्यन्त काले चूचुक बनाये हैं अर्थात् नज़र के दोष को दूर करने के लिये ही चूचुक बनाये गये हैं :—

"अब्जयोनिरतिविश्वमनोज्ञां कामिनीकुचयुगीं रचयित्वा ।
नेत्रदोषहृतये किल यूनां चूचुके व्यधित तत्र विनीले ।।८३।।"

किसी तरुणी के श्रोणिबिम्ब युगल के प्रति ईर्ष्या की भावना रखते हुये ही मानों स्तनयुग्म बन्धुर, विपुल गरिष्ठ और संहृत रूप में होते हैं :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"ईर्ष्ययेव नितरां ननुमन्ये श्रेणिबिम्बयुगलस्य तरुण्याः ।
बन्धुरं च विपुलं च गरिष्ठं संहृतं च भवति स्तनयुग्मम् ॥८८॥"

रतार्ध में बहुत हठ के बाद प्रेमी द्वारा नायिका के कठोर स्तनों से हटाई गई कंचुकी को सुनयनी ने बहुत देर बाद अलग किया। बस इतनी ही देर तक वह अपनी लज्जा की रक्षा कर सकी। कविमल्लजी के शब्दों में यह पद्य उपर्युक्त भावों की सम्पुष्टि करता है :—

"प्रयसो बहुहठेन रतार्धे कञ्चुकोधनमुरोजनिवीता।
सुभ्रुवा चिरमपास्यत कृच्छ्रात्तावती हि निजह्रीरवशिष्टा ॥९९॥"

कविमल्लजी के शतक का अन्तिम पद्य है :—

"प्रौढयोषिदिह यौवनदृप्ना नम्यते भगवतीव नु काचित्।
स्वात्मनि स्तनमिषादुभयं या विश्वगोलकपुटं नु बिभर्त्ति ॥१००॥"

यौवन दृप्त किसी प्रौढ स्त्री का कविमल्लजो भगवती मानकर मानो नमस्कार कर रहे हैं जिसने दो स्तनों के बहाने मानों विश्व के दो गोलक पुटं को धारण कर रखा है। पृथ्वो का आकार गोल माना गया है और जब उसे आधे-आधे भाग में विभक्त कर दिया जाये तो उत्तरार्ध-पूर्वार्ध विश्व के दो गोलक हो कामिनी के दो स्तन प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार १०० पद्यों में विभिन्न कल्पनाओं को अनेक अलंकारों के माध्यम से चित्रित करते हुये अन्तिम पद्य में लिखा है कि उन्होंने इस शतक को रचना केवल विद्वान् युवकों के प्रमोदार्थ की है जैसा कि यह उल्लेख पहले भो किया जा चुका है :-

"एताः सुधाब्धिलहरी सहोक्तयः स्तनशतोक्तयो मधुराः।
श्रीहरिवल्लभकविना गीता विद्वद्युवैकमुदे ॥१०१॥"

इस प्रकार इस शतक में से उद्धरणीय कुछ श्लोकों को प्रस्तुत कर उनका भाव भी प्रस्तुत किया गया है। इस समस्त विवेचन से यह प्रमाणित हाता है कि शृंगारिक रचनाओं में कविमल्लजी की यह कृति एक महत्वपूर्ण स्थान रखतो है। स्त्री के स्तनों को लक्ष्य कर कवि ने १०० कल्पनायें प्रस्तुत की हैं। उन कल्पनाओं में कुछ कल्पनाओं का साम्य अवश्य है परन्तु उसे पुनरावृत्ति नहीं कहा जा सकता। कविमल्लजी ने अपनी कल्पनाओं के आधार पर विशेषतः मुग्धा और प्रगल्भा नायिका के स्तनवैचित्र्य का चित्रण किया है। कुछ पद्यों में आवृत्त और कुछ पद्यों में अनावृत्त स्तनों का चित्रण वास्तव में युवकों की अनुभूति से आस्वाद्य है। कामशास्त्रियों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शृंगार रस विवेचन में कामिनी स्तनों को शृंगार रस का आलम्बन माना है। यद्यपि यहाँ प्रस्तुत शतकल्पनायें शृंगारोद्दीप्ति के लिये पर्याप्त हैं तथापि इस काव्य की कल्पनाओं के काठिन्य से कहीं-कहीं कठिनाई भी आती है। कविमल्लजी ने इस शतक में कामिनी के उन्नत उरोजों की तथा उनके अग्रिम भाग चूचुक को अधिक चर्चा की है। कुछ स्थलों पर पौराणिक सन्दर्भ भी दर्शनीय हैं। सामान्यतया इस प्रकार की रचनायें लोक में प्रचलित नहीं है। सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से लोग इसे हेय मानते हैं परन्तु "निरंकुशा कवयः" के आधार पर कविमल्लजी ने युवक-विद्वानों के मनोविनोदार्थ इस काव्य की रचना कर उसमें अपनी अनेक अनुभूतियों को चित्रित किया है। इनके ज्येष्ठ वैमात्रेय भ्राता श्रीकृष्णराम भट्ट को शृंगार रस चित्रण में अधिक प्रबुद्ध स्वीकार किया गया है और ऐसा कहा गया है कि वे अपने समय के रससिद्ध कवीश्वर थे। इनकी प्रेरणायें प्राप्त कर ही कविमल्लजी ने रचनायें कीं और उनकी कृतियों के सामञ्जस्य पर स्वयं ने रचनाओं का प्रणयन किया, जैसे-श्रीकृष्णराम भट्ट के 'जयपुरविलास' को देखकर "जयनगरपंचरंगम्" की रचना करना, "आर्यालंकारशतकम्" को लेकर "गौर्यालंकाराः" का प्रणयन करना, 'मुक्तक-मुक्तावली' के सामञ्जस्य पर "मुक्तकसूक्तानि" की रचना करना आदि साम्य चित्रित किया जा सकता है। कुछ रचनायें ऐसी हैं जो कविमल्लजी के व्यक्तित्व को नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं। मेरी दृष्टि में कविमल्लजी की यह रचना इनके वैदुष्य एवं व्यक्तित्व का प्रदर्शन करने में सफल एवं सक्षम है। कविमल्लजी ने इसका नाम "कामकुङ्कुमपत्री" भी लिखा है। अन्तिम पद्य के अनुसार इसे "सुधाब्धिलहरी" की संज्ञा से भी अभिहित किया जा सकता है। साहित्यिक दृष्टि से कविमल्लजी ने इस शतक में उत्प्रेक्षा, रूपक एवं उपमा आदि अर्थालंकारों का सफल चित्रण किया है। कुछ स्थलों पर सन्देह, दृष्टान्त, निदर्शना आदि का भी सुन्दर चित्रण है। कविमल्लजी ने स्तनों के लिये उरसिज, वक्षोज, कुच, स्तन, पयोधर, उरोज, वक्षसिरुह आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें भी कुच, उरोज और स्तन शब्दों का अधिक प्रयोग मिलता है। इसे एक सफल शृंगारिक रचना कहा जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संदर्भ :—

१. उत्तरमेघः १९

२. श्री विश्वेश्वर (१७०८-१७८८ ई.) के पिता के नाम श्री लक्ष्मीधर पांडेय था। ये उ०प्र० में अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी कृतियों का विवरण इस प्रकार है :—

(१) लक्ष्मीविलासकाव्यम् (महाकाव्यम्), (२) रोमावलीशतकम्, (३) वक्षोजशतकम्, (४) होलिकाशतकम्, (५) ऋतुवर्णनम्, (६) नवमालिका (नाटिका), (७) शृंगारमजरी, (८) सिद्धान्तसुधानिधि (दर्शन), (९) काव्यरत्नम्, (१०) दीधितिप्रवेशः, (११) तर्ककुतूहलम् (१२) आर्यासप्तशती, (१३) कवीन्द्रकर्णाभरणम् (चित्रकाव्य) (१४) काव्यतिलकम्, (१५) नैषधकाव्य (टीका), (१६) मदनमंजरी टीका, (१७) रसचन्द्रिका (टीका), (१८) रसमंजरी (टीका), (१९) अलंकारमुक्तावली, (२०) अलंकारकौस्तुभ, (२१) आर्याशतकम्, (२२) रुक्मिणीपरिणयम् (नाटक), (२३) मन्दारमंजरी (उपन्यास) में कादम्बरी के अनुकरण पर पुष्पपुर के राजशेखर के प्रणय विवाह का वर्णन किया है।

३. १८ वाँ पद्य 'चण्डीकुचपंचाशिका' श्री लक्ष्मणाचार्य, प्रकाशित काव्यमाला नवमगुच्छक १८९३ ई. पृष्ठ ८१

४. चण्डीकुचपंचाशिका, श्लोक ४१ 'काव्यमाला' नवम गुच्छक, पृष्ठ-८५

५. (i) 'कुचपंचाशिका'- आत्रेय श्रीनिवास (D.C. xx 7893)
D, C (Descriptive Catalouge of Sanskrit Manuscripts in the Oriental Manuscript Library, Madras.)

(ii) 'कुचपंचाशिका'- वृत्तमणि श्रीनिवास (Mys. OM.L. 224)
Mys. O.M.L. (Catalouge of Sanskrit Manuscripts in Oriental Library Mysore and Supplement. History of Classical Sanskrit Literature by M. Krishanamachariar, Madras 1937 A.D.)

७. "मणिवन्धात् अकनिष्ठं करस्य करभो बहिः ॥

डॉ० दामोदर शास्त्री
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
चित्तौड़गढ़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसिक अनन्यमाल
क्या भगवन्त मुदित कृत रचना है ?

भगवन्त मुदित को विद्वानों ने अपने-अपने अनुमान के अनुसार भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों का बतलाया है। किसी ने उन्हें राधावल्लभ[1] मत का, किसी ने चैतन्य-सम्प्रदाय[2] का और किसीने टट्टी-सम्प्रदाय[3] का माना है। यह मतान्तर मुख्यतः उनके गुरु हरिदास तथा 'रसिक अनन्यमाल' ग्रन्थ को लेकर हुआ है। वस्तुतः ये हरिदास स्वामी हरिदास न होकर प्रसिद्ध चैतन्य-सम्प्रदाय के आचाय श्री गोविन्ददेवजो के अधिकारी पं० हरिदास अधिकारी है। 'रसिक अनन्यमाल' में हितहरिवंशजी के पुत्रों-प्रपोत्रों तथा शिष्यों का विवरण मिलता है। अतः इस रचना को भगवन्त मुदित कृत मान लेने के कारण उनके राधावल्लभी मान लेने का भ्रम कई सुविज्ञ लेखकों को हुआ है। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

भगवन्त मुदित के विषय में 'भक्तमाल'[4] में एक छप्पय मिलता है। प्रियादासजी ने अपनी सुप्रसिद्ध टोका में[5], कवित्तों में तथा 'भक्त सुमिरनी'[6] में एक चउपई में इनका वर्णन किया है। टीका से ज्ञात होता है कि ये आगरे के सूबेदार शुजाउल्मुल्क के दीवान थे। उनके पिता का नाम माधव (मुदित) था। ये बड़े ही रसिक एवं सेवा-परायण महात्मा थे। वृन्दावनवासी भक्त, ब्राह्मण, गोस्वामी, व्रजवासी जो भी कोई इनके यहाँ पहुँच जाता था उसकी ये बड़ी आवभगत करते थे। उन्हें द्रव्य आदि प्रदान करके भी सन्तुष्ट रखते थे। इनके दीक्षागुरु वृन्दावन ठाकुर श्री गोविन्ददेवजो के अधिकारी हरिदासजी थे। स्वामी हरिदासजी बिहारीजो के प्राकट्यकर्ता प्रसिद्ध भक्त थे और चैतन्य-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त हरिदासजी गोविन्ददेवजी के अधिकारी थे और 'चैतन्यचरितामृत' के रचयिता कृष्णदास कविराज के प्रेरक थे। इनके विषय में नरहरि चक्रवर्ती[7] तथा 'चैतन्य चरितामृत'[8] जैसे प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख है। राधाकृष्ण चक्रवर्ती ने भो कहा है कि श्री गोविन्ददेवजी की आज्ञा पाकर कृपा के सागर श्री रूप-गोस्वामी ने उनके गुरु श्री हरिदासजी के लिए गोविन्दजो की सेवा समर्पित की थी।[9] ये भी अपने समय के प्रसिद्ध भक्त थे।[10] इन अंशों को 'वार्ता साहित्य' से पुष्टि हो जाती है किन्तु वहाँ भगवन्त मुदित और उनके पिता माधवमुदित के वृत्त को राजा भगवानदास से सम्बद्ध कर दिया गया है। रामरायजी के शिष्य आमेर के राजा भगवानदास थे। वे अपने पदों में 'भगवान हितु रामराय' छाप रखते थे। कभी रामराय भगदानदास को सम्बोधित करते हुए भी उक्त छाप रखते थे। वैसे केवल रामराय तथा भगवानदास की छाप के पद भी उनके द्वारा विरचित हैं। वार्ताकार की यह घटना प्रिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दास के कथ्य की पुष्टि करती है। फिर प्रियादास ने तो अपनी प्रसिद्ध टीका लिखने से पूर्व नाभादासजी के साधनास्थल गलतागादी तथा अनन्य अनेक वैष्णव तीर्थों का भ्रमण कर तथ्य-संकलन किए थे। साथ ही मनोहरदास जैसे स्वसम्प्रदाय के सिद्धपुरुष से भी परम्परा का ज्ञान प्राप्त किया था। स्वयं प्रियादासजी ने अपनी रचना की प्रमाणिकता के लिए कहा है :—

रची कविताई सुखदाई लागै निपट सुहाई।
औ सचाई, पुनुरुक्ति लै मिटाई है।

—भक्तिरसबोधिनी टीका, क० सं० २

प्रियादासजी की कृतियों का रचना काल सं० १७६९ वि. है। भगवन्त मुदित कृत 'वृन्दावन शतक भाषा' का रचनाकाल सं० १७०७ वि. है।[11] अत: इनके सम्बन्ध में लिखा गया वृत्त प्रमाणिक तथा विश्वसनीय माना जा सकता है। नाभादासजी के छप्पय से ज्ञात होता है कि इनको उस समय तक प्रर्याप्त प्रसिद्धि हो गयी थी। नाभादास[12] तथा ध्रुवदासजी[13] ने भगवंत मुदित के पिता माधव मुदित का नामोल्लेख किया है। इस प्रसिद्धि के कारण की ओर बाबू व्रजरत्नदास ने संकेत किया है कि 'एक उच्च पदस्थ धनाढ़्य व्यक्ति के विरक्त होकर वृन्दावन पहुँचने और साधु-सन्तों का विशेष सत्कार करने से इनकी ख्याति शीघ्र फैल गई तथा नाभादासजी ने इसे सुनकर स्वरचना के अन्त में इनके सम्बन्ध में एक छप्पय बनाकर जोड़ दिया।' (श्री गोरांग वर्ष ३ अंक ४, पृ० ११)

भगवंत मुदितजी के पिता चैतन्य सम्प्रदायानुयायी थे और रसिक भक्त-कवि थे अत: भगवन्त मुदित पर प्रारम्भ से ही भक्ति का संस्कार था। माधव मुदितजी को नित्यानंद प्रभु का शिष्य बनाने का प्रच्छन्न प्रयत्न गो० ललिताचरणजी ने तथा प्रत्यक्ष प्रयास श्री ललिताप्रसाद पुरोहित ने किया है।[14] किन्तु यह कथन नितान्त निराधार, भ्रामक और अशुद्ध है। महाप्रभु चैतन्य देव की बाल्यावस्था में ही श्री नित्यानंदजी का ब्रजागमन हुआ था। वह समय लगभग वि. सं. १५५५ से लेकर वि. सं. १५६० के मध्य का है। इस समय तक पण्डित भक्तवर्य्य रूप-सनातन ब्रज में नहीं आए थे। गोविन्ददेवजी का प्राकट्य वि सं. १५९० है। गोविन्ददेवजी के अधिकारी हरिदासजी की विद्यमानता इसके पश्चात् की ही हो सकती है। नित्यानन्द प्रभु के ब्रजागमन के समय से लेकर माधव मुदित का भगवन्त मुदित की प्रसिद्धि समय पर्यन्त १५० वर्ष का अन्तराल होता है। और फिर 'वृन्दावन महिमामृतम्' के ब्रजभाषानुवाद में स्वयं भगवन्त मुदित ने मंगल-स्मरणात्मक छन्दों में महाप्रभु चैतन्यदेव की वन्दना के पश्चात् प्रस्तुत वाक्य कहे हैं :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम दया परमोद मोदनिहि मन को दीनो।
श्री गुरुजी हरिदास दयामय भाषा कीनो।।

श्री माधो मुदित प्रशंस हंस जिन रति रस गायौ।
तिनकौ हौं निज अंस रहसि रस तिनते पायौ।।

इष्टचन्द्रगोविन्द वर श्रीराधाजीवन प्राणधन।
हित संगी रंगी भजन सु कहत सुनत कल्याण बन।[१५]

वृन्दावन शतक (हस्त लिखित प्रति से)

प्रियादासजी ने भगवन्त मुदितजी के पिता की वृन्दावन-निष्ठा और रसिक-भावुकता की एक घटना का उल्लेख किया है।[१६] इन प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि माधो मुदित निश्चयपूर्वक प्रभु नित्यानन्दजी के शिष्य नहीं थे। उनके परवर्ती थे और ये हरिदास अधिकारी के ही शिष्य थे। माधो मुदित भी उन्हीं के शिष्य थे। उपासना के रहस्य का परिज्ञान उन्हें अपने भजन-गुरु श्री हरिदासजी से ही मिला था। यह कहना भी युक्तिसंगत है कि भगवन्त मुदित का मन राधावल्लभी रस पद्धति की ओर आकृष्ट था और वे राधावल्लभीय पद्धति से भजन करते थे।[१७] सत्य यह है कि प्रथम छन्दों में मुदितजी ने श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री राधारमण, वृन्दावन, ललितासखी, गुरुदेव, हरिदास, माधोमुदित की वन्दना की है। उसके उपरान्त एक छप्पय में श्री हितहरिवंश, प्रबोधानन्द, सनातन गोस्वामी, रूपगोस्वामी के पश्चात् स्वामी हरिदास की वन्दना की है। एक अन्य दोहे में वे कहते हैं :—

मम माता दाता भजन श्री वृन्दावन वास।
सो ए श्रीगोविन्द जू माधो मुदित हुलास।।

—वृन्दावन सत् (ह० लि०)

जब मुदितजी की गुरुदेव में 'अद्भुत निष्ठा' थी और वे अपने पिता की भाँति 'रतिरस' और 'रहसरस' के अनन्य गायक थे, तो उन्हें किसी अन्य रस-पद्धति की ओर आकृष्ट और तदनुकूल भजन करना बताना गहरी भ्रान्ति को जन्म देना है। इतना अवश्य है कि अपनी स्वजातीय उपासना के सहायक महात्माओं और उनके गीतों के प्रति सहज प्रेमभाव उनमें विद्यमान था। यदि उनके 'आकृष्ट होने' का इतना ही अर्थ है, तो हमें भी कोई विप्रतिपत्ति नहीं किन्तु जब इन जैसे कथनों के पीछे सोद्देश्य मन्तव्य छिपे हों तो समस्या उत्पन्न होती है। अद्भुत गुरुनिष्ठा के साथ अन्यत्र आसक्ति मिथ्या है। ऐसे भाव को व्यभिचारी भाव कहा जाता है। शास्त्र में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका प्रत्यवाय है। हाँ, गुरु में निष्ठा रखते हुए उनके अनुगमन से अन्य सन्तों को सम्मान देना उचित समझा गया है। अतः एक गुरु का त्यागकर नवीन गुरु कर पुनः मंत्रदीक्षा लेना मिथ्या है। इससे भजन की सिद्धि नहीं होती। भगवन्त मुदित ने ऐसा नहीं किया।

रसिक अनन्यमाल

भगवन्त मुदितजी के नाम 'रसिक अनन्यमाल' नामक एक चरित-काव्य का विद्वानों ने उल्लेख किया है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी स्थान-स्थान पर मिलती रहती हैं। इस रचना में वर्णित घटनाएँ तथा अनेक जीवनवृत्तों की वास्तविकता इतनी विकृत और संदिग्ध है कि एक सम्प्रदाय विशेष की अनन्य उपासना करने वाले परम रसिक भगवन्त मुदित की वह कृति सिद्ध नहीं होती। इस कृति में केवल राधावल्लभी महात्माओं के चरित्र वर्णित हैं किन्तु जिन तीन-चार चरित्रों को इसमें विकृत दशा में प्रस्तुत किया गया है, वह उनके अनुकूल नहीं हो सकता। इस सन्दर्भ में हमने पर्याप्त गम्भीरता से विचार किया है। नीचे हम अपनी विचारसरणि को स्वमत पोषण के लिए प्रस्तुत करते हैं और अन्य निष्पक्ष अनुसंधान कर्त्ताओं को आमन्त्रित करते हैं कि इन समस्याओं पर अग्रसर हों :--

१ 'रसिक अनन्यमाल' की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं उनमें हित सम्प्रदाय के उत्तमदास द्वारा रचित 'हितचरित्र' अवश्य लगा मिलता है। कहा जाता है कि अपने आद्याचार्य का चरित्र न देखकर उसे उन्होंने अपनी ओर से जोड़ दिया था। किन्तु उसमें भगवंत मुदितकृत चरित्रों का संक्षेप क्यों दिया गया है ? उनकी उपयोगिता क्या है ? और फिर सभी हस्तलेखों में ऐसा हुआ है अतः ये सभी प्रतियाँ स्व-सम्प्रदाय प्रतिष्ठार्थ किसी हठी प्रचारक द्वारा एक साथ लिपिबद्ध की गयी है। और उनकी पश्चात् प्रतिलिपियाँ होती रही हैं।[१८] यह क्रम १९वीं शती के बाद तक चलता रहा है।

२ भगवंत मुदित की निष्ठा यदि हितहरिवंशजी में थी और उनका भजन यदि उनके रंग में रंगा था तो स्वयं इन्होंने श्री हितहरिवंशजी का जीवन चरित क्यों नहीं लिखा। उनके पुत्रों-पौत्रों और उनके शिष्य-प्रशिष्यों का क्यों लिखा ? प्रमाणों से ज्ञात होता है कि वे स्वयं अपने गुरु और निज भजन-पद्धति में एकनिष्ठ थे तब अपने गुरुवर्य्य अथवा अन्य आचार्यों अथवा प्रसिद्ध महात्माओं का आख्यान करना क्यों अभीष्ट नहीं समझा ? जब ग्रन्थ का नाम 'रसिक अनंन्यमाल' है, तो इसमें स्व-सम्प्रदायी तथा अन्य समसामयिक रसिकमहात्माओं का उल्लेख करना उन्हें अभीष्ट होना चाहिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। फिर हितहरिवंशजी के जीवनकाल में हो इसका सृजन क्यों न किया गया ?

३ 'रसिक अनन्यमाल' में रचनाकाल नहीं दिया जबकि वृन्दावन-शतक भाषा में रचनाकाल सम्बन्धी दोहा दिया हुआ है। मुदितजी की इस रचना-पद्धति से इसमें अन्तर कैसे आ गया ?

४. सं० १७८९ की प्रति के बाद की सभी प्रतियों में प्रबोधानन्दजी के विषय में छंदों को बढ़ाया गया है, ऐसा 'रसिक अनन्यमाल' की भूमिका में श्री ललिताप्रसाद पुरोहित ने अभिमत व्यक्त किया है और बढ़े हुये अंशों के उद्धरण भी दिए हैं (दे० प्रस्तावना, पृ० २०-२१)। ऐसा परिवर्तन क्यों हुआ है ?

५ अनन्यमाल की प्रतियों में हरिदास स्वामी का चरित वर्णित है[१९] और प्रकाशित प्रति में वह चरित्र नहीं दिया गया। और यदि वह उत्तमदासजी की रचना है, तो उन्होंने तो 'रसिक अनन्यमाल' का संक्षेप किया है, फिर उसमें इस अतिरिक्त प्रसंग पर क्यों लिखा गया है। इसी प्रकार सनातन गो० और कृष्णदास अधिकारी के प्रसंग वहाँ क्यों और किस उद्देश्य से वर्णित हैं ?[२०]

६. 'रसिक अनन्यमाल' में वर्णित 'हितपदाश्रित व्यासजी जू को चरित्र' और सेवकजी का चरित उससे संलग्न उत्तमदासकृत व्यासजी का चरित्र तथा सेवकचरित्र शब्दशः क्यों मिलते हैं। सेवक चरित्र वस्तुतः रसिक अनन्यमाल का ही एक पृथक् अंश ह। कोई स्वतन्त्र रचना नहीं।

७. 'हितकुलशाखा' के लेखक जयकृष्णजी के रचनाकाल को स० १७६० बताया गया है। इस रचना में अपने पूववर्ती चरित्रग्रन्थकार [कथित रसिक अनन्यमाल के लेखक] का कहीं नाम तक न आने का क्या कारण है ? क्या 'रसिक अनन्यमाल' हितकुलशाखा के बाद की कृति है ? अथवा उत्तमदास जी द्वारा हितकुलशाखा से कई छन्दों को ज्यों-का-त्यों उठाकर रख लेने से क्या उत्तमदासजी की 'रसिक अनन्यमाल' की अनुक्रमणिका 'अनन्यमाल' भी परवर्ती रचना है ? इस प्रकार 'हरिवंश चरित्र' सं० १७६० के बाद की कृति ठहरती है जबकि गो० ललिताचरणजी उक्त कृति का रचनाकाल लगभग सं० १७४०-४५ अनुमानित करते हैं।[२१]

८. 'रसिक अनन्यमाल' की प्राचीनतम प्रति सं० १७८९ की बताई जाती है[२२] जबकि मुदितजी के वृन्दावनशतक भाषा की रचना सं० १७०७ में हुयी है। इससे उनके रचनाकाल की संगति नहीं बैठती। फिर उसमें भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तमदास को 'रसिक परचई' लगी हुई है। यदि उत्तमदासजी की रचना का काल वि० १७४०-४५ सं० (गोस्वामी ललिताचरण) मान लिया जाए, तो यह 'रसिक अनन्यमाल' इससे पूर्व की रचना सिद्ध नहीं होती और इस काल से भगवंतमुदित के रचना काल की संगति नहीं बैठती। फिर हितकुलशाखा में स्व-सम्प्रदायी पूर्व लेखक उत्तमदासजी का भी नामोल्लेख नहीं है।[२३] इसके विपरीत 'हितकुलशाखा' में कुछ प्रसंग अत्यन्त सक्षिप्त है और 'अनन्यमाल' में विस्तार से दिये गये हैं। यही नहीं गो० ललिताचरणजी की मान्यता है कि मोहनदासजी के प्रसंग के बाद श्रीजी को जन्मोत्सव समय वर्णन में श्री हितहरिवंश के जन्म का संवत् वृन्दावन आने के समय की उनकी अवस्था, उनके वृन्दावनवास की अवधि एवं उनके निकुंज गमन का संवत् दिया हुआ है। इस समय वर्णन का उल्लेख सं० १७६० में लिखित 'हितकु शाखा' में ही सर्वप्रथम हुआ था जो बाद को उन्होंने अपने ग्रन्थ में ग्रहण कर लिया।[२४] इससे भी उत्तमदास की रचना परवर्ती ठहरती है और उसके परवर्ती ठहरने से 'रसिक अनन्यमाल' का रचनाकाल सं० १७६० के पश्चात् का ठहरता है।

९. नवलदासजी के प्रसंग में जिस राजनीतिक घटना का उल्लेख हुआ है उसमें हेमू का हुमायूँ द्वारा मारा जाना उल्लिखित है। किन्तु हेमू को अकबर के सरक्षक बैरमखाँ ने मारा था। यह ऐतिहासिक महान् भूल भगवंत मुदित जैसे राजकर्मचारी (दीवान) द्वारा होना सम्भव नहीं। यह मात्र स्मृति-दोष नहीं कहा जा सकता यदि ऐसा ही था, तो मुदितजी को ढलती उम्र में (स्मृति की शिथिल दशा में) २३ वर्षों का इतिहास[२५] लिखने की क्या आवश्यकता थी ?

१० 'रसिक अनन्यमाल' के अनुसार राधावल्लभजी का मन्दिर श्री वनचन्द्र गोस्वामी की आज्ञा से उनके जीवनकाल में बना था। किन्तु श्री पुरोहितजी के मतानुसार वनचन्द्रजी का निकुंजवास सं० १६६५ में हुआ था। अतः उक्त मन्दिर इस सम्वत् से पूर्व बन चुका था।[२६] रसिक अनन्यमाल-कारने यह भी बताया है कि मन्दिर-निर्माण के एक वर्ष के बाद सुन्दरदासजी का देहान्त हो गया और श्री वनचन्द्रजी ने उनकी समाधि का निर्माण कराया था। इन परस्परविरोधी कथनों का समाधान क्या है ?

११. हरिराम व्यास जैसे धुरन्धर संस्कृत एवं ब्रजभाषा के पण्डित तथा सुकवि अपने गुरु माधवदास या समोखनशुक्ल का परित्याग कर हितजी के अनुयायी हो जाते हैं[२७] और वह भी नवलदास बैरागी द्वारा हितजी का एक पद सुनाए जाने पर ! स्वरचित 'स्वधर्म पद्धति'[२८] तथा पदों में सर्वत्र माधवदास तथा समोखन शुक्ल को ही उन्होंने अपना गुरु लिखा है। हितजी का किसी एक पद में भी गुरु के सदृश आदर पूर्वक स्मरण नहीं किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केवल एक रसिकसखा के रूप में ही वर्णन किया है। आश्चर्य तो तब होता है जब नवलदास वैरागी से 'नित्यविहार' का स्वरूप समझकर व्यासजी वैरागीजी को अपना गुरु न बनाकर, उनके आदेश से हरिवशजी को अपना गुरु बनाने की अभिलाषा लेकर, वृन्दावन की ओर चल देते हैं, तथा अपने साथ शास्त्र ग्रन्थों को ढोकर यमुना में आकर फक देते हैं। भला उन ग्रन्थों को साथ लाने की क्या आवश्यकता थी? यही नहीं हरिराम व्यासजी श्री हित हरिवंश को अपना दोक्षा[२९] और शिक्षा गुरु बनाकर भी अपने बड़े पुत्र किशोरदास को राधावल्लभमत में दीक्षित न कराकर स्वामी हरिदासजी से दीक्षित कराते हैं। इसका निष्कर्ष तो यह हुआ कि स्वामी हरिदासजी की निकुज भावना इन्हें हितहरिवशजो से ऊर्ध्व लगी होगी। डॉ० स्नातक जानते हैं कि चौरासी के पदों की रचना-प्रौढ़ता को देखकर ये पद श्री हितहरिवंशजी की साधना के चरमोत्कर्ष के समय लिखे गए होंगे। जबकि 'हित चौरासी' का ही एक पद 'यह जु एक मन' (सं० ५९) सुनकर हरीराम व्यास का वृन्दावनागमन माना जाता है। यह आगमन सं० १५९१ के पश्चात् ही ठहरता है।[३०] स्वयं हितहरिवश (स्वसम्प्रदायियों के मतानुसार) सं० १५९१ मे वृन्दावन आए थे। अतः इस पद के तब तक रचे जाने की प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाती है। 'भक्तमाल' तथा प्रियादास ने इस चमत्कारिक घटना का सकेत तक नहीं दिया है। और न उन्हें हितहरिवशजी का शिष्य ही बताया है। आज भी व्यासवंशी गोस्वामी परम्परा से माधव सम्प्रदाय के साथ ही अपना सम्बन्ध बताते हैं, राधावल्लभियों से नहीं। इसी सम्प्रदाय के व्यासवशी महात्मा विजयसखी से हंसराज बख्शी ने चैतन्यमत का दीक्षा ली थी। प्रसिद्ध पदकर्ता नीलसखी बुन्देलखण्ड में उत्पन्न[३१] चैतन्यमतानुयायी थे। जो व्यासजी को वंश-परम्परा में गो० आनन्दकरजी के पुत्र थे।[३२] वास्तविकता यह है कि सखीभाव की उपासना उन्हें अपने पूर्वाचार्यों एव वंश-परम्परा से मिली थी। सखी भावोपासना के प्रस्तोता न हितहरिवंशजी हैं और न स्वामी हरिदासजी। ऐतिह्य से यह और पूर्ववर्ती साधना है। वृद्धावस्था में लिखित पदों में अपने पिता समोखन शुक्ल को ही गुरु शब्द की आख्या दी है। व्यासवाणी का अन्तरंग परोक्षण करने पर डा० स्नातक को यह स्वीकार करना पड़ा है कि व्यासजी के नित्य-विहार वर्णन में सैद्धान्तिक सूक्ष्मभेद का अभाव है।[३३] कई स्थलों पर आपने ब्रजरस और निकुंजरस को समान रूप से लिखा है। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि व्यासजी ने राधावल्लभोय उपासना-पद्धति को स्वीकार करने से पहले ब्रजरस और ब्रजलीला का ज्ञान किया है।

१२. प्रबोधानन्द सरस्वती जैसे प्रकाण्ड पण्डित, रसिक और रससिद्ध कवि महाप्रभुजी का आनुगत्य छोड़कर हिताचार्यजी के शिष्य हो जाते हैं। श्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हितहरिवंशजी से १८ वर्ष पूर्व वे काशी से वृन्दावन आ चुके थे और 'वृन्दावन-महिमामृतम्', 'चैतन्यचंद्रामृतम्', 'संगीतमाधवम्', 'आश्चर्यरासप्रबन्ध', 'राधारससुधानिधि' बना चुके थे।[२५] ये सभी ग्रंथ भाव तथा विचार से परस्पर सम्बद्ध है और इन सभी में चैतन्य उपासना सिद्ध होती है। प्रबोधानन्दजी की परचई में बताया गया है कि वृन्दावन आकर उन्होंने एक मासवास किया। सब ठाकुर द्वार और सब आचार्यों के दर्शन किए। सब भक्तों के मतों को समझा, पर किसी का मत उन्हें पसन्द नहीं आया। किन्तु परमानंद रसिक द्वारा नित्य-विहार के रहस्यों को श्रवण कर वे हितहरिवंशजी के अनुगत होने के लिए 'मथुराकुटी से वृन्दावन आ गए। प्रबोधानन्दजी ने तभी हिताचार्य की स्तुति एक 'अष्टक' में की और अपनी चित्त-वृत्तियों को हरिवंशजी के समर्पण कर दिया, तभी करुणा कर उन्होंने नित्य-विहार का मर्म बताया जिसके कारण उन्हें 'श्री वृन्दावनशत' की स्फूर्ति हुई। वे 'हितजी की घाटी' के चाहक हो गए। उन्होंने अनेक कुंजरहस्य के ग्रन्थों का प्रणयन किया। इस सन्दर्भ में यह चर्चा करना असंगत न होगा कि गो० ललिताचरण ने उक्त विवरण की संगति बैठाने के लिए दो प्रबोधानन्द की कष्टकल्पना की है। एक को हिताचार्यजी का शिष्य बतलाया है और दूसरे को महाप्रभु चैतन्य का।[३६] किन्तु अनन्यमाल के जिन प्रबोधानन्दजी को हिताचार्यजी का शिष्य बताया गया है वे संन्यासी काशीवासी, सरस्वती, वृन्दावनशतक के लेखक प्रबोधानन्द वहीं हैं जो चैतन्यदेव के शिष्य थे।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय के हितचन्द्रलाल ने (वि०सं० १८२४) स्वयं 'वृन्दावनमहिमामृतम्' के श्लोकों का अनुवाद किया है जिससे 'रसिक अनन्यमाल' में वर्णित प्रबोधानन्द महाप्रभु चैतन्यदेव के अनुगत प्रमाणित होते हैं। भगवंत मुदित ने भी सं० १७०७ में 'वृन्दावनशत' में प्रबोधानन्दजी की कृति का अनुवाद करते हुए वन्दनात्मक अंशों के अनुवाद भी प्रस्तुत किए हैं।

तुलना कीजिए—

(क) प्रसादाद्यस्यैवाविदमहोद्ध राधा व्रजपतेः।
श्रीवृन्दावनमपि स गौरो मम गतिः॥
—वृन्दावनमहिमामृतम्, १७/३

श्री राधिका कंत रसवन्त वृन्दाविपिन प्रीतिरस रीति में तबहि हेरो।
श्री गौरवरचंद अरविन्द वृन्दाविपिन मुदित भगवंत सोई सुगति मेरी॥
—वृन्दावनशत (भगवन्त मुदित)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) हरे कृष्णकृष्णोतिकृष्णोतिमुख्याम् ।
महाश्चर्यनामावलीसिद्धमंत्रान् ।।
कृपामूर्त्तिचैतन्यदेवोपमीतान् ।
कदाप्यस्य वृन्दावनेस्याम् कृतार्थः ।।

—वृन्दावनमहिमामृतम्, १७/८९

अति आश्चर्य अनूप नामावलि पाई।
श्रीमुख श्रीचैतन्यदेव करुणानिधि गाई ।।
ताकों मन अभ्यास करि रटन गहूंगो रैन दिन ।
कब वृन्दावन की कुंज सो पाऊंगो आवरण बिन ।।

—वृन्दावनशत, भगवंतमुदित ।

(ग) तद्वृन्दावनमुन्मदेन रसिकद्वन्द्वेन केनाप्यहो ।
नित्यं क्रीडतया गृहीतमिह के विधुर्न गौराश्रयाः ।।

—वृन्दावनमहिमामृतम्, १७/२

श्री वृन्दावन उन्मद मदन, रसिक द्वन्द्व क्रीड़ा मगन ।
दुर्गम नहिं जान्यौ परै, बिना आसरे गौर तन ।।

—वृन्दावन शत (भगवन्तमुदित)

(क) श्रीवृन्दावनतत्वं श्रीराधाकृष्णयोस्तत्त्वम् ।
निजतत्वं च सदा स्मर यत्प्रकटितमस्ति गौरचन्द्रेण ।।

—वृन्दावनमहिमामृतम्, २/९५

जोई यहाँ तत्व गौर चन्द्र सो प्रगट भयो,
सोई अवलोकि मन मोद कों सदा गहौं।
वृन्दावन तत्व ज्यौं को त्योंहि दरसाय दयौ,
याही कौं विचार फिर या ही में सदा रहौ ।।
राधाकृष्ण तत्व जिन हिय में प्रकाश कर्‌यौ,
तिन ही कौ सुनो फिरि तिनके सदा कहौ ।
अपनों स्वरूप तत्व प्रथम विचार करौ,
तब अति दुर्ल्लभ ही चाह को सदा चहौं ।।

—वृन्दावनशतक, हितचन्द्रलालगोस्वामी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) श्रीराध-मुरलीमनोहरपदाम्भोजं सदा भावयन्।
श्रीचैतन्यमहाप्रभोः पदरजः स्वात्मानमेवार्षयन्॥
श्रीमद्भागवतोत्तमान् गुणनिधीनत्यादरादानमन्।
श्रीवृन्दावनदिव्यवैभवमहं स्तोतुं मुदा प्रारभे॥

— वृन्दावनमहिमामृतम्, १/१.

श्रीराधा मनमोहन की पदपंकज में चितभाव बढ़ैये।
श्री चैतन्य महाप्रभु की पद रेणु कौं अपने अंग लगैये॥
श्रीमद्भागवदोत्तम जे गुण की निधि हैं तिन्हें सीस नवैये।
श्रीवृन्दावन दिव्य विलास कह्यो में चहुँ हिय मोद में छैये॥

—वृन्दावनशतक, हितचन्द्रलालगोस्वामी।

कहा गया है कि प्रबोधानन्दजी ने हितजी की स्तुति की थी। वह 'श्रीहरिवंशाष्टक' हुई। प्रबोधानन्दजी इस कृति के लेखक तभी माने जा सकते हैं, जबकि वृन्दावनशतक, संगीतमाधव, आश्चर्यरासप्रबन्धदि ग्रन्थों में कहीं हिताचार्यजी का नामोल्लेख भी होता। जब 'रसिक अनन्यमाल' और गो० ललिताचरणजी मानते हैं कि प्रबोधानन्दजी ने हिताचार्यजी द्वारा 'वृन्दावन शत' उत्प्रेरित किया था, तो अपनी कम-से-कम इस रचना में एक श्लोक तो हिताचार्यजी की वन्दना में लिखा होता। इसके विपरीत इसमें तो सर्वत्र महाप्रभु चैतन्यदेव की वन्दना मिलती है। फिर इस 'अष्टक' की भाषा शैली प्रबोधानन्दजी के किसी भी ग्रन्थ की तुलना में अतिशय शिथिल और साधारण है। फिर इस 'अष्टक' की एक भी प्राचीन प्रति उपलब्ध नहीं है। अतः प्रबोधानन्दजी को हितहरिवंशजी का शिष्य बतलाना; उनके द्वारा कोई 'अष्टक' लिखा जाना; वृन्दावनशतक लिखने की प्रेरणा हितहरिवंशजी से मिलने अथवा कुंजकेलिविषयक अनेक ग्रन्थ उनकी प्रेरणा से लिखना आदि वृत्त अप्रामाणिक और असंगत है और दो प्रबोधानन्दजी की कष्ट-कल्पना कर भ्रान्ति प्रतिपादित करने का प्रयास अर्थहीन प्रतीत होता है।

१३. 'रसिक अनन्यमाल' की रचना परिपाटी भगवन्त मुदितजी की रचना-पद्धति से बिल्कुल मेल नहीं खाती। भगवन्त मुदित के पदों और वृन्दावन शतक के अनुवाद से यह तथ्य भी सामने आता है कि वे रागमार्ग के एकान्त उपासक थे। श्री हितहरिवंशजी के पुत्रों-पौत्रों और उनके शिष्यों-प्रशिष्यों की 'परचई' लिखने के लिये वे प्रयत्नशील क्यों होते ?

अतः हमारा निष्कर्ष है कि 'रसिक अनन्यमाल' भगवन्त मुदितजी की रचना नहीं हो सकती। चैतन्यदेव के वन्दनात्मक अंशों के होने से भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह उनकी कृति नहीं ठहरती। विशिष्ट महात्माओं और महान् भक्त-कवियों को अपने सम्प्रदाय का वताकर तथा स्वसम्प्रदाय का बढ़ा-चढ़ा कर वैभव दिखाने के लिए ही लिखी गयी एक सर्वथा भ्रामक, असत्य और सोद्देश्य कृति है। अपने सम्प्रदाय का इतिहास प्रामाणिक बताने के लिए भिन्न सम्प्रदाय के महात्मा के नाम इस कृतिको जानं बूझकर आरोपित कर बड़ी चतुराई से काम लिया गया है। गो० ललिताचरणजी स्वीकार करते हैं कि चैतन्य और राधावल्लभ सम्प्रदायों में १८वीं और १९वीं शती में पारस्परिक झगड़ों ने उग्ररूप धारण कर लिया था और दोनों सम्प्रदाय अपने पक्ष को प्रमाणित सिद्ध करने के लिए प्राचीन ग्रन्थों में इस झगड़े के नए अध्याय जोड़ रहे थे। हरिव्यास देवाचार्य की शिष्य परम्परा के श्री भगवतरसिकदेव (सं. १८३०-५०) ने इस स्थिति का निम्नलिखित रूप से सकेत किया है—

भरता कै द्वै भामिनी वसै एक ही गांव।
सेवा साधै ओसरनि तोरै पति के पाँव।।

तोरैं पति के पाँव सौतियारो सो माने।
ऐसे हि सब मतवाद करैं खंडन मत आनै।।

आचारज अभिमान आपकौं मानें करता।
तजि विरोध नहि भजहि आपनौ भगवतभरता।।

—श्री भगवतरसिक देवकी वाणी, पृ. ७२, छ. १५

इस प्रकार हमारी यह धारणा है कि रसिक अनन्यमाल' सम्प्रदाय विशेष का पक्ष लेकर 'भगवंतमुदित' पर आरोपित किया गया ऐतिह्य-विरुद्ध ग्रन्थ है जिसका मुख्य उद्देश्य प्रबोधानन्द सरस्वती और हरीराम व्यासजी को तथा उनकी रचनाओं को राधावल्लभी वताना है। उत्तमदास की परचई भी इस प्रक्रिया को पुष्ट करने वाली कृति है, जो अजागलस्तन की भाँति अनन्यमाल के साथ सम्बद्ध मिलती है। ये दोनों ही रचनाएँ १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बाद की हैं। और शुद्ध प्रचार दृष्टि से लिखी गई कृतियाँ हैं। इसमें दिए गए वृत्तों को प्रामाणिक मानकर जिस योजनावद्ध रीति से कार्य हो रहा है, उससे वृन्दावन की पवित्र भूमि में बड़ी कटुता पैदा हो गई है। ऐसा लेखक ने स्वयं अनुभव किया है। महंत किशोरदासजी रचित 'निजमतसिद्धान्त' (संवत् १९६८ में प्रकाशित) के अवसान खण्ड, पृष्ठ १६९ पर यह वर्णन है कि जयगोपाल और उदयचन्द बनिया पहिले हितकुल के बड़े सेवक थे, परन्तु बाद में वे टट्टी स्थान के रसिकदेवजी के शिष्य हो गए थे। इससे तत्कालीन श्रीहितसेवाधिकारी रूपलालजी क्रुद्ध हो गए और उन्होंने आगरे वाले हरिजी बनिया से एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पौथी 'रसिकमाल' की लिखाई।[३७] भले ही यह बात सच न हो, तो भी यह मानना होगा कि 'रसिक अनन्यमाल' के लिखाने और भगवंत मुदित के नाम इसे आरोपित करने के पीछे निगूढ उद्देश्य है। इस निगूढ उद्देश्य को समझे बिना 'रसिक अनन्यमाल' को प्रायतः विद्वानों ने चैतन्य सम्प्रदायी भगवंतमुदित कृत रचना मान लिया है, जो ठीक नहीं। किसी ने इस 'रसिक अनन्यमाल' और 'हरिवंश चरित्र' के लेखक को एक माना।[३८] किसी ने प्रथम को भगवंत मुदित कृत और दूसरी को उत्तमदास कृत माना।[३९] डॉ० स्नातक जैसे विद्वान भी द्विविधा में पड़ गए।[४०] किन्तु अन्यत्र उन्होंने भगवन्तमुदित द्वारा 'हरिवंश चरित्र' लिखा जाना माना।[४१] किसी ने 'रसिक अनन्यमाल' में ३३ चरित्र माने।[४२] किसी ने ३४[४३] और किसी ने अधिक।[४४] किसी ने 'सेवक चरित्र' को रसिक अनन्यमालकार की रचना माना।[४५] किसी ने उक्त दासकृत और किसी ने 'रसिक अनन्यमाल' का 'सेवक चरित्र' को अभिन्न अंश।[४६] किसी ने 'रसिक अनन्यमाल' नामक रचना उत्तमदास द्वारा लिखित माना।[४७] उक्त सभी भ्रान्तियां क्यों और कैसे फैली इसका निराकरण एक वाक्य में यही है कि 'रसिक अनन्यमाल' एक जाली ग्रन्थ है जिसके कारण ये भ्रम सहज में पोषित होते रहे। यदि कोई निष्पक्ष विद्वान् हमारी विचार-सरणि की, तथ्यों के आलोक में परीक्षा करे, तो उसे हमारे जैसा निष्कर्ष गृहीत होगा। 'वृन्दावन शत भाषा' में चैतन्य सम्प्रदाय के प्रसिद्ध रससिद्ध संस्कृत कवि प्रवोधानन्दजी के वृन्दावनमहिमामृतम्' से १४५ श्लोकों का पद्यबद्ध अनुवाद है। यह एक शतक विशेष का अनुवाद न होकर भगवन्तमुदितजी द्वारा चुने श्लोकों का अनुवाद है। इसकी रचना वि० सं० १७०७ में हुई है।

वृन्दावन की श्री, स्वरूपता का तो वर्णन इसमें है ही। राधा-कृष्ण की लीलाओं एवं सखी-सहचरी-मंजरी का भी सुन्दर सरस कथन इसमें हुआ है। 'वृन्दावनमहिमामृतम्' के अनुवादों की परम्परा का यह प्रस्तोता ग्रंथ है। इसे वैष्णवों के नित्यपाठ की वस्तु समझना चाहिए। नित्यविहार के विधायक तत्व और वैष्णव आचार-विधान का इसमें गम्भीर कथन हुआ है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय में इस अनुवाद परम्परा का अच्छा निर्वाह हुआ है।

इनके द्वारा रचित २०७ पदों का उल्लेख गो० ललिताचरण ने किया है।[४८] हमारी शोध में कुल ५ पद इनके द्वारा विरचित विभिन्न ह० लि० प्राचीन पोथियों से मिल सके है जो संगीत को राग-रागनियों में निबद्ध है।[५०] इन पदों में राधाकृष्ण का प्रेम-माधुर्य, नाम-स्तुति, नित्यविहार, झूलन आदि का सरस वर्णन किया गया है। रूप-शोभा और प्रेम-वृत्ति के ये अद्भुत चितेरे हैं। इनकी रचना के दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(राग विहागरौ)

हाहा हरि नैंक हरें हरें झूलौ ।
हौं वारी बिहारी जू सारी सवारी पटुली पग
ठहरत नाहीं थहराति पिंडुररी फहरात दुकूलौ ।।
टूट्यौ हार गजरा गिरि गयौ,
छूटी है बेनी षिस्यौ सीस फूलौ ।
गोकुलनाथ जू प्यारी तिहारी,
संभारति नाहिं अजूहूँ लौ ।।
हा हा बलि नैंक हरै हरै झूलौ ।
यों कहति बिहारी प्यारी सौं देषौई,
चाहत बदनमाधुरी सुमन मनोरथ फूल्यौ ।
अति आतुर चातुर चित चंचल ।।
कौतिककाम छुवत जुज भूलौ ।
'भगवत मुदित' झुलाय भाय रति लाय,
लई दुलहिनि अरू दूल्हौ ।।

(राग जैत श्री तथा पंचम मूलताल)

देखे नव निकुंज रस पुंज गुंज अति जहां तहां आनंद रह्यो छाइ ।
रूप रासि सुख रासि रासि रस रसिक मुकुट मणि कुंवर-कुंवरि
दोउ रहे रुप सम्पति लुभाइ ।
करत केलि रस झेलि मेलि भुज कनक वेलि नव बवाल लाल को ।
तकि तमाल रहे कंठ लाइ ।
धाय गौर चहूं ओर चमकि छबि चक्रत होति चौंधी छवि की
'भगवन्त मुदित' सु कही न जाइ ।।[५१]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ :—

१. भागवत सम्प्रदाय: बलदेव उपाध्याय, पृ० ४२२, मिश्रबन्धु विनोद, भाग दो, सं० ३६६, पृ० ४५५, खोजरिपोर्ट ०९/२३ सी, सरोज सर्वेक्षण डॉ० किशोरीलाल गुप्ता, पृ० ५१६.

२. हितहरिवंश गोस्वामी: सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० १७, रसिक अनन्यमाल सं० ललिताप्रसाद पुरोहित, पृ० १२ (प्रस्तावना)

३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग १, पृ० ६४, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, द्वारा लिखित निजी पत्र

४. कुंजविहारी केलि सदा अभ्यंतर भासैं ॥
दम्पति सहज सनेह, प्रीति परिमिति परकासैं ॥
अनन्य भजन रसरीति, पुष्टि मारग करि देखी ।
विधि-निषेध बल त्यागि, पागि रति हृदय विसेखी ॥
माधवसुत संमत रसिक, तिलकदाम धरि सेव लिय ।
'भगवंतमुदित' उदार जस, रस रसना आस्वाद किय ॥
—भक्तमाल, ६, सं० १९८.

५. भक्तिरसबोधिनी टीका, क० सं० ६२६-६२९.

६. रामराय कामादिक टारे ।
श्री भगवंत मुदित अति प्यारे ॥
—भक्ति सुमिरनी, यो० २२९

७. गदाधर पण्डित गोसाई शिष्यवर्य ।
गोविन्देर अधिकारी अनन्ताचार्य ॥
ताहार शिष्य हरिदास पण्डित गोसाई ।
गोविन्दाधिकारी गुणकरि अंतनाई ॥
—भक्तिरत्नाकर

८. सेवार अध्यक्ष श्री पण्डित हरिदास ।
ताँर जस गुण सर्व जगते प्रकाश ॥
—चैतन्यचरितामृत

९. प्रभोर आज्ञा बलेमार्पि श्री रूपेण कृपाब्धीन ।
गुरौ में हरिदासाक्षे श्री श्री सेवा समर्पिताः ॥
—साधनदीपिका,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुशील सहिष्णु शान्त वदान्य गम्भीर ।
मधुरवचन मधुर चेष्टा अतिधीर ॥
सभार सम्मानकर्त्ता करेन सभार हित ।
कौटिल्य मात्सर्य हिंसा नाजाने ताँरचि ॥

—चै० च० आ०ली० ८/५०.५२

१०. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, सं० २४३ से भी गोविन्ददेवजी के अधिकारी का ज्ञान होता है किन्तु आश्चर्य की बात है कि वार्ताकार ने स्वसम्प्रदाय की मानवृद्धि के लोभ में तथ्यों को बड़ा विकृत किया है। प्रियादासजी ने जो तथ्य भगवंत मुदित के विषय में कहे हैं वे वहाँ भगवानदासजी के विषय में कथित है। उससे ज्ञात होता है कि ये अंश प्रियादासजी की रचना के बाद के हैं और भगवंत के स्थान पर भगवानदास से सम्बद्ध कर दिये गये हैं।

११. संवत दस पै सात सै सात वरस है जानि ।
चैत्रमास में चतुरवर भाषा कियौ बखानि ॥ —वृन्दावनसत

१२ भक्तमाल, छप्पय, सं० १९८.

१३. परमानन्द माधौ मुदित नव किसोर कल केलि ।
कहीं रसीली भाँति सों तिहि रस में रहे झेलि ॥

—भक्तनामावली (ह० लि०) वा० सं० ८१.

१४. श्री हितहरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० १७.
रसिक अनन्यमाल (वेणु प्रकाशन, वृन्दावन), प्रस्तावना, पृ० ५.

१५. यह प्रति बाबा कृष्णदासजी कुसुमसरोवर वालों के निजी संग्रह में है जिससे हमने स्वयं प्रतिलिपि की है।

१६ भक्तिरसबोधिनीटीका, कवित्त, सं० ६३०

नोट :—यह घटना 'भक्तमाल' में माधव के नामोल्लेख होने से हुई है। प्रियादास ने इससे पूर्व के कवित्त में माधवमुदित के लिए रसिक संज्ञा का प्रयोग किया है। माधवमुदित की छापका एक पद छुट्टनभट्टजी की समाज पोथी से (लि० का० १७५२ या १७९२) से हमने संग्रह किया है।

१७. श्री हितहरिवंश: सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० १७, रसिक अनन्यमाल, पृ० ११ (प्रस्तावना , नोट :—'हितसंगी रंगी भजन' से उन्होंने स्वाभीष्ट अर्थ कर कष्टकल्पना की हैं। इस पदावली का बस इतना ही प्रकृत अर्थ है कि हितजी के संगी और रगी (रसिक महात्मा के भजन कहने सुनने में मंगल है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१८. मिश्रबन्धु आदि विद्वानों, शोधकर्त्ताओं को भी 'अनन्यमाल' के पूर्व 'हितचरित्र' लगा देखकर भ्रांति हो गयी और उसे भगवन्त मुदित की रचना मान बैठे जो स्वाभाविक है। डा० स्नातक जैसे गम्भीर शोधक को भी 'रसिक अनन्यमाल' में 'हरिवंश चरित्र' लगा होने से संदेह हो जाता है कि यह मुदित और उत्तम में से किसकी रचना है जबकि इसी सम्प्रदाय के विद्वान् उसे उत्तमदासजो की रचना मानते चले आ रहे हैं।

१९. खो० रि० ३८/२२वीं और ३८/१५ के क्रमशः हितजी के कृपापात्र और अनन्यमाल के रचयिता क्रमशः चन्द्रलालहित और हित उत्तमदास बताए गए हैं। इन दोनों कृतिओं के विवरण प्राय. एक जैसे हैं। प्रथम ग्रन्थ के विषय में शोधकर्त्ता की टिप्पणी यह है कि वह उत्तमदासजी के ग्रन्थ से मिलता है। इनमें ३३ कृपापात्रों का वर्णन है। इनमें स्वामी हरिदास, सनातन, कृष्णदास, प्रबोधानन्द, हरीराम व्यास के भी प्रसंग हैं।

२०. श्री पुरोहितजी ने 'अनन्यमाल' को 'रसिक अनन्यमाल' की अनुक्रमणिका कहा है (र० अ० आ० प्रस्तावना पृ० १३)। श्री हितहरिवंश के चरित्र को छोड़कर इसमें ३३ प्रसंग हैं किन्तु पुरोहितजी द्वारा सबसे पुरानी कही जाने वाली प्रति (लि० का० १७८९) का जो सम्पादन हुआ है उसमें ३४ प्रसंग हैं। श्री चैतन्य पुस्तकालय पटना की ह० प्र० जिल्द नं० ४५६ में नरवाहनजी का प्रसंग नहीं है, किन्तु उत्तमदास कृत 'हरिवंश चरित्र' या 'रसिक परचई' में पहले क्रमांक पर ही नरवाहन का चरित्र वर्णित है।

२१. द्रष्टव्य: श्री हितहरिवंश गोस्वामी: सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० २४.

२२. वही, पृ० २२.

२३. डॉ० स्नातक द्वारा लेखक को लिखे पत्रानुसार दिनांक १३-४-१९६५ बताया है कि हितकुलशाखा ग्रथ में भगवन्त मुदित के रसिक माल का नाम इसलिए नहीं लिखा गया कि मुदित हित कुल के अनुयायी नहीं थे। किन्तु, चाचा वृन्दावनदास (वि० सं० १८४४) के एक पद में भगवन्त मुदितजी द्वारा रसिक परचैयादाम लिखने की चर्चा की गयी है। [रसिक अनन्यमाल की प्रस्तावना, पृ० ६ की पाद टिप्पणी]। अतः इन दोनों में विसंगति उत्पन्न होती है। किसे प्रामाणिक माना जाय, किसे अप्रामाणिक ?

२४. वही, पृ० २३-२४.

२५. हिताचार्य का वृन्दावनागमन सं० १५९१ बताया जाता है और उनके प्रपौत्र दामोदरचन्द्र गोस्वामी का निकुञ्ज-गमन सं० १७१४ माना जाता है। इस प्रकार १२३ वर्ष होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२६. दे० रसिक अनन्यमाल की प्रस्तावना, पृ० १६.

२७. परचई में उनसे मंत्र लेने का उल्लेख है। स्वगुरु का परित्याग करना शास्त्रों में सर्वथा निषिद्ध है। फिर व्यासजी तो राजपुरोहित तथा समर्थ शास्त्रज्ञ थे। ऐसा अनर्थ वे क्यों करते ? हितजी का पद सुनकर मुग्ध हो जाना एक बात है, किन्तु उसे सुनकर अपने गुरु और भजन रीति को छोड़ना समझ में नहीं आने वाली बात है। भागवत-लीला-गान करने के कारण ही उनको 'व्यास' कहा जाने लगा था।

२८. इसी रचना का नाम 'नवरत्न' है, और यह व्यासजी कृत प्रामाणिक रचना है। डा० स्नातक भी ऐसा ही मानते हैं, किन्तु अप्राप्य बतलाते हैं।

२९. डॉ० स्नातक पुनः दीक्षा मन्त्र लेने का उल्लेख करते हैं। उनकी इस धारणा से हमारा मतैक्य नहीं।

३० अनन्यमाल के अनुसार व्यासजी की आयु तब ४२ वर्ष की बताई है जिससे व्यासजी का जन्म सं० १५४९ निकलता है। किन्तु, व्यासजी का दीक्षा-काल उनके ही प्रसंग में अनुपलब्ध है।

३१. इनका जन्म वासुदेव गोस्वामी के मतानुसार सं० १८०० है (भक्त कवि व्यासजी)

३२. ब्रजभारती, वर्ष १६, अंक १०-१२.

३३ अनन्यमाल के मतानुसार 'निकुञ्जरसोपासना' का रहस्य पहले नवलदास बैरागी पश्चात् साक्षात् हितहरिवंशजी से उन्हें मिला था।

३४. इस रचना के विषय में राधावल्लभियों का कहना है कि ये हितहरिवंशजी के अवोध शैशव में (षण्मास में बखान्यौ) उनके श्रीमुख से प्रादुर्भूत हुई थी, जिसे उनके ताऊ नृसिंहाश्रमजी ने सम्पादित किया। इस महान् चमत्कार का किसी सम्प्रदायेतर प्राचीन ग्रन्थ में कहीं उल्लेख नहीं है।

३५. इन सभी कृतियों की भाषा-शैली परस्पर अविनाभाव से मिलती है तथा चैतन्यदेव के प्रति वन्दनात्मक श्लोक इसमें अनुस्यूत हैं। किन्तु, 'राधारससुधा-निधि' और 'वृन्दावनमहिमामृतम्' के वंदनात्मक श्लोकों को राधावल्लभी प्रक्षिप्त बतलाते हैं। जबकि 'वृन्दावनमहिमामृतम्' के श्लोकों के राधावल्लभी अनुवादों में भी चैतन्यदेव के प्रति वन्दनात्मक श्लोक ज्यों-के-त्यों अनूदित हैं।

३६ श्री हितहरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० ५५२-५७४.

३७. भक्त कवि व्यासजी, पृ० ६१.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३८. मिश्र बन्धु विनोद, भाग-२, पृ० ४५५.

३९. वेदप्रकाश गर्ग, शोध पत्रिका, साहित्य संस्थान, उदयपुर, राजस्थान, भाग-८, वर्ष १९५६, अङ्क १-२.

४०. राधावल्लभ सम्प्रदायः सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ६६.

४१. वही, पृ० १००, भक्तकवि व्यासजी, पृ० २५ तथा भागवत सम्प्रदाय, पृ० ४२२, सूर और उनका साहित्य, डॉ० हरवंशलाल शर्मा, पृ० १५५, (मालवीय पुस्तकालय)

४२. खोज रिपोर्ट, सं० पं० विद्याभूषणमिश्र, ३८/२२ बी, पृ० १२७.

४३. रसिकअनन्यमाल, सं० ललिताप्रसाद पुरोहित, वैणुप्रकाश, वृन्दावन।

४४. श्री गौरांग, सं० ब्रजरत्नदास, वर्ष ३, अङ्क ४, पृ० १२.

४५. खोज रिपोर्ट, ०९/२३ बी, भक्त कवि व्यासजी, पृ० ५६.

४६. चैतन्य मत और ब्रज साहित्य पृ० २०९.

४७. भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २५, पाद टिप्पणी भी देखें. खो० रि० वि० राष्ट्र० परि०, चौथा खण्ड, सं० ३६४ लि० का १८७४ सं०

४८. खोज रिपोर्ट ३२/संख्या ७३ पर उसका रचयिता आनन्दघन दिया है, किन्तु वह भ्रम है। जो विवरण दिया गया है वह भगवन्त मुदित के वृन्दावन सत का ही है। अन्तिम अंश में भगवन्त मुदित का नामोल्लेख भी है। आनन्दघन शब्दोल्लेख से शोधकर्त्ता को भ्रमित हो जाना पड़ा है।

४९. बहुत प्रयत्न करने पर भी इन पदों की प्रतिलिपि न मिल सकी। कहा गया है कि गो० नवललाल (राधावल्लभी) के संग्रह में ये पद हैं।

५०. ये राग हैं- संकराभरन, जैतश्री, गौड़सारंग, बिलावल, विहागरौ।

५१. द्रष्टव्य—लेखक कृत चैतन्य-सम्प्रदाय: सिद्धान्त और सहित्य, पृ० ४९८.

डॉ० नरेशचन्द्र बंसल
एम०ए०, पी-एच०डी०
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
के० ए० स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
कासगंज (उ० प्र०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कागा (जोधपुर) छतरियों के अभिलेख

जोधपुर में नागोरी द्वार के उत्तर में कागा श्मशान घाट बना हुआ है। महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) ने काबुल से अनार के बीज लाकर लगवाये और यहां बड़ा बाग लगवाया था। यह स्थान पहाड़ियों से घिरा हुआ है। एक पहाड़ी पर शीतलादेवी का प्राचीन मन्दिर है जहां शीतला अष्टमी को भव्य मेला लगता है। वैसे महाराजा जसवंतसिंह ने जोधपुर शहर की शोभा बढ़ाने के लिये यहां उपवन लगाया था, परन्तु उनकी आज्ञा से ही स्वामिभक्त राजसिंह कूंपावत (प्रधान) का दाहसंस्कार सर्वप्रथम यहीं पर किया गया। तत्पश्चात् जोधपुर राज के उमरावों का यहीं अन्तिम संस्कार होने लगा और इस कागा उपवन ने श्मशान घाट का रूप ले लिया।

यहां पर छोटी मोटी करीब १०० छतरियाँ (देवलियाँ) बनी हुई है जिनमें से अधिकांश छत्रियों के शिलालेख लुप्त हो गये हैं। इससे यह पता नहीं चलता कि ये छतरियाँ कब और किसके पीछे बनाई गई हैं। उपर उठी हुई चौकियों पर लाल पत्थर को बनी ये छतरियाँ ४, ६, १४, २० और २२ स्तंभों की तथा अलग-अलग आकार को है। इन पर चढ़ने के लिये पूर्व दिशा में सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुछ एक छतरियों में पत्थर की शिलाएं लगी हुई हैं, जिन पर अश्वरोही प्रतिमाएँ एवं लेख उत्कीर्ण हैं। लेख देवनागरी लिपि एवं राजस्थानी भाषा में हैं। और कहीं-कहीं संस्कृत के शब्दों का भी उपयोग हुआ है। इन पुतलियों के मुख पूर्व की ओर है और इनकी सुरक्षा के लिये अहाते भी बने हुए हैं। इन शिलाखण्डों पर मुख्य रूप से दिवंगत उमरावों के नाम, मृत्यु-समय और छतरियों के प्रतिष्ठा किये जाने का समय अंकित है। विक्रम संवत् के साथ कहीं-कहीं शक संवत् भी दिया है। कतिपय प्रमुख छतरियों और अभिलेखों का विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. राजसिंह कूंपावत का छतरी-अभिलेख

कागा की छतरियों में राजसिंह कूंपावत की छतरी सबसे प्राचीन और विशाल है। यह ऊपर उठी हुई विशाल चौकी पर २० स्तंभों की बनी हुई है और इस पर चढ़ने के लिये ३१ सीढ़ियें लगी हुई हैं। छतरी के बीच एक शिलाखण्ड पर राजसिंह की अश्वारूढ प्रतिमा बनी हुई है। आगे उसकी स्त्री हाथ जोड़े शान्त भाव से दिखाई गई हैं। नीचे तीन और स्त्रियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रमश: सितार, वीणा और ताल हाथ में लिए खड़ी है। लेख इस प्रकार उत्कीर्ण है—

अभिलेख –

पं. सं. १. श्री गणेशाय नमः संवत् १७०१ वर्ष शाके १५६६ प्रवर्तमाने उत्तरायनगते सूर्य ग्रीष्म ऋतौ महामांग-

,, ,, २. लाप्रद अषाढ़ मासे शुक्ल पषे प्रत पदाया तथो भोमवासरे राठौड़ श्र षमाजी सुत राज

,, ,, ३. श्री राजसहज महासती श्री राजकुवर भटियाणी जेसलमेरी वरदसन री बेटी षवस

,, ,, ४. कुंजदासी कवला गुणरेषा यस्मीन हनेष्ट अकल.... इदमत्र सा पुत्र प्रत पिता च

,, ,, ५ संवत १६९७ वर्ष शाके १५६२ पोष वद ५ दन अत्र दन.

,, ,, ६ समय मुक्त रात्रि गत घटी ९ स‍ये दवगते सर्गलोके ॥

इस अभिलेख से यह पता चलता है कि पोष वदि ५ को ९ घड़ी रात्रि व्यतीत होने पर संवत् १६९७ में राठौड़ खेमा के पुत्र राजसिंह का देहावसान हुआ। उसकी ठकुरानी जैसलमेर के भाटी वरदेस (वैरोदास दयालदासोत) की पुत्री राजकुँवरी सती हुई। साथ में उसकी उपपत्नियाँ कुन्जदासी, कमला और गुणरेखा भी सती हुई। छतरी की प्रतिष्ठा संवत् १७०१ अषाढ़ सुदि १ मंगलवार को की गई।

महाराजा गजसिंह की मृत्यु के पश्चात् जसवंतसिंह संवत १६९५ में उत्तराधिकारी हुए। उस समय वे केवल १२ वर्ष के ही थे। इसलिये शाहजहां ने राजकार्य की देखरेख एवं सुव्यवस्था के लिये राजसिंह कूंपावत को प्रधान पद पर नियुक्त किया और उसे १००० जात, ४०० सवार का मनसब प्रदान कर सम्मानित किया।[1] राजसिंह ने राज्य का उत्तम प्रबन्ध किया। उसकी मृत्यु के बारे में ऐसा कहा जाता है कि एक वार महाराजा रात्रि में भ्रमण कर रहे थे तो उनको प्रेत लग गया। महाराजा के स्वास्थ्य लाभ के लिये राजसिंह कूंपावत ने महाराजा के ऊपर से अंवारा हुआ पानी पीया, जिससे वह इस अस्थायी संसार से विदा हो गये।[2] राजसिंह ने मरते समय अपने वंशजों से कहा था कि यदि तुम में इस प्रकार के त्याग की भावना हो तो राज्य का प्रधान पद स्वीकार करना, अन्यथा नहीं। कूंपावत राठौड़ों ने फिर इस पद को ग्रहण नहीं किया। राजसिंह के पुत्र नाहरखान ने इस विशाल छतरी का निर्माण कराया।[3]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. बखतावरसिंह का छतरी-अभिलेख

यह बहुत छोटी चार स्तंभों की छतरी है, किन्तु इसमें खुदा हुआ लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें लगे शिलाखण्ड पर दो अश्वरोही प्रतिमाएं उत्कीर्ण है और उनके हाथ में तलवारें हैं।

अभिलेख— श्रीरामजी

पं. सं. १. हजारी मानधाता जीवो बेटो केवलराम हजावी उदासी-

,, ,, २. घ रो भाई बषतावरसिघ गांव सहदड़ा में काम आ-

,, ,, ३. यो गाव गोढवाड़ रो संवत् १८५७ रा असाढ़ वदी १३ ती-

,, ,, ४. ०१ उपर छतरी कराई संवत् १८८१ रा आसोज सुदी ६

,, ,, ५. उदासींघजी कराई छै।

इस अभिलेख से यह पता चलता है कि आसाढ़ वदि १३, १८५७ को साकदड़ा के युद्ध में उदयसिंह का भाई बखतावरसिंह तथा साथ में उसका एक अनुचर काम आया। इन योद्धाओं की याद में आश्विन सुदि ६, १८८१ में छतरी बनाई गई।

जोधपुर के महाराजा भीमसिंह और मानसिंह के बीच साकदड़ा गांव में युद्ध हुआ था जिसमें भीमसिंह की ओर से रामा का ठाकुर अमरसिंह जोधा और मानसिंह की ओर से खेजड़ला का ठाकुर जोधसिंह भाटी काम आये।[४] जोधपुर के इतिहास में न तो इस युद्ध का समय दिया है और न ही वीर गति प्राप्त योद्धाओं में बखतावरसिंह का नाम है। इस अभिलेख में साकदड़ा के युद्ध का समय अंकित है। बखतावरसिंह के ठिकाने आदि की जानकारी सुलभ नहीं हुई हैं।

३. बुधसिंह चांपावत का छतरी-अभिलेख

६ स्तंभों की बनी छतरी में लगे शिलाखण्ड पर अश्वारूढ बुधसिंह चांपावत की प्रतिमा बनी हुई है और नीचे लेख खुदा है।

अभिलेख—

पं. सं १. हरीया डाणा

,, ,, २. राठौड़ बुधसिघ सूरतसिघोत षांप चां-

,, ,, ३. पावत विठलदासोत रांम सरण संवत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पं. सं. ४. १८७५ रा मिती काती सुद १३ हुवा तिण ऊप-

,, ,, ५. र छत्ररी कराई जिणरी प्रतिष्ठा संवत १८६६

,, ,, ६. रा मिती वैसाष सुद २ बुधवार रा कीवो ।

इस अभिलेख से यह विदित होता है कि हरियाढाणा ठाकुर सूरतसिंह चांपावत राठौड़ के पुत्र बुधसिंह का निधन कार्तिक सुदि १३, १८७५ में हुआ और छतरी की प्रतिष्ठा वैशाख सुदि २, बुधवार, १८६६ में की गई ।

बुधसिंह चांपावत जोधपुर महाराजा विजयसिंह, भीमसिंह और मानसिंह की सेवा में रहा था । यह पोकरन ठिकाने का वकील भी रहा था । संवत् १८४७ में मराठों और विजयसिंह के बीच होने वाली संधि में बुधसिंह ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी । चांपावत राठौड़ों में बुधसिंह बड़ा बुद्धिमान्, प्रभावशाली और चतुर व्यक्ति हुआ ।

४. स्वरूपसिंह सोहड़ का छतरी-अभिलेख

झालामण्ड ठाकुर गंभीरसिंह सीसोदिया के थडे[५] के आगे स्वरूपसिंह की छत्री विद्यमान है । शिलाखण्ड पर अश्वरोही स्वरूपसिंह के एक हाथ में भाला और दूसरे हाथ में घोड़े की लगाम है । नीचे लेख खुदा है ।

अभिलेख — ।। श्री ।।

पं. स. १. राठौड़ ठाकुरां राजश्री सरूपसिंघजी भाइलसिंघोत षांप

,, ,, २ सोहड़ समत १८८५ रा सांवण सुदि १४ रा रामसरण हुया तीणां

,, ,, ३. उपर छत्री कराई जिणरी प्रतिष्ठा समत १८९२ रा फागण वद ६ सो-

,, ,, ४. मवार हुई ।

इस अभिलेख से पता चलता है कि भाईलसिंह का पुत्र स्वरूपसिंह सोहड़ का निधन श्रावण सुदि १४, १८८५ में हुआ और छतरी की प्रतिष्ठा फाल्गुन वदि ६, १८९२ में हुई । इसका देहान्त महाराजा मानसिंह के राज्यकाल में हुआ, अतः यह उक्त महाराजा की सेवा में रहा होगा ।

५. इन्द्रसिंह चांपावत का-छतरी अभिलेख

१४ स्तंभों की बनी छतरी में लगे शिलाखण्ड पर अश्वारूढ इन्द्रसिंह की प्रतिमा बनी हुई है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिलेख — ।। श्री परमेश्वजी ।।

पं. स १. स्व स श्री संवत १८८५ रा शाके १७५० रा मोसाध वदि ठाकरां

,, ,, २. राज श्री १०८ श्रो किलांणसिघजो तत्पुत्र इद्रसिघजी देवलोक हु-

,, ,, ३. वा तिण उपर छत्रि कराई प्रतिष्टा करि संवत १६१७ रा शाके १७८-

,, ,, ४. २ रा असाढ़ मासे सुकल पक्षे तिथो १० दशम्यां गुरुवासरे स्वाँत न-

,, ,, ५. क्षत्र कत्पाल ने सुभ वेलाया प्रतिष्ठा करि रोयठ षांप चांपावत ।

इससे यह पता चलता है कि कल्याणसिंह का पुत्र इन्द्रसिंह संवत् १८८५ (महिना स्पष्ट नहीं लिखा है) में परलोकगामी हुआ । उसके पीछे रोयठ ठाकुर ने असाढ़ शुक्ला १०, १६१७ में छतरी बनाकर प्रतिष्ठा करवाई ।

इन्द्रसिंह चांपावत महाराजा मानसिंह की सेवा में रहा था। संवत् १८६४ में जयपुर की सेना ने जोधपुर का घेराव किया । उसमें इसने महाराजा की अच्छी सेवा की । अनंतर उसे खजवाणा ग्राम मिला । वह जीवन भर महाराजा की सेवा में बना रहा ।

६. गोरधनदास धांधल का छतरी-अभिलेख

गोरधनदास की छतरी २२ स्तंभों की बनी हुई है । इसमें गोरधनदास धांधल की प्रतिमा अंकित है। एक हाथ में भाला और दूसरे हाथ में घोड़े की लगाम है। कमर में तलवार लटकी हुई दिखलाई गई है ।

अभिलेख—

श्री रामजी:

पं. सं. १. स्वस्ति श्री कतिष्ट मंगला भ्यु दयाय: अथा स्मितु

,, ,, २. सुभ संवतसरे श्रीमन्नृपति विक्रमादित्य राज्यात् १८६१ रा श्री सालि-

,, ,, ३. वाहन कृत्वा श्राके १७५६ रा प्रवर्तमाने मासोतम मासे जेठ मासे कृष्ण पक्षे

,, ,, ४. नवम्यां ६ गुरुवारे रात्र आदि गया देवलोक वुदा राज ठाकरां श्री गो-

,, ,, ५. रधनदासजी ठाकरा श्री उदेरामोत धांधल केरू रा ठाकर उपर वुई ने देव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

,, ,, ६. ली संवत १८९२ रा फागुण मासे कृष्ण पक्षे ... ६ सोमवारे दि–

,, ,, ७. न घड़ी १८ पल २ दिन चढियो प्रतिष्ठा वुई ने देवली पदराई ।।

अभिलेख से पता चलता है कि जेठ कृष्णा ६ गुरुवार को अर्ध रात्रि के बाद संवत् १८९१ में उदयराम धांधल के पुत्र गोरधनदास का देहावसान हुआ। उसके पीछे छतरी बना कर फाल्गुन कृष्णा ६ सोमवार १८९२ में प्रतिष्ठा की गई।

गोरधनदास महाराजा मानसिंह की सेवा में रहा। १८७७ संवत् में इसकी किलेदार के पद पर नियुक्ति की गई। सेना-संचालन का भी इसे अनुभव प्राप्त था। इसने महाराजा की अच्छी सेवा की।[७]

७. सालमसिंह चांपावत का छतरी अभिलेख

१० स्तंभों की छतरी में सालमसिंह चांपावत की अश्वारूढ प्रतिमा बनी हुई है।

अभिलेख—

पं. सं. १. स्वरूप श्री रिधो श्री मयो मंगल म्यूद.......समत १९१० रा

,, ,, २. साके १७७५ रा महावद ६ सुक.......ठाकरा राज श्री

,, ,, ३. सालमसिंहजी षूमाणसिघोत षांप चांपावत देवलोक पधारिया

,, ,, ४ तिणो उपर समत १९१६ रा साके १७८१ प्रवतमाने मासोत्तम मासे

,, ,, ५. मृगसर सुद ६ बुधवासरे घटी ३ त्वरनो छत्ररी री प्रतिष्ठा हुई सु–

,, ,, ६. भ भूवत ।। श्री ।। श्री ।। श्री ।। श्री ।।

इसमें सालमसिंह का देहावसान माघ वदि ७, १९१० में होना अंकित है।

सालमसिंह महाराजा तखतसिंह की सेवा में रहा था और उसे पाली परगने का खुडाला ग्राम प्राप्त था। इसके बाद उसका पुत्र केसरीसिंह उत्तराधिकारी हुआ।[८]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. वभूतसिंह चांपावत का छतरी अभिलेख

गजसिंह कूंपावत की छतरी के सामने वभूतसिंह की छतरी बनी हुई है। इसमें अश्वारूढ वभूतसिंह की प्रतिमा खुदी हुई है। नीचे लेख उत्कीर्ण है।

अभिलेख—

॥ श्री गणेसाय नमो श्री परमेश्वरजी ॥

पं. सं. १. राव वहादुर ठाकुरां राज श्री वभुतसिंघजी सालम-

" " २. सिंघोत राठौड़ षांप चांपावत वीठलदासोत पोक्र-

" " ३. रण रा धणी सं १९३४ रा साका १८९९ रा मीती जेठ

" " ४. सुद ३ वार ...... ने वेकुठवास हुवा जीण रे उपर देवल

" " ५. करायो जीण री प्रतिष्ठा राव बहादुर ठाकुरा राजश्री मंग-

" " ६. लसिहजी गुमानसीहोत रे हात सू सं. १९७० रा साका

" " ७. १८३५ रा मोती भेसाक सुद ५ वार अदीतवार ने।

इस अभिलेख में वभूतसिंह चांपावत का मृत्यु संवत् १९३४, ज्येष्ठ सुदि ३ दिया है। उसके दाह स्थान पर देवल बनाकर राव बहादुर मंगलसिंह ने वैशाख सुदि ५ अदीतवार १९७० को प्रतिष्ठा करवाई।

संवत् १८८० में सालमसिंह की मृत्यु के बाद वभूतसिंह पोकरन का ठाकुर बना। १८९७ संवत् में उसकी प्रधान पद पर नियुक्ति की गई।[९] यह महाराजा तख्तसिंह की सेवा में भी रहा और फिर से प्रधान पद पर नियुक्त हुआ। इसने जोधपुर राज्य का उत्तम प्रबन्ध किया। पौष सुदि १४, १९३२ को इसे राय बहादुर की उपाधि से सम्मानित किया गया।[१०]

९. सरदारसिंह करमसोत का छतरी-अभिलेख

रोइठ ठाकुर इन्द्रसिंह की छतरी के पास सरदारसिंह की देवली बनी हुई है। उसमें एक अश्वरोही के हाथ में भाला और दूसरे हाथ में घोड़े की लगाम दिखाई गई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिलेख—

।। श्री परमेसरजी ।।

पं. स. १. श्री ठाकुर राजश्री १०५ श्री सीरदार सी-

,, ,, २. घ केसरीसीघोत षांप करमेसोत पीरथी-

,, ,, ३. राजोत रपत नागोर रो गांव नागड़ी रा ठाकरा

,, ,, ४. रे माथे छतरी छै ठाकुर जोधपुर में चलीया सं.

,, ,, ५. १९६१ रा मीती काती स्द ९ मंगलवार छतरी कराई

,, ,, ६. सं. १९६४ रा महाव्द रा षीचणजी भीणाई द. इ

,, ,, ७. रा गानथु.......।

इससे यह पता चलता है कि केसरीसिंह के पुत्र सरदारसिंह करमसोत (राठौड़) ग्राम नागड़ी का देहान्त कार्तिक सुदि ९ मंगलवार १९६१ को जोधपुर में हुआ। खीची वंश की स्त्री ने माघ वदि १९६४ में अपने पति के पीछे छतरी का निर्माण कराया।

इस करमसोत राठौड़ के बारे में और कोई जानकारी नहीं मिलती। इसकी मृत्यु के समय से यही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह जोधपुर महाराजा सरदारसिंह (संवत् १९५२-१९६७) की सेवा में रहा होगा।

राजसिंह कूंपावत और गोरधनदास धांधल आदि की छतरियों पर खुदाई का अच्छा काम है। राजस्थान के स्थापत्य को समझने के लिये भी ये छतरियां बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकतीं हैं। ये एक प्रकार के कीर्तिस्तम्भ हैं जो मारवाड़ के अतीत की गौरव गाथा की याद दिलाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ –

१. ओझा: जोधपुर राज्य का इतिहास १, पृ० ४१३-१४.

२. देखें, परम्परा (भाग ४६-५०) में मेरा लेख पृ० ११६-१७.

३. राठौड़ों री ख्यात (अप्रकाशित) राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, पृ० १५२.

४. महाराजा भीमसिंह री ख्यात (अप्रकाशित) राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ० ८।

५. यह थड़ा काफी विशाल बना हुआ है। इसमें अश्वारूढ गम्भीरसिंह की प्रतिमा लगी हुई है तथा उसके आगे २ स्त्रियाँ हाथ जोड़े खड़ी हैं जो उसके पीछे सती हुईं। गंभीरसिंह का निधन संवत १६१६ में हुआ। इसमें लेख नहीं है।

६. महाराजा मानसिंह री ख्यात, सं. डॉ० नारायणसिंह भाटी, रा. प्रा. वि प्र., पृ० ७३.

७. ,, ,, वही पृ० १९, १३६.

८. देखें, मारवाड़ रा परगना री विगत, सं. डॉ० नारायणसिंह भाटी, भाग ३, पृ० ४४४ पर खुडाला ग्राम की वंशावली।

९. महाराजा मानसिंह री ख्यात रा. प्रा. वि. प्र., पृ० २१८.

१०. चांपावत राठौड़ भगवतसिंह पृ० ३०९, ३१८.

—डॉ० हुकमसिंह भाटी
एम०ए०, पी-एच०डी०
२ व ८ प्रताप नगर,
जोधपुर.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्षणायाः क्रमिको विकासः

लक्षणाविवेचनस्योद्भवस्यान्वेषणेन ज्ञायते यल्लक्षणाया विवेचनं कालक्रमदृष्ट्या आलङ्कारिकेभ्यः पूर्वं दार्शनिकैर्वैयाकरणैश्च विहितम्, अतो लक्षणायाः क्रमिकविकासान्वेषणपरैः शोधकर्तृभिः आलङ्कारिकेभ्यः पूर्वं दार्शनिकग्रन्थाः व्याकरणग्रन्थाश्च अवलोकनीयाः। वेदा धार्मिकग्रन्थाः, किन्तु काव्यग्रन्था अपि ते सन्ति। स्वयं वेदानाम् ऋषिर्वेदान् काव्यनाम्ना समुच्चरति।[1] एतत्तु स्वाभाविकमेव यद् वेदमधिकृत्य मीमांसाशास्त्र-प्रतिपादकाः, वेदविहितानां लाक्षणिकप्रयोगाणां व्याख्याने बद्धादरा लक्ष्यन्ते। फलतः जैमिनिनापि लाक्षणिकप्रयोगाणां षड्धा वर्गीकरणं कृतम्।

शबरस्वामी— (३००-१०० ई०पू०) शबरस्वामिना षड्धा विभाजितानां पूर्वोक्तानां लाक्षणिकप्रयोगाणाम् उदाहरणानि वेदेभ्यः प्रदत्तानि।

तद्यथा—

तत्सिद्धिः— गुणाश्रयः अर्थाद् गौणस्यार्थस्याश्रयेण प्रस्तरोऽपि यजमान इत्युक्त्वा स्तूयते। गौणस्यार्थस्याश्रयणे प्रस्तरेण 'तत्सिद्धिः' यजमानस्य कार्यसिद्धेर्ज्ञापकमस्ति।[2]

जातिः— गौणस्यार्थस्याश्रयणे अत्र ब्राह्मण आग्नेयः इति कथयित्वा स्तूयते। गौणस्यार्थस्य आश्रयणे जातिः जन्मनः अर्थाद् उत्पत्तेः कारणमस्ति।[3]

सारूप्यात्—गौणस्यार्थस्याश्रयणे अत्र यूपः यजमान इत्युक्त्वा स्तूयते। गौणस्यार्थस्याश्रयणं यूपस्य यजमानस्य च सारूप्याद् भवति, अर्थात् यूपस्यायतता यजमानेन समम् इति द्वयोः सारूप्यम्।[4]

प्रशंसा—गौणस्याश्रयणेऽत्र गोभ्यः अश्वेभ्यो व्यतिरिक्तम् अपशुरित्यु-क्त्वा गोः तथा अश्वस्यात्र प्रशंसा विहितास्ति।[5]

भूमा—भूमारूपायाःगुणाश्रयस्याश्रयणे सृज्धातुयुक्तानां मन्त्राणां बाहुल्येन तत्प्रकरणे पठितैः सृज्धातुरहितैर्मन्त्रैरुपधीयमानानाम् इष्टिकानां विधानं करोति।[6]

लिङ्गसमवायात्—प्राणलिङ्गस्य समवायात् किं वा योगात्, अर्थात् सम्बन्धस्य सत्त्वाद् गुणाश्रयस्य, अर्थाद् गौणार्थस्याश्रयणात् प्राणलिङ्गेभ्यो रहितानां मन्त्राणां स्तावकोऽस्ति, लिङ्गसमवायात् प्राणभृच्छन्दः परत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अप्राणभृति व्यवहृतोऽस्ति । यथा— 'छत्रिणो गच्छन्ति' इति कथनेन एकस्यापि व्यक्तेश्छत्रयुक्ते सत्यपि एकेन छत्रिणा सर्वे छत्रयुक्ता लक्ष्यन्ते, तथैव प्राणभृच्छब्दः सृष्टिशब्दश्च स्वार्थं परित्यजन्तौ मन्त्रसमुदायं न लक्षयेताम्। यस्मिन् मन्त्रसमुदाये सृष्टिप्राणभृच्छब्दौ समवेतौ स्तः, तावपि छत्रिन्यायवद् गृहीतौ भवतः।[७]

शबरस्वामिव्याख्यातां लाक्षणिकप्रयोगविधां विवेच्य गौतमस्यौपचारिकाः प्रयोगाश्च विवेचनीयाः।

गौतमः—(३०० ई०पू०) गौतमो लक्षणार्थमुपचारशब्दं प्रयुङ्क्ते। उपचारस्तु दशधा विभज्यते।[८] गौतमसूत्रे दशधा विभाजित उपचारः सोदाहरणमुपन्यस्यते।

१. सहचरणम्— 'यष्टीः प्रवेशय' अत्र ब्राह्मणेषु यष्टेरारोपः साहचर्यसम्बन्धेन भवति।

२. स्थानम्—'मञ्चाः क्रोशन्ति' अत्र बालकेषु शय्याया आरोपः स्थानसम्बन्धेन भवति।

३. तादर्थ्यम्— 'वीरणेष्वास्ते' अत्र तादर्थ्यसम्बन्धेन तृणे खशद्रव्यस्य आरोपः क्रियते।

४. वृत्तम्— 'अयं राजा यमः' अत्र नृपशब्देन यमस्य ग्रहणे तात्कर्म्यसम्बन्धोऽस्ति।

५. मानम्— 'प्रस्थः सक्तुः' अत्र सक्तौ प्रस्थस्यारोपः मानसम्बन्धेनास्ति।

६. धारणम्— 'चन्दनं तुला' चन्दने तुलाया आरोपः तद्धार्यसम्बन्धेन विहितोऽस्ति।

७. सामीप्यम्— 'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र गङ्गायां तटस्यारोपः सामीप्यसम्बन्धेनास्ति।

८. योगः— 'कृष्णः शकटः' अत्र तद्गुणसम्बन्धात् शकटेन कृष्णवर्णः गृह्यते।

९. साधनम्— 'अन्नं प्राणाः' अत्र अन्ने प्राणस्यारोपः साधनसम्बन्धेनास्ति।

१०. आधिपत्यम्— 'अयं कुलस्य राजा' अयं वंशस्य राजा अस्ति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र कुलस्य स्वामिनि राज्ञः आरोप आधिपत्यसम्बन्धोऽस्ति। एवं गौतमेन लाक्षणिकप्रयोगाः दशधा विभाजिताः।

पतञ्जलिः-- (१५० ई०पू०) वैयाकरणेषु सर्वप्रथमं पतञ्जलिना महाभाष्ये 'पुंयोगादाख्यायाम्' सूत्रस्यास्य भाष्ये, कथितम् यदा विभिन्नपदार्थेषु अभेदसम्बन्धो नैव भवितुमर्हति तदा 'अतस्मिन् सः', अर्थात् भिन्नेऽभिन्नताया ज्ञानम्, अतस्मिन् तदित्यस्य ज्ञानम्, अन्यस्मिन् अन्यस्यारोपः, इत्येतत्सर्वं शब्दस्य गुणानाम् अर्थे आरोपः, अर्थगुणानाञ्च शब्दे आरोपः, जात्यां व्यक्तेरारोपः कथं भवति? इति जिज्ञासायां समाहितं पतञ्जलिना। तेन कथितम् इत्यादिस्थलेषु भिन्नपदार्थेषु भिन्नपदार्थस्य चतुर्धा ताद्रूप्यमर्थात् अभेदारोपो भवति। मुख्यताद्रूप्यन्तु नैव भवति इति तु सत्यादुपेतमस्ति। वस्तुतः ताद्रूप्यमेतल्लक्षणायाः कारणेन भवितुमर्हति। पतञ्जलिः प्रब्रूते, चतुर्धा अन्यस्मिन् अन्यस्य ज्ञानम् अर्थाल्लक्षणा भवति। प्रकाराश्चैता एवं तेन निगदिता। १-तत्स्थता २-तद्धर्मता ३-तत्सामीप्यम् ४-तत्साहचर्यम्।

तत्स्थता—अस्योदाहरणन्तु महाभाष्ये 'मञ्चा हसन्ति' दृष्टिपथमायाति। अत्र मञ्चस्थपुरुषेषु मञ्चस्य ताद्रूप्यमारोपितमस्ति। ययोः पदार्थयोराधाराधेयभावसम्बन्धो भवति, तयोराधेय आधार इत्यपि कथ्यते। 'मञ्चा हसन्ति' इत्यत्र मञ्चस्थान् बालकान् अपि ये मञ्चाद्भिन्ना सन्ति, मञ्चपदेन व्यवहरन्ति। अत्र भेदे अभेदस्थापनस्य मूलम् आधाराधेयभावसम्बन्धोऽस्ति।[९]

ताद्धर्म्यम्—अस्योदाहरणन्तु 'जटी ब्रह्मदत्तः' अर्थात् जटावान् ब्रह्मदत्तोऽस्ति। अत्र ब्रह्मदत्तस्य धर्मान् जटिनि विलोक्य तं ब्रह्मदत्त इति कथनं ताद्धर्म्यमेव।[१०]

३-तत्सामीप्यम्—अस्योदाहरणन्तु 'गंगायां घोषः' अत्र प्रवाहस्य ताद्रूप्यं तटे आरोपितमस्ति, अर्थात्सामीप्यस्य कारणादेव गङ्गातटः गङ्गापदवाच्यो भवति।[११]

४-तत्साहचर्यम्—अस्योदाहरणन्तु 'कुन्तान् प्रवेशय' अत्र कुन्तधारिषु कुन्तस्यारोप ताद्रूप्यादेव। अत्रापि साहचर्यकारणादेव कुन्तधारिणः, यष्टिधारिणश्च कुन्तयष्टिपदवाच्यौ।[१२]

एवं मीमांसा-न्याय-व्याकरण-ग्रन्थेषु लक्षणाविवेचनस्योद्भवं निरूप्येदानीं प्रसङ्गोपात्तमालङ्कारिककृतविवेचनमपि विवृणोमि।

भामहस्य (४००-६०० ई.) लक्षणाविषयकं विवेचनम्—भामहात्पूर्वमपि काव्यशास्त्रीयं विवेचनं जातमिति तु भामहः स्वयं निजगाद।[१३] किन्त्वधुना तत्साहित्यं नैवोपलभ्यते। भामहस्तु प्राक्तनकाव्यशास्त्रीय-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम्परातः सुपरिचित आसीत् । आलङ्कारिकैर्विरतरतः शब्दशक्तेश्चर्चा-ध्वनिप्रस्थापनाया अनन्तरमेव कृतासीत्, किन्तु षष्ठशतके प्रतीयमानस्य उत वा गम्यस्यार्थस्य संकेतो भामहस्यापि काव्यालङ्कारे सम्प्राप्यते । भामहेन समासोक्त्यलङ्कारस्य वर्णनप्रसङ्गे अन्यार्थप्रतीतिमाध्यमेन वाच्यार्थाद्व्यतिरिक्तः प्रतीयमानार्थः स्पष्टरूपेण स्वीकृतः,[१४] यल्लक्षणाया मूलमस्ति । भामहेन प्रतिवस्तूपमालङ्कारवर्णने निगदितम्, यथा-इवादिशब्दानां प्रयोगाभावेऽपि समानवस्तुविन्यासाद् कथनाद् वा गुणसाम्यस्य प्रतीतेराधारेण प्रतिवस्तूपमा भवति ।[१५]

अनेन लक्षणेन स्पष्टं भवति यत्प्रतिवस्तूपमालङ्कारे गुणसादृश्यस्याधारेण उभयोर्भिन्नधर्मयोरपि सादृश्यं स्वीक्रियते । अत्र गौणीलक्षणा भावस्य छायापि द्रष्टुं शक्यते, एवमेव पर्यायोक्तालङ्कारस्यापि सन्दर्भे भामहेन कथितं यत्र वाच्यवाचकवृत्तिव्यतिरिक्तप्रकारेण वाञ्छितार्थस्य विधानं क्रियते तत्र पर्यायोक्तालङ्कारो भवति[३]

एवं काव्यालङ्कारे वर्णितालङ्काराणां विश्लेषणमाध्यमेन कथयितुं पार्यते यद् भामहो गम्येन प्रतीयमानार्थेन सुपरिचित एवं नासीत् अपितु अर्थोऽयम् तमभिप्रेत आसीत् । यद्यपि समासोक्तिवक्रोक्तिप्रतिवस्तूपमाद्यलङ्कारेषु 'अनयाऽर्थो विभाव्यते' 'यत्रोक्तेः गम्यतेऽन्योऽर्थः' इत्यादीनि वाक्यानि वाच्यार्थातिरिक्तस्यार्थस्य व्यञ्जनावृत्तेर्वा सङ्केतं कुर्वन्ति तथापि ध्वनेः सत्तायां लक्षणाया सत्ता स्वय सिद्धा वर्तते, तस्या स्वरूपं अङ्कुरितावस्थायामेव काव्यालङ्कारे वयं अवलोकयामः । भामहाचार्येण लक्षणाविषये उत वा भेदविषये न किमपि प्रोक्तम् । शब्दशक्तिविषयेऽपि पृथग्रूपेण न काऽपि चर्चा विहितानेन ।

दण्डी(६६० - ६८० ई.)कृतलक्षणाविषयकं विवेचनम् — यद्यपि आचार्यदण्डिना भामहवच्छब्दशक्तेः पृथग्रूपेण चर्चा नैव विहिता किन्तु काव्यादर्शे तेन व्यङ्ग्यार्थस्य सकेत उदात्तादिगुणानां निरूपणावसरे विहितः ।[१७]

दण्डिना समाधिगुणस्य वर्णनप्रसङ्गे गौणवृत्तेश्चर्चा विहिता । समाधिनामकं गुणं विवेचयता दण्डिना कथितं यल्लोकस्थितेरनुवर्तनं कुर्वाणा जना यत्रान्यस्य धर्मस्यान्यत्र व्यवहारं कुर्वन्ति तत्रैव समाधिर्नामको गुणो भवति । विषयेऽस्मिन् टीकां प्रकुर्वाणः प्रेमचन्द्रतर्कवागीशभट्टाचार्यः स्पष्टरूपेण लिखति, यदन्यस्य धर्मस्यान्यस्मिन् व्यवहारः साध्यवसानागौणीलक्षणया भवति ।

समाधिगुणे उपचारस्य सत्ता भवति, यल्लक्षणाया मूलमस्ति । स

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतदपि स्पष्टं कृतवान् यत्समाधिगुणे विषयस्यानुपादानेन साध्यवसाना एव भवति, न तु सारोपा।[१८] दण्डिनापि[१९] भामहाचार्यवत्पर्यायोक्तेः स्वरूपं प्रकारान्तरकथनलभ्यम् उररीकृतम्।[२०]

गौणीलक्षणाया उद्गमो दण्डिन उपमारूपकनामकेऽलङ्कारे सम्प्राप्यते। प्रेमचन्द्रतर्कवागीशः स्वकीयायां टीकायां विषयेऽस्मिन् सङ्केतं कुर्वन् व्यनक्ति यद् गुणसम्बन्धेन चन्द्रादौ मुखादेरारोपः उपमारूपकस्य मूलमस्ति। एवं मुखं चन्द्राद्भिन्नं सन्नपि चन्द्रमसः अभिन्नमेव स्वीक्रियते। यस्मिन् लक्षणा मूलरूपेण निहिता वर्त्तते।[२१]

यद्यपि दण्डिनः समये विशेषरूपेण साहित्ये वृत्तीनां तथा शब्दशक्तीनां विवेचनप्रारम्भो नैवाऽभवत्, तथापि दण्डिना अभिधयलाक्षणिकप्रतीयमानार्थानां मध्ये स्पष्टरूपेण भेदोऽर्थरूपेणापि प्रदर्शितः। अतएव एतत्तु सुनिश्चितरूपेण वक्तुं पार्यते यद्दण्डिना प्रतीयमानस्य माध्यमेनैव लक्षणाविषयिकी चर्चा कृता। उदारतानामकगुणवर्णनावसरे दण्डी विवेचयन्नाह-व्यक्तिविशेषमाध्यमेन उत्कर्षवान् गुणो व्यञ्जनया प्रतीयते, तदा उदारता-नामको गुणो भवति।[२२] दण्डिनः समाधिगुणस्योदाहरणमेतल्लक्षणावृत्तेर्नैकट्यं बिभर्ति। तद्यथा—

कुमुदानि निमीलयन्ति कमलान्युन्मिषन्ति च।
इति नेत्रक्रियाध्यासाल्लब्धा तद्वाचिनी श्रुतिः॥

अत्र कुमुदानि मुकुलीभावं भजन्ति तथा कमलानि विकसन्ति।[२३] अत्र कुमुदकमलयोः नेत्रक्रियाया निमीलनोन्मीलनयोः आरोपात् नेत्रक्रियायाः सम्मीलने निमीलनस्य, असम्मीलने उन्मीलनस्य व्यवहारश्चात्र विहितो वर्तते। अत्र प्रयोगोऽयं लाक्षणिके अर्थ एव विहितो वर्तते। रूपेणानेन समाधिगुणो लक्षणावृत्तेर्नैकट्यं भजति। अतोऽग्निपुराणकारोऽपि लक्षणाप्रसङ्गे समाधिगुणं विवृणोति। धर्मेन्द्र-नाथशास्त्रिणः कथनानुसारेण दण्डिनः पूर्वोक्ता समाधिगुणकल्पना परवर्तिना वामनेन वक्रोक्तिरूपेण वर्णिता।[२४]

उद्भटस्य (नवमी श.) लक्षणाविषयकं विवेचनम्—अलङ्कारसम्प्रदायस्य लब्धप्रतिष्ठ उद्भटाचार्यो लक्षणायाश्चर्चां पृथग्रूपेण नैव कृतवान्। किन्तु रूपकालङ्कारस्य वर्णनावसरे तेन लक्षणाया महत्वपूर्णमस्तित्वं स्वीकृतम्। प्रकरणेऽस्मिन् गुणवृत्तिशब्दस्यापि प्रयोगो तेन विहितः।[२५]

अत्र केनाप्यज्ञातलेखकेन विरचितविवृत्याम् इदं स्पष्टीकृतं, यत्र मुख्यार्थे बाधा भवति, तत्र गुणवृत्तेरस्तित्वं भवति। स्पष्टमेतत् एषा लक्षणायाः प्रक्रिया वर्तते।[२६] एवं गुणवृत्तेराश्रयस्तदैव गृह्यते यदा यथाश्रुतसम्बन्धे बाधा उपस्थिता भवति। अर्थात् यत्राभिधया शक्त्या पदार्थानां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्बन्धो न भवति तथा यथाश्रुतसम्बन्धस्य बाधितत्वाद् घटितो न भवति तदा गुणवृत्तेराश्रयणं नीयते। प्रतिहारेन्दुराजः स्पष्टं ब्रूते यदेषा लक्षणाया प्रक्रिया वर्तते।[२७]

एवमुद्भटकृतौ शब्दशक्तेः पृथग्विवेचनं नैव सम्प्राप्यते। किन्त्वलङ्कार-विवेचनप्रसङ्गेऽनेन लक्षणा पूर्वोक्तप्रकारेण निगदिता। उद्भटकृतेष्टीकाकार इन्दुराजः स्पष्टमेव भणति यत्काव्यात्माप्रतीयमानार्थं एव यं सहृदया ध्वनि-नाम्ना व्यवहरन्ति। इन्दुराजस्य कथनमेतद् यदुद्भटेन ध्वनेरुल्लेखो नैव व्यधायि यतो ध्वनेरन्तर्भावो तन्मतेन पर्यायोक्त्यादिषु भवति।[२८] प्रतिहारे-न्दुराजस्यानेन विवेचनेन स्पष्टमेव यदुद्भटो ध्वनिं तदन्तर्भूतां लक्षणां मनुते। प्रतिहारेन्दुराजोऽत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनिं विवेचयन् स्पष्टतो लक्ष-णायाः समुल्लेखोऽवश्यमेव करोति।[२९]

अविवक्षितवाच्यध्वनौ लक्षणा समाविष्टा। अभिनवगुप्तपादाचार्यस्य गुरुरिन्दुराजोऽपि ध्वनिं सर्वप्रथमं षड्धा विभजते।[३०] एवमनेन ध्वनावशो-तिप्रकारा निरूपिता।[३१]

काव्यालङ्कारसारसंग्रहलघुवृत्तेस्सम्पादकेन[३२] नारायणदासवनहट्टिना इन्दुराजस्य ध्वनिविषयिणी मान्यता निम्नप्रकारेण वर्गीकृता :—

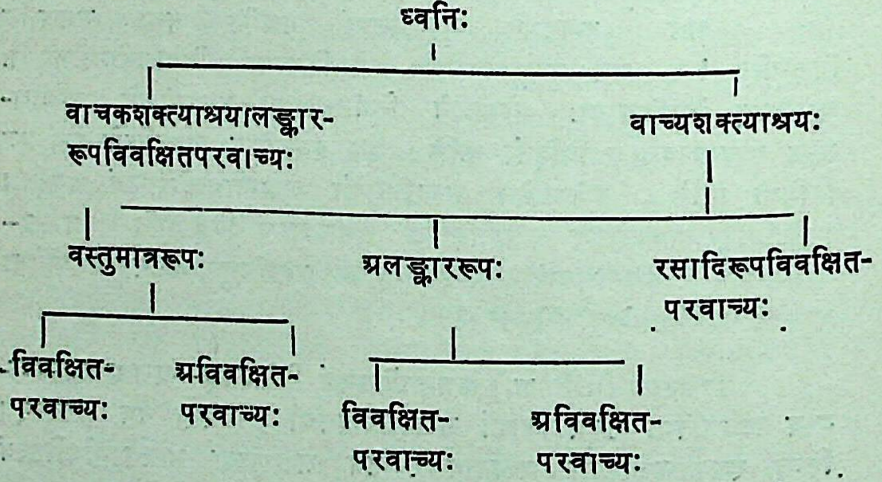

उद्भटाचार्यो यद्यपि प्रतीयमानार्थं समासोक्त्यादिषु विभिन्नेष्वलङ्कारेषु अन्तर्भावयितुं पूर्णसचेष्टो वर्तते, किन्तु एतदपि सत्याद्रुपेतमस्ति यत्सः प्रतीय-मानार्थस्य सत्तां मनुते।[३३]

एवं प्रकारेण पर्यायोक्तनामकेऽलङ्कारे विहितः 'अवगमः' इत्यस्य प्रयोगो व्यङ्ग्यार्थस्य सूचक एवास्ति।[३४]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिनवगुप्तपादाचार्यलिखितलोचनटीकातः स्पष्टमेतद् भवति यद्भामहेन काव्यालङ्कारस्य टीका भामहविवरणम् नाम्ना लिखितासीत्, ग्रन्थेनानेन प्रतीयते यद्भामहोऽभिधालक्षणादिवृत्तिभिः सुपरिचित आसीत्।

विदुषानेन उररीकृत यत् शब्दानाम् अभिधानं मुख्योऽभिधाव्यापारः गुणवृत्तिश्च स्तः। उद्भटप्रभृतय आचार्या लक्षणावादिनो मन्यन्ते। तन्मतानुसारेण व्यङ्ग्यार्थस्यान्तर्भावो लक्ष्यार्थे करणीयः अतो लक्षणाव्यतिरिक्ताव्यञ्जनाशक्तिस्त्याज्या।

आचार्यरुद्रटस्य (८२५-८७५ ई०) लक्षणाविषयकं विवेचनम्—

रुद्रटाचार्येण शब्दशक्तीनामुल्लेखो नैव व्यधायि, किन्त्वर्थालङ्काराणां वर्णनप्रसङ्गे वाचकशब्दस्य चत्वारः प्रकारास्तेन निरूपिताः। द्रव्यं, गुणः, क्रिया जातिश्च। अत्र अभिधाया वाचकपदानाञ्च प्रयोगेणैतदनुमीयते यदुद्भटश्शब्दशक्तेस्तथ्यतः सुपरिचित आसीत्।[३५]

यद्यपि रुद्रटाचार्येण शब्दशक्तिविषये पूर्वाचार्याननुसृत्य चर्चा नैव कृता, किन्तु भावनामकस्यालङ्कारस्य वर्णनमाध्यमेन ध्वनिवादिनां वस्तुध्वनिस्तथागुणीभूतव्यङ्ग्योऽपि ध्वनिप्रस्थापनात् प्रागेव व्याख्यातौ।

भावनामकमलङ्कारं व्याख्यातवतानेन तस्य द्विधा व्याख्या कृता। प्रथमस्यानुसारेण तेन स्वीकृतं यत्र केनाप्यनेकान्तिकहेतुना कस्मिन्नपि जने विकारो मुखमालिन्यं समुत्पद्यते तथा तदेव विकारः स्वकार्यकारणभावस्य तथा विकारवतो व्यक्तेरान्तरिकाभिप्रायस्य सूचको भवति। तत्र भावनामकोऽलङ्कारो भवति।[३६] अस्योदाहरणरूपेण तत्र निम्नलिखिता आर्या उपन्यस्ता वर्तते।

ग्रामतरुणं तरुण्या नव वञ्जुलमञ्जरीसनाथकरम्।
पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया॥[३७]

नमिसाधुना अस्य व्याख्यायां लिखितम्, यत्र मलिनतारूपविकारः कार्यं वा तत्कारणीभूताया वेत्रमञ्जर्या अवलोकनम् अप्रतिषिद्धमनियतञ्चास्ति। यतो मञ्जर्या दृक्पथे समायाते सति नैव सदैव तद्विकारो भवति। एषा मलिनता युवकस्य कृते तरुण्या रागं प्रकाशयति। नैराश्यं भजतो गृहं प्रति गच्छतः उपपतेर्हस्ते मञ्जरीं विलोक्य नायिकाया मुखच्छविर्मलिना भवति। यं दृष्ट्वा सहृदयस्य हृदि अभिप्रायस्य प्रतीतिर्जायते।[३८]

अनेन स्पष्टं प्रतिभाति यत् चेष्टाविशेषेण काव्यगतव्यङ्ग्यार्थस्य प्रतीतौ सत्यां रुद्रटो भावनामकं अलङ्कारं मनुते। ध्वनिवादिनां मते स एव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्तुध्वनिरित्युच्यते । द्वितीयप्रकारेणापि भावनामकस्यालङ्कारस्य व्याख्यां प्रकुर्वाणो रुद्रटाचार्यः कथयति यत् पदानां समस्तगुणदोषवान्वाक्यं यत्रान्यस्यार्थस्य बोधं कारयति तत्र भावनामकोऽलङ्कारो भवति ।[३९]

एनमेव भावं विशदं कुर्वन् नमिसाधुरपि स्वटिप्पण्यां प्रब्रूते । यदि वाक्यं वाक्यार्थातिरिक्तं वक्तुरभिप्रायरूपमन्यार्थं बोधयति तदापि भावनामकोऽलङ्कारो भवति ।[४०]

उदाहरणतः :—

एकाकिनी यदबला तरुणी तथाहम्,
अस्मिन् गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशम् ।
किं याचसे तदिह वासमियं वराकी,
श्वश्रुर्ममान्धबधिरा ननु मूढ पान्थ ।।[४१]

यद्यप्यत्र आपाततो निषेधस्यैव प्रतीतिर्भवति, किन्तु तरुणीप्रोक्तमूढादिपदानां विवेचनेन विलक्षणविधिरूपस्यार्थस्य प्रतीतिः प्रकृतार्थस्य निषेधादेव भवति । भावस्योदाहरणरूपेणोपन्यस्तेयं कारिका लोचनकारेण गुणीभूतव्यङ्ग्यस्योदाहरणरूपेण उपन्यस्ता ।[४२]

एवं प्रकारेण रुद्रटकृतं विवेचनं ध्वन्यङ्कुरैः सम्पृक्तम्, अतः रुद्रटस्य गणना लक्षणासमर्थकाचार्याणां सरणौ क्रियते .... ।

वामनस्य (८ मी : श.) लक्षणाविषयकं विवेचनम्—वामनस्य समये लक्षणायाः प्रयोगः काव्यजगति पूर्णरूपेण सुप्रतिष्ठितो जातः । 'अरोचकी' 'सतृणाभ्यवहारी' इत्यादयो लाक्षणिकाः प्रयोगास्तत्समर्थयन्ति ।[४३] वामनस्यानुसारेण लक्षणा अविलम्बमेव अर्थप्रतीतेः कारणभूता भवति । एतदेव च लक्षणाया रहस्यम् ।[४४] यद्यपि काव्यात्मनः प्रथमान्वेषकेण वामनेन[४५] परवर्त्यालङ्कारिकैः समं लक्षणायाः तद्भेदानाञ्चविषये एकस्मिन्नेव स्थाने पृथग्रूपेण चर्चा नैव विहिता किन्तु काव्यालङ्कारसूत्रे प्रथमसूत्रस्य व्याख्यां कुर्वता भक्तिशब्दः लक्षणायाः कृते व्यवहृतः । एवम् आनन्दवर्धनाचार्यात्पूर्वमेव वामनेनैव लक्षणायाः कृते भक्तिशब्दस्य प्रयोगो विहितः ।[४६] वामनस्य समये असभ्यार्थेऽपि लाक्षणिकप्रयोगा भवन्ति स्म । सभ्यार्थे प्रयुक्तः शब्दः लक्षणाया असभ्यार्थं द्योतयति ।[४७] तस्मिन् समये पुष्कलरूपेण यत्र तत्र प्रयुक्तानां लाक्षणिकशब्दानां प्रयोगः काव्यजगति यत्र क्षम्य आसीत्तत्राल्पमात्रया कतिपयजनैः प्रयुक्ता लाक्षणिकशब्दाः काव्यजगति समीचीना नैव मन्यन्ते स्म ।[४८]

एषा स्थितिस्तदैव समागता भवेत् यदा लाक्षणिकप्रयोगान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यवस्थिता जाता अभवन्। आलाङ्कारिकैश्च लाक्षणिकशब्दानां प्रयोगो नाभिनन्दितः स्यात् वामनाचार्येण लक्षणा तथा तद्भेदविषयेऽपि निर्दिष्टम्। वक्रोक्तेर्वर्णनावसरे गौणीलक्षणाविषये तथैवान्यत्रापि लक्षणाविषये प्रकारान्तरेण कथितम्, अनेन बहूनि निबन्धनानि लक्षणायामित्युक्त्वा एकतो यत्र पूर्वप्रचलितपञ्चविधलक्षणायाः समर्थनं कृतम् अपरत्र सादृश्यनिबन्धनायां लक्षणायामेव वक्रोक्तिस्स्वीकृतानेन। वामनानुसारेण सादृश्यनिबन्धना असादृश्यनिबन्धना चेति भेदद्वयम्।[५०]

सादृश्येन विहिता लक्षणा वक्रोक्तिपदवाच्या भवति। सादृश्यमूलकलक्षणायाः अभिप्रायो गौणीलक्षणातः विद्यते। वामनेन रीतिमाध्यमेनापि लक्षणाया समर्थनं कृतम्। वैदर्भीरीत्यां समागता अर्थगुणसम्पदुपचारतो लक्षणया वा वामनेन वैदर्भी नाम्ना व्यवहृता। तदीयो राद्धान्तोऽयमासीद्यथा मञ्चाः क्रोशन्त्यत्र तात्स्थ्यसम्बन्धेन मञ्चस्थपुरुषाणां कृते मञ्चशब्दस्यौपचारिकः प्रयोगो भवति, तथैव वैदर्भीरीत्यां स्थितस्यार्थगुणसम्पत्तेः कृते उपचारतो लक्षणया वा वैदर्भीशब्दस्य प्रयोगो विधीयते।[५१]

वामनेन दोषमाध्यमेनापि लक्षणायाः समर्थनं विहितम्। अयं नेयार्थदोषवर्णनप्रसङ्गे व्यनक्ति यन्नेयार्थनाम्नः दोषस्योद्भावना तदैव भवति यदा लक्षणाया उपस्थितिः क्लिष्टतया विधीयते। कल्पितार्थस्य ज्ञापकं पदं नेयार्थमित्युच्यते। वाक्येऽश्रुतः सन्नपि अनुमानादिना कल्पनीयपदार्थस्य कल्पनाकरणात् कल्पितार्थो नेयार्थ इत्युच्यते।[५२] एवं रुढ्याभावे,प्रयोजनाभावे उत वा स्वेच्छया विहिता लक्षणा न लक्षणाकोटिमाटीकते, अपि तु नेयार्थनामको दोषस्तत्र भवति। अतः 'रथाङ्गनामा' आदीनि पदानि चक्रवाकपक्षिरूपार्थे रूढत्वात्तानि नैव दोषावहानि।[५३]

एवं वामनाचार्येण भामहदण्ड्यापेक्षया अनेकत्र विस्तरेण लक्षणा विषयिणी चर्चा विहिता अपि नाम दीक्षितविश्वनाथादिवत् भेदानां विस्तरतः चर्चा नैव विहिता। पण्डितराजस्यैषा मान्यता पक्षमिमं समर्थयति। तेन रसगङ्गाधरनामके प्रौढग्रन्थे उररीकृतमेतद् यद् ध्वनिकारात्पूर्ववर्तिनामाचार्याणां ग्रन्थेषु कुत्रापि ध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्यत्वादिव्यवहारो नैव विलोक्यते। अतस्तैर्ध्वन्यादयः शक्तयो नैव स्वीकृतेति अर्वाचीनानां कथनमसमीचीनम्। यतः समासोक्तिव्याजस्तुत्यप्रस्तुतप्रशंसादीनामलङ्काराणां वर्णनमाध्यमेन गुणीभूतव्यङ्ग्यस्यानेन कियन्तोऽपि भेदा निरूपिताः। एतद्व्यतिरिक्तमपि एतावदेव न हि व्यङ्ग्यस्य समस्तप्रपञ्चः पर्यायोक्त्यलङ्कारस्य कुक्षौ निक्षिप्तः।

उपसंहारः—एवम् आनन्दवर्धनाचार्यात्पूर्ववर्तिनामाचार्याणां ग्रन्थेषु लक्षणाया विवेचनं परवर्त्याचार्यैः समं नैव समुपलभ्यते, यतो हि शक्तिष्वभिधां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विहाय न कस्यापि शक्तेः पुष्कलचर्चा तेषु ग्रन्थेषु विलोक्यते। रुद्रटाचार्यो वाचकशब्दमेव व्याख्यातवान्। अलङ्कारशास्त्रस्याद्याचार्यो भामहो विषयेऽस्मिन् मौनभावमेव समालम्बते, यद्यप्याचार्येण दण्डिना समाधिनामकगुणवर्णनावसरे लक्षणावृत्तिमधिकृत्य निगदितमेव, किन्तु लक्षणायाः सम्बन्धविषये न कापि चर्चा कृताऽनेन। वामनाचार्यः सादृश्यसम्बन्धेन विहितां लक्षणां वक्रोक्तिः स्वीकरोति लक्षणायामनेकनिबन्धनानि स्वीकुर्वताप्यनेन तदुल्लेखो नैव कृतः। सादृश्यातिरिक्तसम्बन्धेन क्रियमाणा लक्षणा वक्रोक्तेः कोटिं नैवाटीकते। एवं प्रकारेण वामनेन सम्बन्धात्मनिमित्तमुररीकृतम्।

उद्भटाचार्येण रूपकालङ्कारवर्णनप्रसङ्गे गुणवृत्युन्मेषे 'श्रुत्यासम्बन्धविरहात्' इत्यस्यापि प्रसंगतः चर्चा विहिता एवं प्रकारेण भामहदण्डि-उद्भट-रुद्रट-वामनादीनामालङ्कारिकाणां ग्रन्थानां विवेचनानन्तरं सुनिश्चितं भवति यत्ते अभिधा-लक्षणा-व्यञ्जनाप्रभृतीः शक्तीरवश्यमेव स्वीकुर्वन्ति स्म। सर्वथा तैर्निषेधो नैव विहितः।

संदर्भ :—

१. देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।
अथर्ववेदभाष्यम्, १०.८.३२; पण्डितक्षेमकरणदास त्रिवेदी, १९१७ ई० पृ० ३३९

२. यजमानः प्रस्तरः।
मीमांसाशावरभाष्यम्, प्रथमो भागः, युधिष्ठिरमीमांसकः बहालगढ़, सोनीपत हरयाणा, १९७० ई० पृ० ३३९

३. आग्नेयो वै ब्राह्मणः।
तत्रैव. पृ० ३४१

४. यजमानो यूपः।
मीमांसाशावरभाष्यम् पृ० ३४४

५. अपशवो वाऽन्ये गोऽश्वेभ्य पशवो गौः अश्वाः।
तत्रैव, पृ० ३४५

६. सृष्टीरुपदधाति।
तत्रैव पृ० ३४७

७. प्राणभृत उपदधाति।
तत्रैव, पृ० ३४८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. न्यायसूत्रम् चौ. सं. सी. वाराणसी. १९७० ई० पृ० २८५

९. व्याकरणमहाभाष्यम् तृतीयो भागः । हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक,१९६३ ई० पृ० ५०३

१०. तत्रैव पृ० ५०३

११. तत्रैव पृ० ५०३

१२. तत्रैव पृ० ५०३

१३. भामह, काव्यालङ्कार , बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना वि. सं. २०१९ पृ० १४२

१४. काव्यालङ्कार, पृ० ६०

१५. काव्यालङ्कार, पृ० ४३

१६. तत्रैव पृ० ७०

१७. काव्यादर्श पृ० २४३

१८. तत्रैव, पृ० ७२

१९. काव्यादर्शः सटीकः, टीका-प्रेमचन्द्रतर्कवागीशभट्टाचार्य, शक. सं० १७८५ (१८६३ ई०) पृ० ८४

२०. काव्यादर्शः पृ०२३८

२१. काव्यादर्श सटीक, (टीका-प्रेमचन्द्रतर्कवागीशभट्टाचार्यः) पृ० १४७-१४८

२२. तत्रैव, पृ० ७२

२३. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५९ ई. पृ० ७९

२४. काव्यादर्शः सटीकः (टीका-धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री) पृ० ७

२५. काव्यालङ्कार-सार-संग्रह एवं लघुवृत्ति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६ ई. पृ० २६८

२६. काव्यालङ्कारसंग्रह लघुवृत्तिसमेत (सम्पा० नारायणदासो वनहट्टी) भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९२५ ई० पृ० १६ टिप्पण्यामुद्धृत-'गुण-वृत्तित्वं हि मुख्यार्थबाधः' (विवृत्तिः)

२७. काव्यालङ्कार-सार-संग्रह एवं लघुवृत्ति, पृ० २७०

२८. काव्यालङ्कारसारसंग्रह एवं लघुवृत्ति, पृ० ४१८

२९. तत्रैव, ४२८

३०. तत्रैव, पृ० ४३१

३१. काव्यालङ्कारसारसंग्रह एवं लघुवृत्ति, पृ० ४३१

३२. काव्यालङ्कारसारसंग्रहः लघुवृत्तिसमेतः (सम्पा. नारायणदासो वनहट्टी) पृ० १७४

३३. काव्यालङ्कारसारसंग्रह एवं लघुवृत्ति, पृ० ३३४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३४. ध्वन्यालोकलोचनम्. चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६५ ई. पृ० ३४
३५. काव्यालङ्कारः चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६६ ई. पृ० १८३
३६. काव्यालङ्कारः पृ० २०६
३७. तत्रैव, ७.३९ पृ० २०७
३८. तत्रैव, पृ० २०७
३९. काव्यालङ्कारः, पृ० २०८
४०. तत्रैव, पृ० २०८
४१. तत्रैव, पृ० २०८
४२. ध्वन्यालोकलोचनम्, पृ० १३४
४३. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, १९५४ ई. पृ० १३
४४. लक्षणायाऽच झटित्यर्थप्रतिक्षमत्वं रहस्यमाचक्षत इति। तत्रैव, पृ० २३७
४५. रीतिरात्माकाव्यस्य। १.२.६ तत्रैव, पृ० १८
४६. काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते। भक्त्या तु शब्दार्थमात्र-वचनोऽत्र गृह्यते (१.१.१) काव्यालङ्कारसूत्रवृतिः पृ० ५
४७. (२.१.१७) तत्रैव, पृ० ८२
४८. तत्रैव, पृ० २९३
४९. न तद्बाहुल्यमेकत्र। क्लिष्टतादोषप्रसङ्गात् इति भावः। (५.१.१६) काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः, पृ० २३५
५०. तत्र सादृश्यलक्षणा वक्रोक्तिरसाविति।...........असादृश्यनिवन्धना लक्षणा तु न वक्रोक्तिः। (१४.३.८) काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः, पृ० २३५-२३७
५१. तत्रैव, पृ० ३३
५२. कल्पितार्थं नेयार्थम्। (१.२ २२)
अश्रुतस्याप्युन्नेयस्य पदार्थस्य कल्पनात् कल्पितार्थं नेयार्थम्।
काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः, पृ० ७८
५३. ननु चैवं रथाङ्गनामादीनामपि प्रयोगोऽनुपपन्नः। न, तेषां निरूढलक्षणत्वात्। (२.१ १२) तत्रैव पृ० ७९
५४. रसगङ्गाधरः चौ. वि. वाराणसी १९५४ ई. पृ० ३७०

— डॉ० ठाकुरदत्त जोशी,
प्राध्यापक संस्कृत विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

INTRODUCTION

It is a matter not only of bringing back nostalgic memories to my mind but also of a flash back into the world of yesterday, when in my childhood we were apart of feudal order of the premier state of Rajputana. Mewar was so termed in recognition not only by the other so called India States but also by the British Government who considered Mewar as of special status in view of its being the only state which never bowed down to the powerful Mughal Sovereigns. This prompted the British to enter into a treaty of friendship with Mewar unlike that of paramountcy with other states, as is evidenced by the inscription of "Dosti-London" on the coins of Mewar.

As I said above we belong to a feudal order, my family having been for generations associated with the administration of the State. There were as many as five Pradhans (Chief Ministers) of the state from amongst our direct ancestors one of these Mehta Sher Singh ji has been mentioned as an administrator of high standing in Tod's 'Annals and Antiquities of Rajasthan' The last one of these was my great grand father Rai Mehta Panna Lal ji C. I. E, who held this exalted position in the reign of four successive Maharanas starting with Maharana Swaroop Singh to Maharana Fateh Singh.

Mehta Sahab had written short disjointed notes in the form of a diary or memoirs, which my father used to tell me that he wanted to put together and by dictating them to my father some day which unfortunately never came as Mehta Sahab during his pilgrimage to Shrinathji, our family shrine at Nathdwara breathed his last in 1919. My father subsequently put the pieces together with the help of a couple of well known chroniclers at Udaipur and left it in the form of a manuscript in his own handwriting I lost sight of the same, having been away to various stations on posting both with State Government and Central Government as a member of the Indian Administrator Service. When I could lay hands on the same in the seventies it has been my earnest wish to show this realistically written manuscript to some eminent

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

people connected with Rajasthan History which I did and then fortunately I found the Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur interested in it, which I do appreciate.

It is very difficult for me to hope to summarise the contents of this autobiographical narrative, which at every stage reflect verisimilitude. The very fact that the late Mehta Sahab Pannalal ji could rise to such a position and keep it against odds and intrigues under four rulers and yet instrumental in carrying out administrative reforms of a lasting nature, both in the administrative and economic fields besides facing sporadic revolts and maintaining law and order speaks for itself. He got maximum support and patronage from Maharana Shambhu Singhji and later Maharana Sajjan Singhji, the young Maharana, who during his short reign himself exhibited high sense of administrative acumen. The separation of judiciary from the executive, the publication of the first regular Gagette-cum-journal are two illustrations of their pioneering efforts. The fact that Mehta Sahab, as the Principal adviser to the Maharana could achieve all this by the tactful way in which he handed his tringular duties of loyalty to the Maharana; coordination with the British Political Department and the good of the people of the State which was dearest to his heart. In doing so he had to suffer the vissicitudes of fortune having had to face court displeasure, exile and even an attempt on his life prompted by a Zanana palace intrigue. I need say no more as I don't wish to blow the trumpet of my ancestors whose multifaced personality and ability will be clear to all those who read the manuscript when published through the good offices of Dr. P. D. Pathak, Director, Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur. A further detailed synopsis of the publication has been given by the Asstt. Director Shri Onkar lal Menaria who has taken considerable pains in going through the manuscripts and annotating tne same;

G.L. Mehta
Bar-at-law,
I.A.S. (Retd)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्व जीवनी

[ले० 'राय' मेहता पन्नालाल]

।। श्रीनाथ जी ।। ।। श्रीरामजी ।। ।। श्रीचतुरभुजी ।।

सिद्ध श्री गणेशाय नमः यह हाल सं. १९७३ का वैशाख सुद १४ नृसिंह चतुर्दर्शी के दिन लिखवा को प्रारंभ कीदो। कोई रोजनामचो वा दिनचर्या को लिख्यो नहीं गयो, हाल जत्रै याद हो सही-सही लिखवा की कोशिश राखी गई है।

सं० १९०० भादवा सुद २ को जन्म है। तालीम वीं जमाना माफिक हिन्दी कागद लिखवो पढवो कुछ हिसाब मामूली और बाद में फारसी पढवो शुरू कीदो। फारसी तो पूरी आई नहीं न लिखवो आयो; उरदु छापा का वा लिख्या हुआ पढ लेवा के सिवाय कुछ भी विद्या हांसिल नहीं हुई न वां दिनां कोई मदरसो वा आछा पढावा वाला हा, अंगरेजी जानने वाला तो कोई था ही नही, फ़ारसी उरदु जानने वाला कोई दो चार ही आदमी हा।

पांच छः वर्ष की उमर होवा पर महाराणाजी श्री स्वरूपसिंहजी[1] के हुजूर में घड़ी दो घड़ी के लिए जाणा आणा शुरू हुवा उमर तो छोटी थी परन्तु मैं रोज मर्रा जाया करता था, और अकसर हाजरवास लोगों से मुझे कबूतर और रूई के बांदरे से डराने का हुकुम होता और मैं बहुत डरा करता। तमाशा मुलाहजे फरमाते रहते, कभी-कभी माँस खाने का आरोगतां वगत हुकुम होता। मैं खाने से इन्कार करता रहता। एक दिन का माजरा है के हुकम फरमाया, अगर माँस खाणा जबान से कहदे तो इसको एक गाँव दिया जावेगा। हाजरवास लोगों ने बहुत समझाया के माँस खाणा नहीं पडेगा जबान से कहणा चाहिये लेकिन मैंने तो इन्कार ही किया। उन दिनों कुछ समझ नहीं थी लेकिन इस माजरे कु कुछ समझ आने पर मोजीज हाजरवास लोगों ने भी मुझको कहा, मौका चूक गये। लोग कहते थे के श्री हुजूर ने

---

१. महाराणा स्वरूपसिंह महाराणा सरदारसिंह के छोटे भाई थे जिन्हें दिवंगत महाराणा ने गोद लिया था। इनकी गद्दी नशीनी वि. सं. १८९९ आषाढ़ सुदि ८ (१५ जुलाई १८४२) को सायंकाल हुई थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गांव देरगें की श्री एकलिंगजो की आरग[1] तक खाई। उरग वगत बाबाजी साहब[2] शेरसिंहजो सं १६०१ से प्रधाने का काम करते थे। उन्होंने भी इस वाके की तसदीक की।

भाईजी[3] साहब मुरलीधरजी सं. १६०८ में कोटे श्रीमहारावजी[4] से बाईजी[5] राज श्री फूलजो के साथ शादी होने पर भेजे गये सं १६१७ तक वहां रहना हुआ। साल दो साल में दो चार महिना वास्ते यहां आना होता था। भाई जी साहब की तनखा १५०/– हालो चलरग के माहवार मुकरर हुए। घर का काम और मेरा पालन पोषरग माता ही से होता था। अलबत्ता दादा[6] भाई अजीतसिंह जी जबके बारा तेरा वर्ष की उमर हुई कुछ कसरत कररगा, घोड़े पर चढ़ना, घोड़े पर जीन मांडना सिखाते रहे। और फारसो पढने का सिलसिला भी उन्होंने ही जारी करवाया और दारग की कचेड़ी भी काम सीखने के लिए जाया करता था। चार छः महिनों के ही वास्ते जाना हुआ। महलों से श्रीजी हुजूर का गोरधन विलास विराजरगा जादा होता था, वहां भो जाया करता था। कोई हिसाबी गिरगती वगेरे की बात पेश आती ता मैं फौरन अरज कर देता उसकी तसदीक होने पर फरमाते के यह छोरा होशियार होगा और निगाह खावंदी सुनजर को रखते थे। पासवानजो के भाई मेहता रघुनाथसिंहजी मेहता मोखजी का बेटा माधोसिंहजो, मदनसिंहजो,

---

१. आरग – शपथ। मेवाड़ में एकलिंगजी की आरग सबसे बड़ी शपथ मानी जाती है। दूसरी शपथ 'महारारगा की आरग' है।

२. बच्छावत मेहताओं के वंश में मेहता अगरचन्द के तीसरे पुत्र सीताराम के पुत्र शेरसिंह थे। ये अपने जीवनकाल में तीन बार 'प्रधान' बनाये गये तथा मेवाड़ की अनेक मुहीमों में भी भाग लिया। अन्तिम दिनों में चित्तौड़ जिले की सरकारी रकम ये जमा नहीं करवा सके अत. सलुंबर रावत की हवेली में शररग चले गये जहां इनकी मृत्यु हुई। पन्नालालजी अगरचन्द के छोटे भाई हंसराजजी के पुत्र दीपचन्द के परिवार के थे। अतः ये रिश्ते में उनके बाबाजी लगते थे।

३. मुरलीधर—ये मेहता पन्नालालजी के पिता थे।

४. कोटा के महाराव रामसिंह।

५. फूलकंवर—ये महारारगा सरदारसिंह की तीसरी पुत्री थीं। इनका विवाह महारारगा स्वरूपसिंह के समय कोटा के महाराव भीमसिंह से वि. सं. १६०७ फाल्गुन सुदि ६ को हुआ था।

६. अजीतसिंह—शेरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सवाईसिंह जो उनकी विद्यमानता ही में मर गये थे के अजीतसिंह गोद आये थे। इनके भी कोई संतान नहीं थी अतः मांडलगढ़ से चतरसिंह इनके गोद आया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालमसिंह जी हाजर वास रहते उनको मेरी होशियारी का हवाला फरमाया करते। ऐक आध वक्त मेरे सामने भी फरमाया। सं. १९१४ के साल गदर हुआ अंगरेज लोग मेमों को जगमन्दिर[1] में रख गये। ऐक दो दफे उनके पास भी खातिर तसल्ली वगेरे मामूली पैगाम लेकर भेजा गया था।

सं. १९१४ के साल में मेरी शादी कोठारी जी छगनलालजी[2] के यहां हुई, बाबाजी साहब गोकुलचन्द[3] जी को प्रधाने का काम सं. १९१३ में मिल गया था, कोठारी छगनलाल जी से मिलनी करने से इन्कार किया।

गदर के जमाने में निम्बाहेडे का टोंक का हाकिम बागियों में शामिल हो गया इसलिए अजंट सा० मेवाड़ ने नीमाहेडा कब्जा करने के लिए बाबाजी साहब शेरसिंहजी को (जो नीमच की छावनी श्री दरबार की नाराजगी के सबब चले गये थे) और काकाजी फूलचन्दजी[4] जो अजंट साहब की हिफाज़त वास्ते मय किसी कदर फौज के साथ रहा करते थे नीमाडा कब्जा करने को कहा। इन्होंने श्री दरबार का हुकुम लेकर मेवाड़ से सरदारों की जमीयत वगेरे फौज इकट्ठी कर निमाहेडे पर कब्जा कर लिया। निमाडा पर बागी लोगों वा बख्शो मुकाबलो कीदो, झगड़ो हुवो, दो तीन आदमी फौज का मारा गया, एक सोदास जी काबरा जो बाबाजी सा० शेरसिंह जी के साथ थे मारे गये, बाबाजी सा० शेरसिंह जी का घोड़ा के गोली लागी, आखिर फतह हुई। इस पर बाबाजी सा० शेरसिंहजी की महाराणाजी जवानसिंह जी के धारण की सलह सोना का काम की बख्शी सो भाई तख्तसिंहजी[5] पास

---

१. सिपाही विद्रोह के समय नीमच से भागे हुए कोई ४० अंग्रेज जिनमें औरतें और बच्चे भी शामिस थे जिन्हें डूंगला से सुरक्षित लाकर जगमंदिर में रखा गया था। (उदयपुर राज्य का इतिहास ओझा पृ० १०७८-१०७९)

२. छगनलाल—मेवाड़ के प्रधान एवं महक्मा माल के हाकिम कोठारी केसरीसिंह के छोटे भाई। खाजाना, कोठार एवं फौज का काम इनके अधीन रहा।

३. गोकुलचन्द—मेहता अगरचन्द के ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द का पौत्र एवं स्वरूपचन्द के पुत्र। प्रधान के रूप में तथा महक्माखास के सेक्रेटरी के रूप में भी कार्य किया।

४. वच्छावत मेहता पृथ्वीराज के दो पुत्र हुये अगरचन्द एवं हंसराज। हंसराज का पुत्र दीपचन्द और उसका पुत्र मोतीराम था इसके पुत्र का नाम फूलचन्द था। पन्नालालजी के दादा प्रतापसिंह एवं फूलचन्द के पिता मोतीराम दोनों सगे भाई थे। सिपाही विद्रोह के समय कर्नल शावर्स के साथ फूलचन्द नियमित रूप से साथ रहे थे और निम्बाहेड़ा पर कब्जा करते समय भी ये मौजूद थे।

५. तखतसिंह—पन्नालालजी के तीसरे छोटे भाई थे जो मेहता देवीचन्द के भाई उदयराम के खानदान में जालिमसिंह के गोद चले गये थे। जालिमसिंह भी इस परिवार में गोद आये थे जो वस्तुतः मेहता शेरसिंह के दूसरे पुत्र थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौजूद है। अजंट साहब ने वतौर इनाम के नीमाहेडा राज में सुपरद किया। हाकिम बाबाजी सा० शेरसिंह जी ही मुकरर हुवा। पर काम अजंटो में निमाहेडा को बराबर नहीं भुगत्यो और खरचो जादा कर दियो आमदनी सुंई। शिकायत पर श्रीजी हुजूर में अजंट साहब दूसरे हाकिम मुकरर करवा की लिखी जीं पर दादाभाई अजीतसिंह[1] जी ने और ढीकड्या राधाकिशन जी ने मुकरर फरमाया और जमा खरच को बजट भी साबित फरमायो। वांके साथ मारी भी नौकरी मुकरर फरमाई। २५/-- महावार की तनखा बजट में दरज करो सो मिलता रहा। दादाभाई अजीतसिंह जो ने होशियार करवा की हिदायत हुई। वांके साथ मेरा निम्बाहेडे रहना हुआ वहां पर लिखा पढी मसोदा करने का काम करता था और अवसर काम पेश आने पर नीमच की छावणी वकील सहीवाला उरजणसिंह[2] जी थे वां पास अक्सर मुझे भेजा करते थे। नीबाहेडे में राधाकिशन जी के पास घोड़ा घोड़ी भी अच्छे थे क्योंकि वो पायगो[8] के दारोगाजो थे। मेरा भी इस वजह से घोड़े चढणे का महावरा अच्छा हो गया, और नीमाहेडा में कसरत वा लकड़ी पट्टा खेलणा भी सिखाया गया, पूरा तो हासिल नहीं हुआ लेकिन कुछ महावरा हो गया। नीमाहेडा का

---

१. दादाभाई अजीतसिंह—मेहता शेरसिंह के पुत्र सवाईसिंह के दत्तक पुत्र थे। इनके भी कोई संतान नहीं होने से मांडलगढ़ से चतरसिंह इनके गोद आया था जो कई वर्षों तक मांडलगढ़, राशमी, कपासन व कुंभलगढ़ का हाकिम रहा।

२ सहीवाला अर्जुनसिंह—ये शिवसिंहजी सहीवाले के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८८२ की श्रावण शुक्ला २ को हुआ था। जाति से भटनागर (कायस्थ) थे। महाराणा भीमसिंहजी वि. सं. १७६४ या ६५ से सही का काम इनके खानदान में चला आ रहा था। महाराणा स्वरूपसिंहजी के समय से ये महाराणा की सेवा में रहने लगे। वि. सं. १९१२ (१८५५ ई.) में उन्हें मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट के पास वकील के रूप में नियुक्त कर भेजा गया। ये मेवाड़ में अनेक ओहदों पर रहे और महाराणाओं के विश्वस्थ व्यक्ति के रूप में अनेक कार्य किये और ये सैनिक विद्रोह के समय कप्तान शावर्स के साथ थे। पन्नालालजी के बाद संवत् ९९३१ में महक्माखास के काम पर व महाराणा सज्जनसिंह के समय इजलास खास व महद्राजसभा के सदस्य रहे। पन्नालालजी के त्यागपत्र वि सं. १९५४ के बाद भी महक्माखास के सेक्रेटरी के रूप में कोठारी बलवंतसिंहजी के साथ इन्हें भी नियुक्त किया गया। महाराणा द्वारा इन्हें सोने के लंगर प्रदान किये गये। संवत् १९६२ में इन्होंने इस्तीफा दिया और वैशाख शुक्ला २ संवत् १९६३ में इनका देहान्त हो गया। (देखें सहीवाला अर्जुनसिंहजी का "जीवन चरित्र")।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाल मेरे हाल में लिखने की जरूरत नहीं थी पर शुरु में खिदमात मेरी निमाहेडा से हुई इसलिए उसके सिलसिले में लिखना पड़ा।

सं० १९१६ के साल बाबाजी साहब गोकलचन्द जी से प्रधाने का काम माफ होकर कोठारीजी केसरीसिंह जी को प्रधाना मिला।[1] इसी साल में इनके वाई (लड़की) का व्याव था, मुझे निमाहेडे से बुलाया, साथ में दो सवार एक ऊंट और छोटू नाई जो खेराड जहाजपुर का होशियार आदमी था साथ भेजा गया। गांम हींते के पेली तरफ पहुँचने पर मालूम हुआ कि हींते में होकर बागियों की फौज निकली है हम थोड़ी दूर वांही कुडे पर ठहरे जब मालूम हुआ के गाम हींता वीरान है फौज निकल चुकी जब हम यहां से खेरोदें की तरफ पहुँचे खेरोदें की तरफ से चंद सवारों का पूरपट्टी[2] आना मालूम हुआ। नाई ऊंट पर सवार था उसने कहा शायद वागी होवे, पीछे भाग कर गाम में चले चलो। सवारों ने भी यह राय पसंद की। घोड़े पीछे फेरे परन्तु मेरे सवारी के घोड़ के चंटी लगाने पर बजाए दौड़ने के पुस्तग फेंकने लगा इतने में सवार करीब आही गये। मैंने कहा अब भागना ठीक नहीं, खड़े रह जावो होना होगा सो होगा। हम रस्ते में खड़े, इतने में वो चार गोरों के रिसाले के सवार हमारे नजदीक आ गये, हम को देखते ही दो सवार तो घोड़ों पर से कूद पडे एक हाथ से बाग पकड़ली दूसरे हाथ से पिस्तौल हमारे सामने कर दिए, दो सवार दूसरी तरफ घोड़ों पर चढे रहे, फिर हमसे पूछा, तुम कौन हो ? मैंने अपना पता दिया और काकाजी फूलचन्द जी अजंट साहब के साथ इस फौज में शामिल थे, यह मुझ को मालूम था और मैं खेरोदा रात को उन्हीं के पास जाकर रात रहणा चाहता था उनका पता बताया, फेर पिस्तौल से हटा लिए, और वागी लोगों की फौज का हाल दरयाफत किया। हींता ऊजड़ होने और बागी लोगों की फौज चली जाने जैसा देखा था, हाल जाहर किया। वो लोग तो घोड़ों पर सवार हो हींते की तरफ रवाना हुए हम खेरोदे होकर उदयपुर पहुँचे। कोठारीजी के यहां विवाह हो जाने के बाद चंद रोज में फिर निमाहेड़े अपनी जगह पर जाना हुआ। बाद में चंद महिनों बाद सुना गया के नीमाहेडा वापिस नवाब टोंक को दे दिया जावेगा, दादाभाई अजीतसिंह जी मुझ को साथ लेकर उदयपुर आये, सीधे श्रीजी हुजूर शिकार बाड़ी विराजते थे, वहीं जाकर हाजिर हुए, अजीतसिंहजी और मुझको देखते

---

१. विक्रमी १९१६ तातिक कृष्णा २, १३ अक्टोबर १८५९ ई० के दिन महाराणा ने कोठारी केसरीसिंह को 'प्रधान' पद प्रदान किया। (वीर विनोद पृ० १८९३)

२. पूरपट्टी=तेजी से दौड़ते हुये।
कोठारी केसरीसिंह के घराने के बारे में देखें उदयपुर राज्य का इतिहास ओझा—पृ० १३३९-४३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही पूछा गया कि क्यों चले आये ? अजीतसिंह जी ने कहा कुछ अरज करना है, किसी को हुकुम होवे सुनकर अरज करें दो पासवान उनके पास भेजे गये इन्होंने अरज कराई के मैं निमाहेडा अपने हाथ से टौंक वालों को नहीं सौंप सकता मर कर सौंप सकता हूँ ।[1] इस पर नाराज होकर उनको गोरधनविलास में ही हवालात में कर दिये और घर पर पहरा भेजने का हुकुम हुआ । मैं बहुत डर गया, गुपछुप वहां से निकल उदयपुर घर पर चला आया और उनकी वहू के पास जाकर खबर दी । उन्होंने अपना जैवर और एक साजसी कागदों की छोटी सी खलेची दी, वो लाकर मेरे मकान पर रख दी । लेकिन देहसत से फिर गोरधनविलास दो तीन दिन तक नहीं गया । मेरी माता ने वहुत समझाया, डरने से काम नहीं चलेगा, गोरधन विलास जाओ । आखर जाणा पडा । मुजरा करके खडा रहा, मेरी तरफ देखकर थोडी देर से हुकुम फरमाया के 'थारा दादाभाई के चाले लगे मती' उनके रोब से मैं कुछ बोल न सका, उदयरामजो ढोकडा हुक्का आरोग रहे थे उन्होंने अरज किया– छोरा है, क्यूं उनके चाले लागेगा हुकुम माफिक रहेगा, मुझे कहा कि अब वासूं कुछ वास्तो राखजे मती फिर चद रोज वाद कोठारी जी को मुझ से काम लेने का हुकम हुवा । उन दिनों प्रधान के तहत अंग्रेजी दफ्तर अलग रहता था । उसमें काम सीखने के लिये मुकरर कर दिया और भाईजी साहब[2] का इसी अरसे में कोटे से आना हुआ था और फिर जाने का इरादा नहीं था । भाईजी साहब के रेल मगरे का परगना सुपरद हुवा लेकिन सं० १९१७ में कहतसाली[3] हो गई । नाज की बहुत जरूरत हुई सो नाज खरीद भेजने के लिये फिर कोटे जाना हुवा और मैं रेल मगरे का काम यांही से सम्हालता रहा । रेल मगरे में अपनी तरफ से मुकरर किये हुवे अहलकार काम करते थे । सं० १९१७ का साल में रेल मगरा सेजा[4] का परगणा होने से आमदनी अच्छी हुई, आंकड़ा मालूम करने पर भाईजी साहब को मोतियों की कंठी वगसी गई । जब रेल मगरा का परगणा सुपरद हुआ ५०००) रुपे ।) सैकडे से व्यापार के लिये भी वखसे गये, इस शर्त पर के हुकम होवे जद एक महीने में जमा करा देना । ईं तरह काकाजी फूलचन्दजी ने वा दादाभाई अजीतसिंह जी ने भी पांच पांच हजार रुप्या वगसा और भी अहलकारां ने बगसाया गया । मैं अंग्रेजी दफ्तर में काम सीखता ही था के मुझे संवत् १७ के अखोर साल के करीब खेरवाडे सुपरडंट ऐन्सली साहब पास जो गदर में जग मन्दिर में रहे थे, उनकी मारफत टोटेदार बन्दुकें जो नई

१. "गो. ही. ओझा—१३३९-१३४३

२. भाईजी साहब=पिताजी । ३. कहतसाली=दुष्काल । ४. सेजा=सिंचाई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किस्म की ईजाद हुई थी, उनके चलाणे वगेरे की तरकीब सीखने के लिये उसता बाज़ू को मेरे साथ देकर खेरवाडे भेजे गये। जाहरा तो बन्दूकें लाने की बात थी लेकिन मुझे बहुत पोशीदा ऐक फहरिस्त ऐन्सलो साहब की सलाह लेने के लिये लिखावादो, उन दिनों में अजंट टेलर साहब से बहुत ना-रसाई चलती थी और वे हर तरह से रियासत को नुकसान पहुंचाना चाहते थे। मैंने वहां पहुंच कर हुकम की तामील की। साहब ने जबानी अजंट साहब से रसाई करने की ही मीठी चुंठी सलाह दी। पीछा आता था के जावर में हुकम मिला के दुश्मनों के गौड़े[1] पर ऐक नासुर हो गया है उसका दरद बहुत होता है उसके अलाज वास्ते डाक्टर साहब खेरवाडे में हैं उनसे दवा लायें, मैं पीछा खेरवाडे पहुंच डाक्टर साहब से मिला उन्होंने मल्लम दिया, लेकर यहां हाजिर हुआ।

थोडे दिन गुजरने पर छोटी सादड़ी के परगने का काम मेरे सुपरद फरमाया गया। उन्हीं दिनों के पहले वेदलेराव जी[2] और कोठारी जी[3] बडे लवाजमें के साथ नीमच की छावनी अजंट साहब पास भेजे गये थे। लाट साहब को दरबार आगरा में हो, अठे भी नूतो श्रीजी में आयो, पर खेद के सबब पधारवा की इनकारी हुई, श्रीजी का प्रतिनिधि वेदले रावजी और कोठारी जी पूरे लवाजमें के साथ भेजे गये पर नीमच पहुंचने पर अजंट साहब ने दरबार में जाने की जरूरत नहीं समझ इन्कार कर पाछी सीख उदयपुर आवा की दे दी। मैं छोटी सादड़ी जा रहा था और वेदले रावजी व कोठारी जी नीमच से आ रहे थे। बडी सादड़ी के मुकाम शामिल हो गये, मैं कोठारीजी से मिला उन्होंने बहुत सोच विचार कर कहा कि इन दिनों में अजंट साहब की बहुत नाराजगी है और सादड़ी में हमेशा काम पड़ता है और हर एक बात में सख्त हुकुम देते हैं यह तुम्हारा पड़ला काम है अगर शिकायत हुई तो आइन्दा मुश्किल है, मेरी सलाह है कि पीछे उदयपुर चलो। मैं कही, श्रीजी हुजूर क्या समझेंगे इसकी भी आप विचार लेवें। उन्होंने कहा अरज कर देगें; कोठारीजी के साथ में सेठजी चंदनमलजी व जती मगनीरामजी भी थे, मैंने उनसे भी सलाह पूछी, उन्होंने भी यह सलाह उत्तम बताई, लाचार साथ ही वापिस लौट आया। कोठारीजी के साथ ही श्रीजी हुजूर में हाजिर हुआ। मने देखताईं फरमाई 'यो पाछो क्यूं आयो' कौठारीजी नजदीक बैठ पोशीदा सब अरज करी, सुन कर जाहरा हुक्म फरमायो-छोरा को मन नहीं बगड़ जावे अबार ही दूसरो काम सुपुर्द करो, कोठारीजी अरज करी, विचार अरज करूंगा फरमाई अबार ही विचारो कोठारीजी अरज करी दीवाणी दफ्तर खाली है, हुकुम हुवो

---

१. गोड़े पर= घुटने पर २. राव बख्तावरसिंह। ३. कोठारी केसरीसिंह।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठे, मुकरर कर दो लेकिन मुडा आगे आदमी होशियार चावै जीं पर कोठारीजी लाला धीरजलालजी बेटा शिवनाराणजी जी ने विचारा पर वांने पसंद नहीं फरमाया, फरमाई–त्रिसन राव संगी सुरतनामा रे भण्डार काम करे वीने मुकरर कर दो, दीवाणी दफ्तर को काम सुपरद हुवो, वा दिना अदालत में सिरफ मुद्दई-मुद्दायला की हकीकत मुख्तसर लिखी जाती कत्रीक जबानी पंचायत वगैरह वैतीही वगैरा।

आसोज सुद १०. सं० १९१८ वागौर महाराज सम्भुसिहजी को कुंवर पदा बगसा गया श्रीजी हुजूर की या मरजी ही के ईंमे सलुंबर रावजी[1] शामिल वेजावे . ईं की कोशिश भी हुई पर वी हाजर नहीं हुआ। ईं कोशिश में कुराबड़ रावजी[2] अठे हाजर हा वां भी नजर करवा सूं इन्कारी कीदी के सलुंबर करे जद करूं। ईं पर बेदलेरावजी[3] बुहुतं धमकी दीदी, वेदले आसींद,[4] नजर कर दीदी और भी जो हाजर हा सब नजर कर दीदी। सं० १९१८ काती सुद १५ श्रीजी हूजूर देवलोक पधारा और महाराणाजी श्री शंभुसिहजी[5] गादी विराज्या बाद में जमाना की सूरत वा हाल ही पलट गयो। अजंट टेलर साहब वा डाक्टर साहब को अठे रहवो करार पायो अजंटी नीमच सू अठे आय गई, सब सरदार भी अठे आप हाजर हुआ, पंच सिरदार मुकरर वेद काम सव अजंटी में हुआ लागो। पंच सिरदारी में वेदलो, देवगढ, भींडर, गोगुन्दो, भैंसरोडग, बाबाजी साहब शेरसिह जी, प्रोत स्यामनाथ जी, कोठारी जी केसरी सिंह जी मुकरर हुए। कोठारी जी प्रधाने पर दस्तूर कायम रहे, जमा खरच व माल को कुल काम कोठारी जी के ताल्लुक रहो। पंच सिरदार तामिली अहकामात कोठारी जी के नाम लिखता हा, पंच सिरदार अपना मतलब सिवाय कोई रियासती हक हकूक री तरफ निगाह नहीं राखी हर एक अव्वल नंबर वा बतीसों[6]

---

१. सलुंबर रावत केसरीसिंह।
२. कुराबड़ रावत ईसरसिंह।
३. बेदला राव बखतसिंह।
४. आसींद रावत दूलहसिंह।
५. महाराणा शंभुसिंह का जन्म वि. सं. १९०४ पौष वदि १ को हुआ था। (२२ दिसम्बर, १८४७ ई.)
६. मेवाड़ के सरदारों की तीन श्रेणियाँ हैं। महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) ने अपने प्रथम श्रेणी के सरदारों की संख्या १६ नियत की थी जिससे उनको 'सोला' कहते हैं। यह संख्या बाद में बढ़कर २१ तक हो गई किन्तु बैठकें १६ ही रहीं। द्वितीय श्रेणी के सरदार 'गोल के सरदार' कहलाते हैं। सभी श्रेणी के सरदारों को दरबार में बैठक की प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में से अपनी दुखदरद की कलमें लेकर फैसला किया गया जिससे करीब ७५ हजार बीघा की जमीन वा ढाई लाख रुप्या खजाने से देणा पडा। बावाजी साहब शेरसिंह जी से जो बडा दरबार ने दंड लिया था उसमें से डेड लाख जमा हुआ वो उन्होंने वापस ले लिया, जागीर भी जबत थी वो वापिस बहाल करा ली, ऐसे ही प्रोतजी का गाम जपत था वो वापिस ले लिया। चित्तोड़ की हाकमी भी बावाजी साहब शेरसिंह जी ने अपने मुकाते करा ली, और चित्तोड़ की किलेदारी भी अपने तहत में कर ली। हमारी भी एक वाड़ी जो हवाला सामिल कर ली गई थी उसकी ऐवज में चार बीघा जमीन पीवल की वाड़ी हमकुं भी मिल गई। इन सब लोगों ने अपना अपना मतलब किया। कोठारीजी दरपरदे इन बातों को रोकते थे परन्तु कुछ चलती नहीं क्यूंके अजंट साहब पंच सरदारों की तजबीज को फौरन मंजूर कर लेते इस सबब से कोठारीजी को भी हां में हां मिलानी पड़ती थी। अजंटी में मुकदमाती शिकायतों की सैकड़ों अरज्यां लागवा लागी, कैफियत तलब होवा लागी। महाराणाजी स्वरूपसिंह जी के वगत में चंद बरसों से महाराव गोपालदास जी सलाहकार और मुसाहब हो गये थे। अजंट साहब के यहां आते ही ज्यो महाराणा सहाब के साथ पासवानजी एजनवाई सती[1] हुवा हा और जिनकी गोपालदासजी पर अत्यन्त मेहरवानी थी उनके सती होने की तहकीकात शुरू हूई। इलजाम आसींद रावतजी वा गोपालदासजी पर लगाया गया। गोपालदासजी फरार होकर रूहपोश हो गऐ। आसींद रावजी को ठिकाणें में रहने का हुकम हुआ। थोड़ अरसे पहले महाराणा सरूपसिंहजी के वक्त ही में दादा भाई अजीतसिंह, बावाजी सरूपचन्दजी की अरज पर रिहा वे चुका हा, वांने मारे सामिल दीवाणी में कोदा गया, काम गड़बड़ ही चलतो रह्यो, फिर भाईजी साहब के सुपरद जाहजपुर को काम हुवो, मने भी लार जावा की कोठारीजी कह दीदी सो जहाजपुर भाई जी साहब साथ चल्यो गयो, उठे वां दिनां कायदो हो के आठवें दिन हाकिम खेराड़ की गोराफ कर देवली की छावणी जाय सब हालत मीणा की पोलिटिकल एजेंट ने रिपोट करे सो अक्सर मुंही जावतो रह्यो। अजंट साहब छावणी देवली सुं बातचीत को इत्तफाक बहुत रह्यो। जाहजपुर से एक मरतबा होली की फाग वा गणगोर कोटा की देखवा वास्ते कोटे जावो हुवो। महारावजी सुं मुजरो हुवो। फाग की वा गणगोरां की सवारियाँ में सामिल हुवो, शहर आछी तरह देख्यो, बरताव भाई जी

---

१. मेवाड़ के महाराणाओं के साथ सती होने की परम्परा में यह अन्तिम सती थीं। इनके बाद सती-प्रथा के विरुद्ध अंग्रेजों के अभियान व कायदों के फलस्वरूप राजवंश में अन्य कोई सती नहीं हो सकी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहब को रहतो वीं ही माफिक रह्यो। इस अरसे में टेलर[1] साहब की वदली वे गई। मेवाड़ के अजंट ईडन[2] साहब मुकरर हुए, उन्होंने रियासती हक़ूक का बहुत ख्याल करके हरेक पंचसिरदारी की तजवीज में ऐतराज करने लगे, इससे पंचसिरदारों ने भो राह रसम वरताव वगैरे में अजंट साहव की शिकायत वडे साहब के पास करदी। टेलर साहब ने मेवाड़ में ये ही अच्छे काम किए के इन्होंने अपने भाई टेलर साहव इनजीनियर को बुलाकर नीमच की सड़क का काम जारी कराया और यहाँ अस्पताल, मदरसे कायम किये गये। सं० १६१६ में मैं उदयपुर जाहजपुर से आया दो महिने के अरसे तक पंचसिरदारों की सिरस्तेदारी का काम किया, फिर पंच सरदारों में से दो एक सिरदार अहलकारों ने ईडन साहब से कोठारीजी की शिकायत की के अजंट साहव के हुकुम से कोठारीजी को हवालात में किये गये और उनके साथ मुझको भी घर पर पहरा भेज कर हवालात में किया, और जहाजपुर भी घोटावाला भेजकर भाईजी साहब को भी बंदोबस्त में यहाँ लाने का हुकम दिया, जब देवली की छावणी अजंट साहव को भाईजी साहव के हवालात में हाने की खवर पहुची तो फौरन अजंट साहव मेवाड़ के नाम चिठो लिखी के मेहताजी मुरलीधरजी ने इन्तजाम अछा रक्खा फिर बिदून इत्तला मेरे उनको क्यूं कैद किया गया? जब हमारे हवालात में होंन का हाल अजट साहब को मालूम हुआ तो उन्होंने पंचसरदारों से जवाब तलव किया, लेतलाली में पाँच दिन निकाले फिर सख्त ताकीद हुई, जब सिरदारों ने मुझे कहलाया जमानत देवावो, माँ कह्यो जमानत सरदारां टाल कुण देवे, जीं पर इन्कार हुवो, फेर कहवाई साहूकारों की जमानत देवावो, आखर बाबाजी साहब जालमसिंहजी तो साहूकारां ने जमानत कर दीदी अर साहूकार हेमराजजो सांगानेर्या वा रखवदासजी तलेसरा की जमानत

---

१. पोलिटिकल एजेण्ट R. D. Taylor जो पंचसरदारी अथवा रीजेन्सी कौउन्सिल के अध्यक्ष थे उनके विलायत चले जाने पर कर्नल ईडन ने वि. सं. १६१६ चैत्र शुक्ला ६ (२० अप्रेल १८६२) को मेवाड़ के पोलिटिकल एजेण्ट के रूप में उदयपुर आकर अपना कार्य संभाला। वीर विनोद पृ० २०६३

२. A.G.G, ने पोलिटिकल एजेन्ट के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों पर एजेण्ट कर्नल ईडन की वात पर विश्वास करके रीजेन्सी कौउन्सिल को तोड़ने व सारा कारोवार अपने हाथ में लेने की आज्ञा दी। अगस्त १८६३ में एजेण्ट ने रीजेन्सी कौउन्सिल के स्थान पर "अहलियान श्री दरबार राज्य मेवाड़" नाम की कचहरी स्थापित की और उसमें मेहता गोकुलचन्द तथा पंडित लछमणराव को नियुक्त किया—(ओझा पृ० ११००)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवाई, पेरो घर पर सुं उठायो गयो। पहरो उठवा बाद श्री भाईजी साहब भी जहाजपुर पधार गया, जाजपुर का इन्तजाम की खुकाबुदी में (अजंट) गवरनर जनरल भाईजी साहब के नाम ईं माफिक कागद लिख्यो।

॥ श्रीरामजीं ॥

सिध श्री जाजपुर सुभसुथाने महताजी श्री मुरलीधरजी जोग जनरल जार्ज सेंट पेटरिक राज श्री लारेंस साहब वहादुर लिखावता सलाम वांचजो, अठा का समाचार भला है राज का सदा भला चाहीजे॥ अपरंच खत राज का आया, राज ने लिखा कि खेराड़ का बंदोवस्त माफिक मरजी कप्तान बेंनन साहब वहादुर के किया जो इधर वक्त दोराह हुजूर भी तशरीफ लावें तो इन्तजाम मुलाहजा होवे और मुलाजमत हांसल होवे। वांच वाकिफ हुवा ज्यो हुजूर ईं जानीब को फुरसत हुई तो उस तरफ आना हो सकेगा और साहब वालाशान कप्तान बेनन साहब वहादुर के लिखने से भी मालूम हुआ के उस इलाके का इन्तजाम राज ने अच्छा किया है इस वात से हमें वहोत खुशी हुई है, राज कुं चाहीए कि आयंदा भी इसी तरह साहब वहादुर मोसूफ की मरजो माफिक इन्जताम इलाके में कोसीस करते रहें। तारीख ३० नवम्बर १८६२ ई।

ह०/- जार्ज सेंट पेटरिक लारेंस

आखिर होली के दिन पगे लगाया गया, जठां बाद श्री हुजूर में हाजर वासी रहतो रहो। स० १९१८ का वैसाख में दादाभाई अजीतसिंहजो सवाईसिंह के गोद रह गए इस सबब से पंचसरदारी के काम में इनका दखल वढ गया और पंचसरदारी के सिरस्तेदार भी येही मुकरर कर दिये गये। कोठारीजी के गवन की शिकायत करने में खानीमुखानी दादाभाई अजीतसिंह जी ही थे और इन्होंने ही दूसरा काम यह किया के मांडलगढ की किलेदारी वा कदोमी हाकमो वावजीसा सरूपचन्दजो सुं माफ कराय उन ही के पोते गोपालसिहजी को करादी। वावजी साहब सरूपचन्दजी, गोकलचन्दजी ने अठे हाजर वेणो पड्यो। इन दिनों में नीमच, नसीराबाद की लेन पर डाक पारसल की दो तीन वारदातां वे गई। अजीतसिंहजो को इसके वन्दोवस्त के लिए चित्तौड़ को हाकमी के सवव चित्तौड़ जाना पड़ा। वहां दो एक वावर्यों को पकड़ कर एक को हाथी के पैर के वाँध कर गिसवाया, वो मर गया, एक दो के मारपीट से दाँत वगैरह पड़ गये। यह खबर अजंट साहब को पड़ने पर अजीतसिंहजो यहाँ तलव किये गये लेकिन यहाँ आकर रूहपोश हो गये। कोठारीजी की तहकीकात शुरू ही थी उसमें गवन तो साबित नहीं हुआ लेकिन अजंट साहब ने यह बात कायम की, के अगर हम इस मुकदमें को नहीं पकड़ते तो कोठारो जरूर वीस लाख रुपये गवन करता। फिर इन दोनों बातों पर जोर देकर रिपोट कर कुल अख्तियार रयासती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम का ईडन साहब ने हासिल कर लिया। वजाए पंचसिरदारान के अहलियान दरवार के नाम से बाबाजीसा गोकुलचन्दजी पंडत लछमणरावजी कुं बाहर से बुलाकर तनखा मुकरर कर मुकरर किया। और अदालतों का भी बाज़ाब्ता बंदोबस्त किया। मोलवी निजामुद्दीनजी को दीवाणी पर मुनसी सायन आलीखांजी को फौजदारी पर मुकरर किया श्री हूजूर के गारडियन पंडित रतनेश्वर को बुलाकर मुकरर किया और बड़े मदरसे की और शंभुनिवास के इमारतों का काम जारी किया। अजीतसिंहजी के गिरफ्तारी का हुकुम जारी कर कोठारीजी को उदयपुर के बाहर रहने का हुकुम जारी किया और बावाजी शेरसिंहजी में चित्तौड़ के मुकाते के रुपे बाकी रहजाने से हवालात की दहसत से चौगान के द-ीखाने कोठ्यारे रावजी के सरणे चले गये। रावजी ने सूपणे से इन्कार कर दिया के यहाँ भी हवालात में मेरे सुपरद है। अजंट साहव ने जागीर के गांम जपत कर लिये। कोठारिये रावजी चंद महिनों वाद जब कोठ्यारे जाने लगे तो शेरसिंहजी को सलूंबर की हवेली पहुँचा दिये और वाँही उनका इंतकाल १९२६ में हुआ, लेकिन उनके छोटे बेटे बावाजी जालमसिंहजी का हिस्सा महफूज़ रहकर उनके वहाल रहा। अहलियान दरबार मुकरर होने पर माल का काम भी इन्हीं के जुमे रहा इन्होंने कुल परगने जहाजपुर, कुम्भलगढ के सिवाय सेठ चानणमलजी, गंभीरमलजी वा जागीरदार, अहलकारों को मुकाते आंक बढाकर कर दिये तीन वर्ष की मयाद से इसमें सब कुं नुकसान बहुत हुआ। काकाजी फूलचन्दजी ने भी मगरा मुकाते कराया उसमें ७५ हजार का नुकसान रहा लेकिन इन्होंने अपनी जागीर का गांम देवस्थान में गिरवी रख कुछ रकम अदा कर दी। सेठजी चानणमलजी गंभीरमलजी का साहूकारी कामही बिगड़ गया। अहलकारों की जागीरें जब्त हुई उसमें मैंने भी भाई लछमीलालजी के होशियार होने का काम सीखने के लिए सेठजी से करेणा (कणेरा) परगना मुकाते कराया, लछमीलालजी वहाँ रहकर काम करते रहे, नुकसान हजार पनरा का रहा सो दे दिया गया।

मांडलगढ़ की किलेदारी वा हाकमी अहलियान दरबार की वक्त में वापिस बाबाजो सा सरूपचंदजी को मिल गई और सं. १९२१ में जहाजपुर का काम भी वापिस भाईजो साहब मुरलीधरजी के सुपरद हो गया। मैं भी जहाजपुर साथ चला गया। संवत् १९२२ में मेरे ऐक लड़की का जन्म हुआ जो डेढ वर्ष की हाकर गुजर गई। मैं १९२२ के साल जहाजपुर से पीछा नहीं आया। मगसर महीने में ईडन साहब श्री हुजूर को अख्तियारात देकर अजट गवरनर जेनरल हो गए, यहां अजंट निक्सन साहब मुकरर हुवे। इख्तियारात मिलने के थोड़े ही दिनों बाद वेमाली रावत जालमसिह जो सलाहकार होकर बहुत ही मरजीदान बण गऐ। काम बाबाजी साहब गोकुलचंदजी वा लछमणरावजीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खास कचहरी के नाम से करते रहे। आहलियान का नाम बदल दिया गया। बेमाली रावजी की मेहरवानी से पनरा हजार की जागीर संदेसर पट्टा की इनको बगसी गई, लछमणरावजी को भी छः हजार की जागीर बगसी।

मुझको और अखैनाथजी पंचोली की नाथद्वारे श्री गुसाईंजी महाराज और कांकड़ोली के दरमयान चंद बातों की तकरार थी सो भेजे। कांकड़ोली की हवेली में ऐक कुवे को पानी की कमी हो जाने से खुदवाते थे उसको रोक दिया, नाथद्वारे गुसाईंजो को बहुत कुछ बीनति की लेकीन कुछ असर नहीं हुआ न किसी बात का तसफिया हुआ अलबत्ता हमारा डेरा कांकरोली की हवेली में था सो कुवा तो हमने खुदवा दिया फिर यहां आकर सब हाल मालुम कर दिया। नाथद्वारे गुसाईं जी परदेश पधारते थे और यह मशहूर हुआ के श्री ठाकुर जी को पधराने के फिराक में पधारे हैं। श्रीजी हूजूर का खास रुका पाछा पधारने के लिऐ लेकर मुझको भेजा गया लेकिन वो तो रवानह होकर बहुत दूर चले गये थे। कुरज तक जाकर मालुम हुआ के अब मेवाड़ की हद तक नहीं पहुँच सकता तो वापस लौट आया, लेकिन जो बात मशहूर हुई वैसा नहीं था। महाराज पीछे खुद ही आ गऐ। नाथद्वारे गुसाईंजी के वा विट्ठलनाथजी का गुसाईंजी के एक दो हाथ की चबूत्री पर तकरार हुई। बडे मंदर से छोटी तोपें मंदर पर लगा दी दोनों तरफ से बन्दूकें चली, दो तीन आदमी मारे भी गऐ कुछ जखमी भी हुऐ। इसकी खबर यहां आने पर भी तहकीकात वास्ते भेजा गया। गटिया का बाग में ठहर तहकीकात की, नकशा जमीन तनाजे का बनवाया इसमें डेड दो महीना लगा। नाथद्वारे गुसाईंजी की ज्यादती मालुम हुई। वाकेई चबुत्रो छोटे मंदर की थी, अब भी उनके हो कब्जे में है। यांह आकर मिसल मालुम की, नतीजा कुछ नहीं हुवा। इस मुतफरकात काम करने के सिलसिले में दो वर्ष तक श्री हूजूर में मेरी हाजरवासी रही।

इन दिनों में काम रियासत का चलने में शिकायत ही रहती थी, श्री हूजूर की मनसा प्रधाने का काम कोठारीजी[1] को वापिस देने की हुई, इसकी

---

१. कोठारी केसरीसिंह—मेहता पन्नालालजी के श्वसुर कोठारी छगनलाल के छोटे भाई थे। वि. सं. १९०२ में महाराणा स्वरूपसिंह के समय जब 'रावलां दुकान' (State Bank कायम की गई तो इन्हें उसका हाकिम नियुक्त किया गया। संवत् १९०८ में इन्हें दाण का हाकिम बनाया गया तथा एकलिंगजी के मन्दिर का प्रबन्ध भी इन्हीं के सुपुर्द हुआ। ये महाराणा के खानगी सलाहकार भी रहे।

(शेष पृष्ठ १९०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोशीश होती रही। कोठारीजी जो ऐकलिंगजी में रहते थे आखिर वापस शहर में बुलाये गये, और सं. २४ का पौस सुद २ प्रधाने का काम सुपरद होकर उनके नाम से काम होने लगा। मुझको उनके साथ ही उनका ऐसीस्टेन्ट मुकरर किया गया, ६०) महावार तनखा मुकरर हुई। मैं कोठारीजी की पेशी करता था और जो कागजात वो श्रीजी में मालुम करने के लिए छोड़ देते, वे कागजात उनके सामने मुझे श्रीजी में पेश करने पड़ते थे। कोठारी जी से सिरफ किसी कागज में राय ली जाती थी या उनको अरज करणी होती तो वो करते थे। तह पाने पर कागजों पर हुकम मैं लिखता था उस पर श्री हूजूर दस्तखत वा मोहर फरमा देते थे। लेकिन जब कोठारीजी के प्रधाना पर तकरूरी का खरीता मामूल माफक अजंट साहब पास गया, साहब मोसूफ ने उसके जवाब में लिखा के गवरमेंट के हुकम के खिलाफ काम दिया गया है, मैं मंजूर नहीं करता। इस पर श्री हूजूर को वड़ा रंज हुआ। कोठारीजी के मंजूर होने की कोशोश होने लगी, अजंट गवरनर जनरल कीटींग साहब तशरीफ लाऐ। साहब का मिजाज वहुत तेज था, पहले लम्बे फरस की पेशवाई न थी वह भी करणी पड़ी और जब से जारी हुई। अखेनाथजी पंचोली वा धावाईजी साहब को लेने के लिऐ कौठी भेजे गऐ। साहब मोसूफ ने पूछा यह कौन है ? वकील ने उनका ओहदा चंवरदार वा आया का लड़का होना बयान किया। साहब ने फरमाया हमारे सामने चवरदार चपड़ासी होता है, ऐसे छोटे आदमी वा आया के धणी को भेजा वहुत नाराज हुऐ। जब से सिरदारों का जाना जाहर हुवा। साहब महलों में आऐ, ऐकान्त हुई मैं भी हाजर रहा, कोठारीजी भी बुलाये गऐ, कोठारीजी के बरियत की शिवूतें पेश की गई, साहब सुणाकर वातचीत करते रहे,

---

इनके कार्यों से प्रसन्न होकर वि. सं. १९१६ में इन्हें प्रधान का कार्य सौंपा गया। शर्म्भुसिंहजी की नाबालगी के समय रीजेन्सी कौंसिल के भी ये सदस्य रहे तथा महक्मा माल (रेवेन्यू) का काम भी इन्हीं के सुपुर्द रहा। इसी दौरान इन पर गबन का आरोप लगाकर पोलिटिकल एजेण्ट ने इन्हें उदयपुर से निकाल दिया, किन्तु उक्त आरोप निराधार निकला अतः इन्हें वि. सं. १९२४ में पुनः प्रधान बनाया गया। संवत् १९२६ में इन्होंने प्रधान के पद से इस्तीफा दे दिया।

महाराणा शंभुसिंह ने लोगों के वहकावे में आकर इनसे व इनके बड़े भाई से ३ लाख का रुक्का लिखवाया जिसमें से बाद में १ लाख माफ किये गए। कोठारी केसरीसिंह की देख-रेख में अनेक विभाग सुव्यवस्थित किये गये व इनकी बुद्धिमत्ता से रेवेन्यू की व्यवस्था बहुत अच्छी तरह की गई। वि. सं. १९२८ फाल्गुन वदि ३ (२७ फरवरी १८७२ ई) को इनका देहान्त हो गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आखिर यह तजवीज करार पाई के अब अजंट हैचीनसन साहब आने वाले हैं वो फिर इस मामले की तहकीकात कर रिपोट करें। हैचीनसन साहब के आने पर तहकीकात वगसी मथुरादासजी ने कराई, श्रीजी को बड़ा पशोपेश रहा। एक लाख की श्री परमेश्वरी की बोलामां की गई आखिर हैचीनसन साहब ने कुछ हाल दरियाफ्त कर रिपोट कर मंजूरी मंगाई इसमें तीन महीने खतम हुए, जब तक अजंटी की तहरीरात प्रधान के नाम आवणी चावती वो नहीं आई। वकील के जरिऐ से काम होता रहा। मंजूरी आने पर बहुत खुशी हुई, इस की खुशी में कोठारीजी ने अपने मकान पर जनाना सुदी वड़ी पहरावणी कीदी मथुरादासजी पंचोली को गांम वगसा गया। पीछे काम ठीक चलने लगा। वारदातों की शिकायत चली जाती थी इसका इन्तजाम वेमाली रावत जालमसिंह के सुपरद हुआ कोठारीजी ने हुकुम हुवो जीं माफक दो काम मारी समाल में जारी किया। श्री हूजूर की तरफ से लिखावट गड़वड़ करते सरदारों का वरताव वैठक वगेरे राहरसम सब काम अपनी जवान पर ही समझते थे सो उनसे दरयाफ्त के साथ सही सही लिखवा दिया। मैंने दोनों क़िताबात दुरस्त कराके सहीवाला वा प्रोतजी का दस्तखत कराय लिया के इसमें कमवेश लिखाई होवे तो कसूरवार हाँ, क़िताब पेश होने पर पसंद फरमाई गई।

इसी साल में (संवत् १६२४ मेरे लड़के) फतहलाल[1] का जन्म फागण सुद चतुर्थी को हुआ।

गोकलचंद जी ने गोपालसिंह जी को जो उनके पाटवी लड़के थे पाटवी पणे से एक हजार रुप्या सालाना रोकड़ देवा की सरत पर खारज कर छोटा बेटा विट्ठलदास जी कुं जायदाद वगैरा दे दी और खात्री का परवाना श्रीजी से करा लिया। गोपालसिंह जी ने दस हजार का इजाफा कर मांडलगढका मुकाता अपने नाम पर करवाया था, फायदा राज में रहा लेकिन गोपालसिंह जी और उनके लड़के वर्जेसिंह जी की वरवादी हो गई।

---

१. मेहता फतहलालजी—महता पन्नालालजी के बहुत ही योग्य पुत्र थे। १२ वर्ष की उम्र में आपकी अंग्रेजी की योग्यता को देखकर मेवाड़ के तत्कालीन सेटलमेण्ट आफिसर ए० विंगेट बहुत मुग्ध हुए और आपको अच्छा सर्टिफिकेट दिया। आपकी प्राथमिक शिक्षा बनारस के पण्डित जगन्नाथ झाडखण्डी के संरक्षण में हुई थी। केवल १३ वर्ष की उम्र में महाराणा साहब ने आपको पैरों में सोना वखशा। आपका साहित्यिक जीवन भी बड़ा उज्वल रहा है। केवल १३ वर्ष

(शेष पृष्ठ १९२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सं० १६२५ में सक्त केतसाली हो गई। इंतजाम कोठारीजी ने अच्छा किया। इसकी नेकनामी में अजंट साहब का खरीता श्रीजी में आया, जिसमें कोठारी जी की भी तारीफ लिखी थी उनको वह खिदमत पसंद की गई। इस कहत में बड़ा काम यह हुआ के खेरवाड़े की पक्की सड़क बनाने का काम अनजीनियर वलीयम साहब ने मुकरर कर शुरू कराया गया और अफीम का गवरमेंट का कांटा उदयपुर में मुकरर करवाया गया के पेट्यां खेरवाडे के रस्ते सीधी बम्बई जावे। अफीम का सायर का महसूल पहले बहुत कम था १७) फी पेटी मुकरर किया गया जिससे आमदनी में तरक्की हुई। इस कहतसाली में हेजा भी शुरू हुआ। बागौर महाराज समर्थसिंह जी हैजे से हरिसरण हुवे। उनके छोटे भाई सख्तसिंहजी हकदार थे लेकिन उनके छोटे भाई सोवनसिंहजी को बागौर पर करने की मुरजी थी। बागौर पर सरकारी बंदोबस्त किया गया, मुकदमा चलता रहा, आखिर सोवनसिंहजी को मुकरर

की उम्र में आपने उदयपुर में 'बुद्धिप्रकाशिनी सभा' की स्थापना की। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जब उदयपुर पधारे तब उनकी यादगार में आपने हरिश्चन्द्र आर्य विद्यालय की स्थापना की। आपने कुछ पुस्तकें भी लिखीं जिनमें "सज्जन जीवन चरित्र" और Hand Book of Mewar उल्लेखनीय है। सन् १८६४ के दिसम्बर में आपको काशी नागरी प्रचारणी सभा के विशेष अधिवेशन में सभापति का भार सौंपा गया जिसे आपने बड़ी योग्यता से निभाया।

प्राय: उदयपुर में आने वाले अंग्रेज मेहमानों के स्वागत करने का भार आपको ही निभाना पड़ता था।

आपके पास एक अभूतपूर्व पुस्तकालय एवं चित्रशाला थी जिसमें प्राचीन संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त अंग्रेजी, हिन्दी व उर्दू में लिखित पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। उक्त संग्रह को आपने अपने जीवन के अन्तिमकाल में उदयपुर के सरस्वती पुस्तक भण्डार को भेंट कर दिया था।

आपको प्रारम्भ में गिरवा जिले का हाकिम बनाया गया, बाद में ये महकमा देवस्थान व महकमा माल के अफसर रहे फिर महद्राजसभा के मेम्बर नियुक्त हुए जहाँ ये अन्त तक रहे।

महाराणा सा० की ओर से आपको दोनों पैरों में सोना, कई खिलअतें व पौशाकें, दो सुनहरी मूठ की तलवारें, एक सोने की घड़ी, पगड़ी में मांझा बांधने की इज्जत बैठक की प्रतिष्ठा, बलेणा घोड़ा इत्यादि कई सम्मानों से सम्मानित किया गया।

आपका विवाह संवत् १९३७ में शाहपुरा में हुआ था। आपके दो पुत्र कुंवर देवीलाल तथा कुंवर उदयलाल हुए। आपकी मृत्यु पर्याप्त परिपक्व अवस्था में सन् ... ... में ९२ वर्ष की उम्र में हुई। विस्तृत परिचय के लिये देखें—(बच्छावतों का इतिहास पृ० २४-२५)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर ही दिया। इस पर अजंट गवरनर जनरल का खरीता आया के आप को इक्तयार है लेकिन इस बेइनसाफी का नतीजा अच्छा न होगा। सख्तसिंह जी अपने गाम सोन्याणे चले गये। कभी कुछ खालसे दूसरे जागीरदारों की रियाया से जास्ती कर पांच रुपे लेणे देणे करते रहे शिकायत होती रही, हचीनसन साहब छुट्टी पर गये। १९२६ में निकसन साहब पीछे छुट्टी खतम कर अजंटी पर आये। कोठारीजी के दो वर्ष काम करने में जो श्री हूजूर को अक्तियार होने बाद मुरजीदान लोगों को जो काम निकालने का मौका था वो कम हो गया। इससे लोगों ने कोठारीजी की भी शिकायतें की होंगी। सं. २६ का पौष में कोठारीजी को फरमाया के बगसी हरीराम के पास संदी कागद रवे हैं वो बहुत गड़बड़ करता है इसलिए मेरा इरादा है के संदी कागजों का बन्दोबस्त करूं इसलिऐ ऐक आदमी मुकरर होना चाहिऐ। जिस पर कोठारीजी ने तीन चार आदमियों के नाम लिख पेश किये के यां में सुं मरजी हो जीने करें, फरमाया थे तो खुद होशियार हो काम चलाय सको हो। मारी मरजी पन्नालाल ने मुकरर करवा की है, आखर मंजूर करणी पड़ी। सं० २६ का पौष दिन पांच[1] ने दिल कुशाल की नाल नीचली ओवरी कागजात रखने के लिए कायम होकर मुझको मुकरर किया गया। उस बगत कुछ काम तो था ही नहीं जाहरा हरीराम को कागज संभलाने का हुकम हुआ लेकिन यह काम तो करना ही नहीं था, बात ही और थी। दो तीन दिन बाद ही महकमे अजंटी का कागजात जो कोठारीजी के नाम पर आते थे वो बंद होकर महकमाखास के नाम पर जारी होकर मेरे पास आने लगे। मुझको वहुत ताजुब हुवा, मैंने कोठारीजी से वह हाल जाहर किया। वां कही मालूम कर लो हुकम करे सो कारवाई करो। मालूम की गई, फरमाई, कारवाई अठे ही होणी चावे, मैं अरज कोदी—कागजों का जवाब मुलक से जवाब आने पर दिया जा सकता है, फरमाई, कोठारीजी को लिखो और उनसे जवाब मंगाया जावे, सब कागजों के हुकम पर दस्तखत मैं करूंगा, भाई तखतसिंहजी ने महाफिज दफत्र मुकरर कीदा फिर तामील नवीस मुकरर कीदा ताके काम सीख होशियार होवे। कोठारीजी को यह

---

१. विक्रमी १९२६ पौष कृष्णा ५ (ता २३ दिसम्बर ई. १८६९) को महक्माखास के नाम से एक कचहरी कायम हुई, जिसमें हुक्म देने वाले तो खास महाराणा साहिब और सेक्रेटरी मेहता पन्नालाल बनाया गया। ....। इस महकमे की बुनियाद डालने के पेश्तर भी पंडित लक्ष्मणराव ने कोशिश करके अपने दामाद मार्तण्डराव को पेश किया था, लेकिन उससे यह काम नहीं जमा, थोड़े ही दिनों के बाद प्रधान के करने का कार्य महकमाखास में होने लगा। वीरविनोद पृ० २०९६-९७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बात पसंद तो नहीं हुई लेकिन छ महिना जैसे हो सका काम धकाया, हरेक मामले में कोठारीजी भी रिपोर्ट करते, कभी वो खुद हाजर होते, जिस वक्त उनके कागजों की पहले के दस्तूर मुजब मैं पेशी कर देता। अजंटी वकील मथुरादासजी भी माफ होकर पचोली अखेचंदजी मुकरर हुए। इनका तालुक भी महकमेखास ही से रहा। आखिर सं. २६ के आषाढ में कोठारीजी ने अस्तीफा पेश कर दिया वो मंजूर भी हो गया। काम पीछा बाबाजी गोकलचंदजी वा पंडत लछमणरावजी के सुपरद हुआ। लेकिन रयासती काम तकसीम हो गया। दीवाणी फौजदारी का काम लछमनरावजी और काम गोकलचंदजी करे और उनकी पेशी की जरुरत नहीं, कुल रपोट महकमेखास में किया करें, इस तरह काम चलता रहा। मेरी तनखा वो ही ६०) महावार रही। सं० २६ से साख उनाली से गाम गोव्ल्याखेड़ा उपत रुपये १५००) का बगसा गया। इसी साल आषाढ में छोटे भाई तखतसिहजो को बाबाजी जालमसिहजी के गोद मुकरर किये गये। अजीतसिहजी ने भी कोठारे में पनाह ली थी वहां से यहां हाजर हो गये। गौशाला में हवालात में रखे गये। उनके ऊपर जो जुरम था उसकी तहकीकात के लिए अजंट साहब को हुकम हुआ, अंजंट साहब ने तीन साल कैद की तजवीज की, खुली कैद गौशाला में भुगताई गई। हम सब लोग मिलने जाते रहते थे। इसी अरसे में बेमाली रावत जालमसिहजी हरिसरण हुए, वारदातों के इंतजाम का काम भींडर कुंवर मदनसिहजी के सुपरद हुवा। इसी नवंबर में लाठ साहब मेयो के अजमेर में दरबार करने की खबर आई और श्रीजी का अजमेर पधारना करार पाया। ऐसी बडी सफर केई बरसों से हुई न थी, इसका इंतजामी काम गोकलचंदजी के सुपरद था, उनके ठीक इंतजाम होने की सुरत नहीं पाई गई, जब्र मुझे फरमाया, इंतजाम होना चाहिये, मैंने अरज किया इस काम के लिए कोई अलग अफसर मुकरर होवे और रपोट उसकी हरेक महक्माखास में मंजूरी वास्ते आवे तो काम चल सकता है, मैं भी मदद दे सकूंगा। आखिर इस पर कोठारी केसरीसिहजी ही मुकरर हुए, उन्होंने सब इंतजाम ठीक कर दिया। सलुंबर रावजी को साथ ले जाने की मरजी थी, लेकिन उनके लवाजमों के झगड़ों के सबब यांही पर महलों के बंदोबस्त वास्ते मुकरर किया गया, मेरा काम तो साथ जाणे का था ही, बाबाजी गोकलचंदजी और कोठारीजी भी साथ लिये गये। साथ में आठ नौ हजार के करीब आदमियों की भीड़भाड़ पूरा लवाजमा था। इतनी भीड़भाड़ साथ न रखने की और अज्मेर थोड़े आदमी ले जाने बाब्रत अजंट साहब्र की तहरीर आई, वरलके मुकाम लश्कर में से बहुत आदमी छांटे गये और वापिस लौटाये गये। तो भी पांच छः हजार आदमियों को भीड़ भाड़ थी। शाहपुरा वाला पधारती वगत बिना सीख वरल सुं शाहपुरे चल्या गया। पेशवाई मुलाकांता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाठसाहब की हस्ब मामूल हुई।[1] दरबार लाठसाहब कीदो, अव्वल बैठक श्री दरबार की मुकरर हुई। साथ में ९ सिरदार गये। ईं में जोधपुर महाराज नीचे बैठवा सूं इन्कार कर दरबार में नहीं आया, सो लाठ साहब नाखुश वेर जोधपुर चल्या जावा रो हुकम दियो सो महाराज तखतसिंहजी रात का दस बज्यां श्रीजी हूजूर में मुलाकात वास्ते जरीदा ही आया, पाछा श्री हूजूर रात में ही वांके डेरे पधार्‌या श्रेष्ठाचार कर जोधपुर रवाना वेगया। लाठसाहब राजपुताना का सरदारां का लडकां की तालीम वास्ते कालेज अजमेर में बणाबो तजवीज कीदा। रईसां की कमेटी भी कीदी गई, लाठसाहब प्रसीडेन्ट हुआ, लाठसाहब का नाम पर मेयो कालेज नाम राख्यो गयो। ऐक लाख रुप्या श्रीजी भी बगस्या, चंदा का रुप्या सूं ही कालिज बण्यो व काम चाले है। छाईस हजार मेवाड़ बोरडींग के लिए बगस्या गया कालेज को काम कमेटो सूं चाले सो श्रीजी भी मेम्बर हुआ। अजमेर सूं वापिस चितोड़,गडबौर,कांकरोली,नाथद्वारे होते हुए महा महिना में उदयपुर पधारना हुआ। सफर का काम ठीक तरह से चलता रहा। यहां से रवानगी बाद बहुत सा सफर का काम वा फौजी नौकरी चाकरी लेणे वगैरा मुझको ही करना पड़ता था। पीछे पधारतं नसीराबाद के मुकाम झालरापाटण राजराणा पृथ्वीसिंह सूं कोटा बराबर गादी की मुलाकात हुई, इसमें कोशीश अजंट साहब वा अखेचन्दजी की थी। अक्सर लोगों ने इसको पसंद नहीं किया। इस साल में मेवाड़ में बारिस की बहुत कमी हुई जोससे दोनों फसलों में पैदावार कम हुई। सफर का खरच ज्यादा होने से बाहर के खजाने में रुप्यों की बहुत तंगी रही। फौज की तनखा चढ गई, वारदातें धाड़े, चोरी की जादा होती रही, काम चलाने में गड़बड़ी हो गई। एक दिन का माजरा है के कोई तीन चार घड़ी दिन रहते कोठारी केसरीसिंहजी, कोठारी छगनलालजी वा मने साथ ही महलां बुलाया श्रीजी हुजूर भींमविलास में बराजता हा मांने मोतीमहलां में बैठाया गया। महता गोपालदासजी वा पंचोली प्राणनाथजी हमारे पास आये और कहा के आप लोगों की बहुत शिकायत है। राज को दस्तूर भी है के प्रधान काम छोड़े जब 'कसूर' लिया जावे वगेरे बहुत दबाव के साथ कहा, दरबार खावंदी फरमाकर तहकीकात कराना वा कैद करना नहीं चाहते। कसूर का रुका कर दीजिए इसमें ठीक है। अरज तो ये ही कराया गया के हम लोगों ने बहुत खैरख्वाही से काम किया है अगले

---

१. वि॰ सं॰ १९२७ कार्तिक कृष्णा १३ (ता. २२ अक्टोबर १८७०ई०) को करीब ८ बजे आम दरबार हुआ। इस दरबार के सम्बन्ध में विस्तृत हाल के लिये देखें-वीर विनोद पृ० २०९७-२१०३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहलकार काम करते उस तरीके से नहीं किया है बाकी जीवजामा का मालिक श्री हूजूर हैं, दीखे सो सब श्री खावंदा को है जीं पर अरज कर पाछा आया और आखर रुका कर देने में बहुत सख्त दबाव डाला, दंड का रुप्या लाखां ही बेहद बताया गया उसकी हैसियत न होने की बहुत कुछ अरज मारूज कराई गई लेकिन कुछ लिहाज नही हुवा और गोपालदासजी बहुत सख्त दबाव डालने की बातें करते रहे। आखरस तीन लाख का रुका दोई कोठारीजी से वा सवा लाख का मुझसे कराही लिया। कोठारीजी तो पहले से ही काम से अलग हो चुके थे। कोठारी छगनलालजी के खजाने का काम बहाल रहा। मेरे बदस्तूर महक्मेखास का काम बहाल रहा, मुझको तो घर आने पर रुका करने की फिकर में बुखार हो गया क्यूं के बजाऐ सवा लाख के मेरे पास दस-पाँच हजार का भी बंदोवस्त नहीं था फिर दूसरे छोटे मोटे अहलकारों के साथ मेहता गोपालदासजी ने ये ही रुके कराने की कारवाई जारीं की, कई ऐक को हवालात में भी रख कर रुके करवाऐ कई ऐक से समझायस से भी कराऐ। रुके तो हुवे लेकिन वसूल की कोई सूरत नहीं हुई और अमूमन ऐसी कारवाई से शिकायत भी बहुत बढकर गोपालगरदी लोग मशहूर करने लगे। अजंट साहब ने भी इस कारवाई को पसंद नहीं किया इससे फिर काम चलाने में ज्यादा गड़बड़ी हुई, सिकायत की वजह से गोपालदासजी भी इसकी वसूली की कारवाई से रुक गऐ दो तीन महिने ऐसे ही निकले। कुछ रुप्या भीतर के खजाने रंगभवन से निकलवा कर काम चलाया गया। आखर मैंने भी इंतजाम दुरस्त फरमाने के बावत अरज किया। अजंट साहब ने भी बहुत कुछ श्रीजी में अरज की फिर ठाकुर मनोरसिंहजी के साथ अवल मुझको ही हुकम फरमाया रुका के रुप्यों बाबत क्या चाहते हो ? मैंने इतने रुपये पास नहीं होने वगेरा अरज कराई। आखिर खाबंदी फरमाय ८५ हजार छूट फरमा कर चालीस हजार करार पाया, बीस रोकड़, २० की तीन साल कां किश्तां हुई फेर इस कारवाई बाद काम का इंतजाम वास्ते बहुत फरमाया बहुत कुछ तसल्ली फरमाई। मैंने कोठारीजी के फसले बावत भी अरज किया, लाख रुप्या छूट फरमाकर दो लाख रुप्ये जिसमें आधे रोकड़ आधे किश्तों से वसूली की कारवाई शुरु हुई के फेर तो दूसरों के रुके हुऐ थे उनकी भी रुप्ये वसूली की सूरत हो गई. इसका जमा खर्च भी महकमेखास के तालुक ही रहा, इस तरह सं० २७ खतम हुवा सं० २८ से कुछ इंतजाम के लिऐ मेरी नाकिस अकल के माफिक तजवीज पेश की गई महकमेंखास के तालुक आठ महक्मों में काम तकसीम किया जावे। और अफसर चुनिन्दा लाऐक मुकरर किये जावें। वे अपने काम के जुमेवार रहे और इन आठों महक्मों की रिपोर्टे महकमाखास आया करें। आठ महक्में इस माफिक कायम हुऐ :–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१, महक्मा माल जिसमें तहसील, सायर वगैरे कुल आमदनी का सिगा सिरदारों की तलवार बंधाई छटूंद वसूल करने का काम रहे, खजाने का तालुक रहे, अफसर कोठारी केसरीसिंहजी हुऐ।

(२) महक्मा हिसाब दफ्तर जिसमें खरच का काम की संम्हाल वा हिसावी जमाखरच की संम्हाल होवे, अफसर महता गोपालदासजी हुऐ।

(३) महक्मा फौज का काम अलग अलग था, एक महक्में में मय किलेदारियों के काम के सब फौज का काम इकट्ठा किया गया अफसर बाबाजी जालमसिहजी वा भाई तखतसिंहजी हुऐ।

(४) महक्मा दीवाणी : राय सोहनलालजो

(५) महक्मा फौजदारी : मुनसी सायतअलीखांजी।

(६) महक्मा देवस्थान जिसका काम बहुत विखरा हुवा था, वा सब ऐक अफसर के तहत में किया गया, अफसर कोठारी छगनलालजी।

(७) जिन जिन कारखानों में जवाहिरात सोना चांदी का सामान है वा नया बणाया जावे उसका हमक्मा अफसर जोरावरसिंहजी सुराणा।

(८) महक्मा कुल कारखाने जात अफसर उदेरामजी ढोकड़ा अदालती काम की अपील भी महक्मेखास में होवे। कोई मुकदमा संगीन होवे वा कोई वड़ी बात होवे तो ऐ आठ ही अफसर बीचार तजवीज मालुम करें। यह तजवीज पसंद फरमाई गई। इस पर अफसर मुकरर फरमाया उनको सिरपाव कंठी जेवर देकर बहुत तसल्ली के साथ जुमेवरी फरमाई गई। बांवाजी गोकलचंदजी लक्षमणरावजी माफ किये गऐ।

महक्मा माल का काम कोठारीजी के सुपरद होने पर उन्होंने बहुत मेहनत और कोशीश के साथ सिवाय जहाजपुर, मगरा, सराड़ा, जिला कुंभलगढ़ के कुल परगने जात का, डोरी मामूली से जमीन नपवा कर, आसामीवार ठेकाबंदी मारफत हाकमों के करवादी, जिसमें आमदनी की तरकी हुई। कभी तहसील में बहुत गडबडी रहती थी वो रुक गई। इस काम में मुझसे हो सका बहुत कुछ मदद किया। उसी साल १९२८ में ठेकेबंदी खतम होने पर कोठारी केसरीसिंहजी का इन्तकाल हो गया। कोठारी छगनलालजी उनकी जगह मुकरर हुऐ। महक्मे फौज में भी महावार मदद खरच मिलकर छट्टे महीने चींठी मिलती थी। इसमें बहुत गड़बड़ी चलती थी। तनखा छमाही देना तजवीज कर वहुत कुछ दुरस्तो की गई। किलों के सामान की सब फहरिस्तें तईयार कराई गई, तोपखाने के काम को भी संमाला गया जिसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरक्की हुई। काम महक्मेखास में जादा होने के सबब अपील का महक्मा भी कायम हुवा। वहां फौजदारी दीवाणी अदालत की अपील होने लगी। महक्मेखास में मुनाफा होने लगा, यह काम जारी हुवा ही था के अजंट निकसन साहब की जगह फिर करनल हचीनसन साहब अजट मुकरर होकर आऐ। साहब बहुत मुंतजम थे काम ठीक चलता रहा। मेरी आमदरफत अजंट साहब के पास शुरु हुई। पहले महक्मेखास का काम शुरु होने पर निकसन साहब (के) पास कभी जाणा नहीं हुवा था। अजंट साहब ने फौजदारी इंतजाम के बाबत ताकीद की, क्यूं के वारदातें जादा होती थी। पहले वारदातें रोकने का काम भींडर कुंवर मदनसिंहजी करते थे उनसे माफ होकर अदालत फौजदारी पर मुनसी सायतअलीखांजी के इक्तयार बढाऐ जाकर उनके नीचे ५ नायब फौजदार बमशाहरे १५०) महावार मुकरर किऐ गये और फौजदारों मुकदमात में हाकमों का अतिक्यारात घटा कर पांच नायब फौजदारों का हलका मुकरर करके उनके अक्तियारात फौजदारी मुकदमों की निगरानी व संगीन मुकदमों की तहकीकात का दिया गया। वारदात रोकने मुजरमों की गिरफ्तारी का मुख्य काम इनके जुमे किया गया। फौजदारी जाबते का वा सजादेही का मुक्तसर कानून छपाकर जारी किया गया। सिरदाराना अवल नबर से मोग्यों, बावर्यों को अपने पट्टे में नहीं रखणे और रखे तो हजार रुप्या जुरमाना दाखिल करणे का इकरार लिखाकर सब के दस्तखत कराऐ गऐ और थाणों में सिरदारों की चाकरी बतीसा का ठीकाणा वा गोल का सिरदारां को लगाई मये अपनी २ जमियत के, अर हुकम जारी किया गया के अगर थाणें के करीब कोई भी वारदात होगी तो ठीकाणा जुमेवार होगा। इस पर बहुत कुछ सिरदारों की तरफ से उजरात पेश हुऐ और अवल नंबर के सिरदार भी इस बहश में सामिल हुऐ। आखिर उस सरक्यूलर में ये लफज पलटे गऐ के थाणे के करीब की वारदात में तुम गिरफ्तारी वा ताकुब मुजरमों का वा मुकाबला नहीं करोगे तो बाजपुरस होगा। जुमेवरी का लफज निकाला गया, इससे अक्सर सरदार लोग भी नाराज रहे क्यु के उनकी उदयपुर चंद रोज वा तीन महीना रहणे सिवाय कुछ नौकरी नहीं थी, जमीअत भी नहीं रखते थे। थाणे में हाकिम नायब फौजदार हाजरी जमीअत की बराबर लेते रहते थे। नठारा की मगरा जिला में बोहत बडी बदमासी में नामी पाल है उस पाल के भीलों की वारदातें मगरा जिला में करणे की बड़ी शिकायत थी। पाल पर फौजकशी करने का हुकम दिया गया फौज और सिरदार और मगरे जले के सिरदारों की कुल जमीयत इकट्ठी को गई। इसमें सलुंबर रावजी ने भी जमीयत आदमी पानसे चारसों की भेजीं। हाकिम मगरा पंडत रुगनाथरावजी साकिन जाहज-पुर ने पाल को चारों तरफ से घेर कर भीलों को सजा दी। मवेशी ली गई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अौर तीस भीलों के माथे काटे गये जब कुछ रोब जम कर मगरे की वारदातें रुकी।

महाराजा सखतसिंहजी सोन्याणे में रहकर कुछ जुल्म जादती बगावत करते थे। थोड़ी फौज भेजकर बंदोबस्त के साथ मय कुंवर सजनसिंह जी के यहां लाने का बंदोबस्त किया गया। फौज जाकर उनको हिफाजत में ले अाई। तेल्यों को सराय में दो तीन महीना निगराणी में रक्खे गये, बाद मैं उनके लिए बहूजी बीकानेरीजी ने बहुत कुछ अरज किया अौर उन्होंने भी माफी मांगी, यांह हाजिर होने की शरत पर, अौर श्रीजी में पगे लगाऐ गऐ अौर उनके खरच के लिऐ राज से रोकड़ मिलने का बंदोबस्त हुवा। इतना बंदोबस्त होने पर वारदातों की रोक हुई ताहम गैर ईलाका निबाहेडा गवालीयर का मिला हुअा था वहाँ बावरी लोग बहुत रहते थे वो अकसर मेवाड़ में वारदातें करते थे ताहम किसी कदर इंतजाम की सूरत हुई।

हाजरबास लोग धवाजी वगैरे हाजरवास मरजीदान लोगों के जरिऐ खास रुका परवाना दस्तावेज वगैरा सहीवालों से लिखा देते अौर श्रीजी हूजूर दस्तखत फरमादेते इसमें सहीवालों की बड़ी गड़बड़ मालूम हुई। ये हुकम जारी किया के महक्माखास से श्रीजी के दस्तखत होकर मसविदा अावे उस माफिक परवाना खलीता लखाया जावे अौर एक नंबर अपना अौर दूसरा नंबर महक्मेखास में नकल करके लगाया जावे। इससे सहीवाला अौर हाजरवास लोग बहुत नाराज हुए लेकिन ये काम बहुत जरूरी समझ करणा ही पड़ा। दीवाणी अदालत के लिए इस्टाम रजीस्टरी का क़ायदा बनाने के लिऐ मुनसी कुदरतुला को मुकरर कर कायदे वा इस्टाम बनाने वगैरे (का) बंदोबस्त किया गया। जब इस्टाम का कायदा जारी किया गया तो सहर के लोग नगर सेठजी पंच वगैरे शाकी हुए अौर कायदे इस्टाम से इनकार करते रहे, अाखर चंद रोज ऐसे ही तकरार चलता रहा, अाख़र मैंने बोहरों लोगों को समझायस कर इस्टाम की कारवाई मंजूर करवा कर दो-चार मोतबर बोहरों के श्रीजी में नजराणे करवा दिऐ। पहले बोहरे लोगों को यह इज्जत हांसल नहीं थी। इस वक्त तक इनका वैपार भी बहुत बढ गया था दूसरे लोगों को साफ हुकम दे दिया गया के तुम्हारे लिए अदालतें बंद है। अाखर लाचार होकर बेदले राव बखतसिंहजी की मारफत श्रीजी में हाजर हुऐ, श्रीजी ने उनकी तसल्ली फरमादी, उन्होंने इस्टाम की कारवाई कबूल करली। इस्टाम रजीस्टरी का काम चलकर साल दर साल तरकी होने लगी।

शहर बहुत गंदा था अौर मैला रहता था सो सफाई का बंदोवस्त किया गया। वैपार पर करीबन अाठ हजार सालियाना की इस खरच के लिऐ लागत भी लगाई गई इससे बहुत कुछ सफ़ाई हुई वा रोस्नीं का भी बन्दोवस्त हुवा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाहपुरे राजाधिराज अजमेर की सफर में साथ थे। रस्ते में से विना रुखसत हासिल किये शाहपुरे चले गऐ थे। तलवार बंधाई भी नहीं करवाई थी। इसलिए काछोला पट्टा पर खालसा जाहजपुर से एक निशान के साथ बगतावरसिंहजी सहीवाला को भेज कराया गया। उन्हीं दिनों राजाधिराज की नावालगी के सबब शाहपुरे सरकारी बंदोबस्त हो गया था इससे अजंटीं का महकमाखास के अन्दर बहुत सी लिखापढी होती रही। आखर अग्यारा हजार जुरमाना का अर पांच हजार तलवार बंधाई का नजराणा लेकर उठंत्री का छोटा पट्टा की की गई।

नाथद्वारे अज्मेर से लौटती वक्त पधारना हुवा तब चित्तौड़ के मुकाम जनानी सवारी भी पधार गई थी। नाथद्वारे दर्शणों वास्ते पधारना होवे जब जनानी सवारी का म्याना रतनचौक में बोलणे का दस्तूर था श्री गुसाईंजी वहां म्याना बोलने से इनकार कर गऐ और पीतमपोली के रस्ते दर्शण करावा की कही इस पर उस वक्त तो दरशण करणा था जैसे तैसे काम चलाया गया लेकिन उन्होंने यह बहुत बड़ी रीयास्ती हतक की थी गुसाईंजी की आम शिकायत लोगों को मारपीट कराणे बेइनसाफो वगेरा बहुत बढी हुई थी। राज का हुकम मानते ही न थे। कुल गाम नाथद्वारा तालुक का जब्त कर नाथद्वारा की जब्ती वास्ते शंभुपलटन २५० आदमियों की भेज दी गई। पलटन महीने दो महीने वहां रही होगी गुसाईंजी ने अजंटी द्वारा बहुत पैरवी करके ऐक दम अजंट साहब का खत नाथद्वारे से पलटन बुला लेने वाबत जारी कराया और निकस्न साहब ने नमालुम क्या क्या श्रीजी में मालूम किया के पलटण बुलाई गई जब से गुसाईंजी बहुत ही सरकस और खुद-मुक्तयार हो गये। गामों के जिनकी आमदानी पचास चालीस हजार सालियाना के थी बदस्तूर जप्त रहे। आमदनी उनकी इनायत सरकारी दूकान में जमा होती रही।

बहुत वरसों पहले रुपाहेली और लांबे के सरहदाती झगड़ा हुवा उसमें लांबा वालों के बड़े बेटे मारे गऐ। उसके फेसले में रुपाहेली से गांम तसवारिया मूंडकटी में लांबा वाला ने देवावो तजवीज हुवो, लेकिन रुपाहेली वालों ने तामील बिलकुल नहीं करी, उसकी तामील के लिऐ फौज मय तोपखाना के बाबाजी गोकलचंदजी की मातहेती में रुपाहेली भेजी गई। तसवारिया पर कबजा कर लिया गया। आखिर तसवारिया लांबे वालों को तो नहीं मिला लेकिन खालसे हो गया, और फौज खरच कुछ लेकर फौज बुलाली गई।

(क्रमशः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रावरण : जैन प्रिन्टर्स, जोधपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi